लक्ष्य-वेध

[जीवन निर्माणकारी प्रेरक कथानक]

प्रवचनकार

आचार्य श्री नानेश

सम्पादक

शान्तिचन्द्र मेहता

□

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

लक्ष्य-वेध

□ प्रवचनकार
आचार्य श्री नानेश

□ सम्पादक
शान्तिचन्द्र मेहता

□ प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता-भवन
रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर-३३४ ००१ (राज०)

मूल्य : १५.००

□ संस्करण : १९८५

□ मुद्रक
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार
जयपुर – ३०२ ००३

प्रकाशकीय

जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रबोधक, समता विभूति, विद्वत् शिरोमणि, समीक्षण ध्यान योगी, बाल ब्रह्मचारी, चारित्र चूड़ामणि, आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म० सा० का निर्ग्रंथ-परम्परा के सन्तों में विशिष्ट स्थान और महत्त्व है।

आज से ६५ वर्ष पूर्व ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया संवत् १९७७ को मेवाड़ के दांता गाँव में आपका जन्म हुआ। १९ वर्ष की अवस्था में, आन्तरिक वैराग्य भाव से प्रेरित होकर, आपने शांत, क्रांतद्रष्टा स्व० आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के पास जैन भागवती दीक्षा अंगीकृत की। संवत् २०१९ में माघ कृष्णा द्वितीया को आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

अपने आचार्यत्व काल में आपने धर्म और आध्यात्म, जीवन और समाज के नानाविध क्षेत्रों में समता दर्शन के रूप में युगान्तकारी चिन्तन प्रस्तुत किया। समता दर्शन का ही क्रियात्मक रूप प्रतिफलित हुआ धर्मपाल प्रवृत्ति के पल्लवन एवं प्रसरण में। इस प्रवृत्ति के माध्यम से मालवा क्षेत्र के अस्पृश्य कहे जाने वाले बलाई जाति के हजारों लोगों को व्यसन मुक्त और सुसंस्कारी बनाने में आपके सदुपदेशों की अदम्य प्रेरणा रही है।

समता दर्शन के विकास के लिए समीक्षण ध्यान का अभ्यास जरूरी है। इन वर्षों में आपने समीक्षण ध्यान पर विशेष बल दिया है। अपनी वृत्तियों को सम्यग्रीत्या समभाव पूर्वक देखना समीक्षण ध्यान है। इस अभ्यास क्रिया से द्रष्टा भाव का विकास होता है।

आचार्य श्री जैन आगमों और शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् और गूढ़ व्याख्याता होने के साथ-साथ सृजनात्मक प्रतिभा के धनी हैं। समता दर्शन और व्यवहार, पावस प्रवचन भाग १ से ५, नव निधान, ताप और तप, आध्यात्मिक आलोक, आध्यात्मिक वैभव, शांति के सोपान, प्रेरणा की दिव्य रेखाएँ, प्रवचन-पीयूष, मंगल वाणी, जीवन और धर्म, अमृत सरोवर, समीक्षण धारा, समीक्षण ध्यान प्रयोग विधि, जिणधम्मो, कर्म प्रकृति आदि पुस्तकों में आपके महत्त्वपूर्ण प्रेरणादायी प्रवचन संकलित-सम्पादित हैं। ओजस्वी प्रवचनकार होने के साथ-साथ आप प्रबुद्ध विचारक, संवेदनशील कवि, और सरस कथाकार भी हैं। "कुंकुम के पगलिये" आपकी नैतिक सदाचरण प्रधान प्रेरक कथाकृति है।

"लक्ष्य-वेध" नाम से प्रकाशित यह नई कथाकृति पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें प्रसन्नता है। २५ परिच्छेदों में विभक्त इस कथानक में मानसिंह

और अभयसिंह के आदर्श भ्रातृ-प्रेम का आख्यान परिष्कृत भाषा और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। राजा प्रतापसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह के छोटे से अपराध (एक बाला की जल-कलशी पर निशाना लगाना) पर उसे देश निकाले का दण्ड देते हैं। छोटे भाई अभयसिंह मानसिंह के व्यवहार में सुधारात्मक परिवर्तन देख इस अपराध की सूचना राजा को नहीं देते। फलस्वरूप वे भी दण्ड के भागी होते हैं। दोनों राजकुमार निर्वासन-काल में विभिन्न संकटों का धैर्य, विवेक और साहस के साथ सामना करते हुए आध्यात्मिक साधना का विशेष बल संचित करते हैं। फलस्वरूप उन्हें सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधायें उपलब्ध होती हैं। पर वे उन्हें अपने लिए भोग्य न समझ कर लोक-कल्याणार्थ उनका समर्पण कर देते हैं। इस कथानक में विभिन्न सद्-असद् पात्रों के माध्यम से संघर्ष दिखाकर इस बात पर बल दिया गया है कि मानव-जीवन का लक्ष्य बाहरी भोगवृत्ति और सत्ता-सम्पत्ति की प्राप्ति न होकर, आन्तरिक पवित्रता, चारित्र-शुद्धि, निस्वार्थ प्रेम-भाव और लोक मंगल है।

आचार्य श्री ने अपने राणावास चातुर्मास में व्याख्यान के समय इस कथानक को काव्य रूप में गा-गाकर जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया था। श्री राममुनिजी ने इसे संकलित किया था जिसका प्रकाशन सन् १९८३ में अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर द्वारा **"आदर्श भ्राता"** खण्ड-काव्य के रूप में किया जा चुका है। अपनी काव्य-विवेचना में आचार्य श्री ने जो प्रवचन दिये थे, उनके आधार पर श्री शांतिचन्द्र मेहता ने प्रस्तुत कथानक **"लक्ष्य-वेध"** का सम्पादन कर और डॉ० नरेन्द्र भानावत ने कृति के बारे में दो शब्द लिखकर जो सहयोग प्रदान किया है, एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

इसके प्रकाशन में राणावास के मूल निवासी श्री शांतिलालजी मूथा ने अपने पूज्य पिताजी श्री ताराचन्दजी मूथा की पुण्य स्मृति में आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम संघ की ओर से आपके प्रति आभार प्रकट करते हैं। श्री शांतिलालजी मूथा अनाज, कपास, मिर्ची व कपड़े के कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ उत्साही युवक कार्यकर्त्ता हैं। आपका व्यापार लक्ष्मेश्वर (कर्नाटक) व जयपुर में है। आपकी माताजी अत्यन्त ही धार्मिक प्रवृत्ति की सरल स्वभावी महिला हैं।

आशा है, इस कृति के पठन-पाठन से पाठकों की रुचि का परिष्कार होगा और उनमें आदर्श भ्रातृ प्रेम, त्याग तथा सेवा की भावना जगेगी।

—गुमानमल चोरड़िया
संयोजक, साहित्य समिति
अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर (राज०)

दो शब्द सम्पादक के

साहित्य की कथा या उपन्यास विधा किसी गूढ़ विषय को भी चरित्र चित्रण एवं दृष्टान्तों के आधार पर सरस तथा सुबोध बना देती है। प्रमुख रूप से बाल-बुद्धि उस विषय को सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेती है। आचार्य श्रीमद् नानेश अपने प्रतिदिन के प्रवचन के अन्तिम अंश के रूप में उदात्त गुणों से युक्त किसी चरित्र का वर्णन अवश्य किया करते हैं। यह प्रस्तुत "लक्ष्य-वेध" उनके राणावास चातुर्मास के प्रवचनों में वर्णित हुआ था जो आदर्श भ्रातृप्रेम का प्रेरणास्पद प्रतीक है।

"लक्ष्य-वेध" में चरित्र नायक अभयसिंह है, जिसका सर्वतोमुखी विकसित जीवन सभी को प्रेरित करता है। वैसे चरित्र-चित्रण की यह विशेषता होनी चाहिए कि गुणी पात्र तो सद्गुणों की प्रेरणा देवें ही, परन्तु दुर्गुणी पात्र भी दुर्गुण के प्रति पाठक की जुगुप्सा उत्पन्न करके सद्गुण को ही प्रभावित करें। प्रस्तुत लघु उपन्यास में भी विभिन्न पात्रों के चरित्र-चित्रण से बहुविध शिक्षाएँ प्राप्त होंगी।

आचार्य प्रवर की शैली मर्मस्पर्शी होती है एवं तदनुसार "लक्ष्य-वेध" में सुसंस्कार निरूपण, आत्म-कल्याण तथा लोकोपकार के लक्ष्य को यदि पाठक के मन का बाण बींध देता है तो वह आचार्य श्री का ही ओज होगा और जहाँ कोई बाण भोटा लगे तो वह दोष सम्पादक का समझें और उसे क्षमा करदें।

लक्ष्य-वेध जितना सचोट तथा जागृतिदायक सिद्ध हो, वही प्रस्तुत लघु उपन्यास की सफलता होगी।

—शान्तिचन्द्र मेहता

ए-4, कुम्भा नगर,
चित्तौड़गढ़ (राज.)–312 001

कृति के बारे में

आचार्य श्री नानेश समता दर्शन के प्रणेता और उच्च कोटि के समता साधक हैं। साहित्य का प्रधान उद्देश्य भी विषम भावों में समता भाव स्थापित करना है। साहित्य-सृजन में साहित्य-साधक सुख-दुःख से ऊपर उठकर आनन्द की ऐसी वर्षा करता है कि जिसमें सारे विभाव तिरोहित हो जाते हैं। आचार्य श्री नानेश की साहित्य-साधना इसी आनन्द भाव को समर्पित है।

आचार्य श्री की साहित्य-साधना बहुमुखी है। एक ओर उसमें शास्त्रीय गूढ़ तत्त्वों की विवेचना है तो दूसरी ओर आत्म-तत्त्वों की जीवन स्पर्शी मार्मिक व्याख्या, एक ओर आत्म-विभोर करने वाली काव्य की सात्विक सरसता है तो दूसरी ओर नैतिक उद्‌बोधन प्रदायिनी कथा की रोचकता है। आपका साहित्य चाहे वह किसी भी विधा में अभिव्यक्त हुआ है, उसका मूल लक्ष्य आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित होने की प्रेरणा देना है।

"लक्ष्य-वेध" आपकी सद्य प्रकाशित कथाकृति है। प्राचीन लोककथा के आधार पर इसमें मानव जीवन का यह सत्य प्रतिपादित किया गया है कि हमारा लक्ष्य कोई बाहरी पर-पदार्थ न होकर अपने "स्व" को ही जागृत और सशक्त बनाना है। आज व्यक्ति का "स्व" अर्थात् उसका केन्द्र अशक्त, अस्थिर और चंचल बन गया है। व्यक्ति केन्द्र से अलग हटकर केवल परिधि की ओर बेतहाशा दौड़ रहा है। परिणामस्वरूप वह लक्ष्य भ्रष्ट हो गया है, शक्तिहीन और दिशाहीन हो गया है।

"लक्ष्य" का अर्थ है वह वस्तु या विचार जिस पर किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए दृष्टि रखी जाय और "वेध" का अर्थ है, किसी चीज को वेधना, यन्त्रों आदि की सहायता से आकाशस्थित ग्रहों, नक्षत्रों आदि की गति-स्थिति आदि का पता लगाने की क्रिया। कथाकार ने जीवन का लक्ष्य क्या है, यह प्रश्न उठाकर मानसिंह के माध्यम से बाहरी लक्ष्य अर्थात् भोगदृष्टि का संकेत किया है और अभयसिंह के माध्यम से भीतरी लक्ष्य अर्थात् त्याग दृष्टि व सेवावृत्ति का प्रतिपादन किया है। मानसिंह रसिकता में डूबकर, मनोरंजनार्थ धनुष-बाण से नगर की श्रेष्ठी कन्या की जल-कलशी का छेदन करता है, लक्ष्य-वेध करता है। पर अभय को यह अच्छा नहीं लगता, क्योंकि इसमें पर-पीड़न है। वह कला या ज्ञान का उपयोग दूसरों को दुखित करने में, संतप्त करने में नहीं वरन् दूसरों को प्रफुल्लित एवं आनन्दित करने में मानता है। उसकी दृष्टि में सच्चा लक्ष्य-

वेध जीवन को स्वस्थ, स्वाधीन और सुन्दर बनाने में है। यह स्वस्थता केवल शरीर गत नहीं वरन् आत्मगत है जहाँ संयम, संतुलन और स्नेह का बल पाकर सारे विकार नष्ट हो जाते हैं, आत्मा का पुरुषार्थ जागृत हो उठता है, प्राणी मात्र को आत्मौपम्य भाव से देखने लगता है। अभय की सात्विक प्रेरणा से मानसिंह की जीवन दृष्टि बदलती है और उसका लक्ष्य विध्वंसात्मक न रहकर जीवन निर्माणात्मक बन जाता है। वह दूसरी बार ऐसा लक्ष्य-वेध करता है कि कलशी का छेद लाख के कारण बंद हो जाता है। यह छिद्र ही विकार है, उच्छृंखलता है, भोग लिप्सा है। जो स्नेह, सेवा और त्याग भावना से इसे नियंत्रित कर लेता है, बंद कर देता है, वह सही जीवन लक्ष्य को प्राप्त हो जाता है।

अभय की पूरी जीवन साधना इसी लक्ष्य प्राप्ति के लिए समर्पित है। वह स्वयं तो निर्भीक, साहसी, विवेकशील, त्यागी है ही, मानसिंह के माध्यम से वह सम्पूर्ण जगत् को इस जीवन मूल्यों के लिए संघर्षशील, कर्तव्यनिष्ठ और पुरुषार्थ प्रवण बनने की प्रेरणा देता है। अभयसिंह एक प्रकार से मानसिंह का रक्षा कवच है। वह कठिनाइयों में धैर्य-धारण की भावना स्फुरित करता है। मानसिंह की रक्षा के लिए स्वयं एक बार नहीं, अनेक बार मृत्यु के मुख में जाता है। चाहे नर-राक्षस हो, चाहे विषधर सर्प, चाहे समुद्र की अतल गहराई हो, चाहे सुरक्षा अधिकारियों की प्राणान्तक पीड़ा, वह सबको समभाव पूर्वक सहन करता है और हर मुसीबत की भट्टी में तपकर कुन्दन बनकर निखरता है।

अपनी साधना और पुरुषार्थ के फलस्वरूप जो कुछ अभय प्राप्त करता है उसे स्वयं नहीं भोगता, वह सब मानसिंह को समर्पित करता है। मानसिंह उसका बड़ा भाई है, देवता है। निष्काम और निर्द्वन्द्व भाव से बड़ी-से-बड़ी उपलब्धि उसी के लिए समर्पित है। यह त्याग भाव ही अभय के चरित्र को उदात्त और उन्नत बनाता है।

इस कथानक के माध्यम से कथाकार ने आत्म धर्म के साथ-साथ समाज धर्म के प्रति कर्तव्य बोध को जागृत किया है। नगर सेठ जयमल के माध्यम से धर्म की सामाजिकता को रेखांकित किया है। सच्चा धार्मिक सद्गृहस्थ समाज से विमुख बनकर नहीं रह सकता। नगर सेठ संकल्प करता है कि वह नगर के चारित्र को नहीं बिगड़ने देगा, मर्यादा के बांध को नहीं टूटने देगा, सम्पत्ति के लिए स्थान उसके सिर पर नहीं पैरों के नीचे है। यह समाजधर्मिता ही व्यक्ति में लोकसेवा का भाव जागृत करती है जहाँ वर्ण, जाति, ऊँच-नीच आदि का भेदभाव नष्ट हो जाता है। सृष्टि मात्र में एक ही प्राण-चेतना संचरित करती हुई प्रतीत होती है। अभय का ज्ञान सबको मैत्री की आँख से देखता है। कच्ची बस्ती में रहने वाले आदिवासियों को वह अपना प्यार बांटता है, उन्हें ज्ञान-दान

देकर सुसंस्कारी बनाता है। पन्ना कुम्हार हो चाहे, कान्ता दासी, वह सबको सम्मान और स्नेह भाव से देखता है। वे जन्म से भले ही निम्न कुल के हों पर उनका चरित्र बहुत ऊँचा है। पन्ना कुम्हार निर्लोभी है। वह सुरक्षा अधिकारियों द्वारा दी जाने वाली अशर्फियों को ठोकर मारकर अभय को बचाता है। कान्ता दासी सच्ची सेविका के रूप में अपनी स्वामिन रत्नावली का साथ देती है और सशर्त कथा कहकर अपनी चतुराई का परिचय देती है। इसके विपरीत धनदत्त जैसा दुष्ट पात्र है, जो येन-केन प्रकारेण धन संग्रह करना जानता है और जिसकी कामुक वृत्तियाँ समाज के लिए कलंक हैं। सुरक्षा अधिकारी और सैनिक भ्रष्ट हैं। कथाकार ने कथा के अन्त में इन सब दुष्ट पात्रों के लिए दण्ड का विधान कर सदाचरण और प्रसाशन-शुद्धि पर बल दिया है, तो दूसरी ओर अभय द्वारा क्षमा का आदर्श प्रस्तुत कर उच्च आह्लाद भाव व्यक्त किया है।

अभय और मानसिंह युवक हैं। उनकी वृत्तियाँ आवेगशील और जोश से परिपूर्ण हैं। पर पूरा कथानक युवा शक्ति के रचनात्मक सदुपयोग पर बल देता है। अभय मदनमंजरी और रत्नावली से विवाह करता है पर यह विवाह शरीर-भोग के लिए नहीं, आत्मयोग के लिए है, वासनाओं के उद्दाम वेग के लिए नहीं, स्नेह, सेवा और समर्पण के संवेग के लिए है। यहाँ की नारी चाहे श्रेष्ठी कन्या हो, मदनमंजरी हो, चाहे रत्नावली और कान्ता दासी हो, सभी शील एवं सदाचार के आदर्श हैं। उनमें वासना का नहीं उपासना का बल है, सत्ता और सम्पत्ति के प्रति आकर्षण नहीं, सेवा और त्याग के प्रति समर्पण है।

यह कथानक कर्म और पुरुषार्थ के सिद्धान्त को युगपत् प्रस्तुत करता है। कथानक के सभी पात्र अपने लक्ष्य वेधन में सक्रिय हैं। शुभ कर्मों के फलस्वरूप अभय और मानसिंह को ऐसे संयोग मिलते जाते हैं जिनके कारण वे अपनी जीवन-यात्रा में सफल होते हैं। घटना-संयोजन में विभिन्न कथानक रूढ़ियों का आश्रय लिया गया है। यथा—पनघट पर सखियों का मिलन, राजकुमार द्वारा जल कलशी का छेदन, अपराध पर राजकुमारों का निर्वासन, सघन वन में भटकाव, प्यास की अतिरेकता और सरोवर के जल का उपयोग न करने की चेतावनी, लक्ष्मी और कालिका देवियों का आगमन और उनके संभाषण के माध्यम से भावी मार्ग-दर्शन, नर-राक्षस का आतंक, मणिधर सर्प का आना, और मणि का हरण करने से उसकी मृत्यु, नागिनी द्वारा प्रतिशोध, उसके दंश से मृत्यु, तान्त्रिक महात्मा द्वारा मंत्र प्रयोग से विष-हरण, श्रेष्ठी कन्या द्वारा परिचर्या और उससे विवाह, राजा की निसंतान मृत्यु, उत्तराधिकार के लिए हथिनी द्वारा माल्यार्पण के माध्यम से शासक का चयन, समुद्री जहाज का न चलना, उसके लिए ३२ लक्षणों वाले पुरुष की बलि का विधान, प्रेत बाधा दूर होना, समुद्र में व्यक्ति को फेंका जाना और उसका बचाव, रत्नद्वीप की यात्रा, स्त्री की प्राप्ति के लिए उसके पति को समुद्र में फेंकना, स्त्री की चतुरता से

पुरुष की रक्षा, सशर्त कथा कहना और उसके माध्यम से पूरे वृत्त का रहस्योद्-घाटन होना, बिछुड़े हुए लोगों का मिलना, धर्माचार्य के उपदेश से उत्तराधि-कारी को राज्य सौंपकर राजा का दीक्षित होना आदि। रूढ़ियों के प्रयोग से कथा में कौतूहल, रोचकता और चमत्कृति का समावेश हो गया है पर इनका प्रयोग इस ढंग से किया गया है कि प्रमुख पात्रों की निर्भीकता, साहसशीलता, पुरुषार्थ साधना के प्रति विश्वास में बाधा नहीं पड़ती।

मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। यह दुर्लभता मुख्य रूप से इस कारण है कि इसी जीवन में भोग को छोड़कर त्याग की ओर बढ़ा जा सकता है। विवेक और विरति का अनूठा संगम मानव जीवन की विशेषता है। जब व्यक्ति का विवेक जाग्रत होता है तब वह अपने लक्ष्य का निर्धारण करके ही नहीं रह जाता, बल्कि उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत पुरुषार्थ करता है, संयम में पराक्रम दिखाता है और तभी सही "लक्ष्य-वेध" कर पाता है। यह कथानक पाठक को प्रेम, संयम और न्यायनिष्ठा की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। यहाँ "प्रताप" है, पर वह दूसरों को ताप देने के लिए नहीं वरन् प्रकाश देने के लिए है, यहाँ का "अभय" अपनी स्वार्थ पूर्ति में अभय नहीं है, वरन् दूसरों का भय और संकट दूर करने में अभय है, यहाँ का "मान" अपने मान को विगलित कर सबके सम्मान का पात्र बनता है।

आशा है, दिशा भ्रान्त और लक्ष्य विमूढ़ पीढ़ी के लिए यह कथानक प्रकाश स्तंभ सिद्ध होगा और उसमें चरित्र-संगठन व जीवन-निर्माण की प्रेरणा भरेगा।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
एसोशियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

१

"आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं और मेरे लिये पूजनीय हैं फिर भी एक वात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इस मनुष्य जीवन के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ?"

"भाई अभय, यह सही है कि मैं आयु में तुमसे ज्येष्ठ हूँ किन्तु दो कारणों से मैं तुम्हें ही अपना ज्येष्ठ मानता हूँ। एक तो तुमने गहरा ज्ञान अर्जित किया है दूसरे, तुम वहुत ही अनुराग और आदर से मेरी हर तरह से साल-संभाल करते हो, अतः ज्ञान की यह वात तो तुम्हीं मुझे समझाओ !"

"यह तो आपका वड़प्पन है भाई साहव, आप भी कम भावनाशील व्यक्ति नहीं हैं और आपके अपने जीवन के प्रति तो आपकी ही दृष्टि फलवती हो सकेगी।"

"तुम देखते हो मेरे पास तो यह धनुष और ये वाण हैं और इनसे लक्ष्य-वेध करना ही मेरा सवसे वड़ा मनोरंजन है।"

"भाई साहव, लक्ष्य वेध तो इस मनुष्य जीवन का महत्तम कार्य है।"

"यह क्या कह रहे हो तुम ? फिर तो मैं महान् व्यक्ति हो गया !"

"लक्ष्य-वेध अवश्य ही मनुष्य को महान् वनाता है, किन्तु धनुप-वाण के लक्ष्य वेध के समान ही जीवन-निर्माण का भी लक्ष्य-वेध होना चाहिये। जीवन निर्माण का यदि एक वार सही लक्ष्य निश्चित कर लें और उस ओर गतिशील हो जायें तो लक्ष्य प्राप्ति कठिन नहीं रहती।"

मानसिंह और अभयसिंह सहोदर भ्राता थे—मानसिंह वड़ा व अभयसिंह छोटा। दोनों राजकुमार थे तथा स्वर्णनगरी के शासक महाराजा प्रतापसिंह के सुपुत्र। स्वर्णनगरी एक दूसरी भी थी जिसके शासक रावण को सभी जानते हैं किन्तु प्रतापसिंह दूसरे ही प्रकार के राजा थे। वे सभी प्रकार के सद्गुणों के धारक थे तो प्रजा के भी निष्ठावान पालक। प्रजा उन्हें प्राणों से भी अधिक चाहती थी। न्यायी भी ऐसे कि दूध का दूध पानी का पानी। न्याय करते समय किसी का भी लिहाज नहीं, उस समय वे न्याय के सिवाय और कुछ भी नहीं देखते थे। वे स्वयं सादा जीवन जीते थे और सादगी ही पसन्द करते थे क्योंकि वे राज्य-सत्ता को जनता की सेवा का साधन मानते थे, अपनी भोग्य सम्पत्ति नहीं। अपने समर्पित जीवन के कारण ही वे अतीव लोकप्रिय थे।

महाराजा प्रतापसिंह के दो ही पुत्र थे और वे चाहते थे कि दोनों अपने सुयोग्य संस्कारों से श्रेष्ठ जीवन का निर्माण करें। इस हेतु स्वयं के आदर्श जीवन के साथ ही

महाराजा ने महलों में भी बड़ा सुघड़ वातावरण बना रखा था। मानसिंह और अभयसिंह का लालन-पालन इसी सुघड़ वातावरण में हुआ था और दोनों का जीवन इसी सुघड़ता से पल्लवित हो रहा था।

किन्तु यौवन की देहरी पर पांव रखते-रखते दोनों की आचरण पद्धति में कुछ-कुछ अन्तर आने लग गया था। मानसिंह बड़ा था अतः राज्य का वही उत्तराधिकारी भी था। इस दृष्टि से एक चतुर व्यक्ति मानसिंह के सम्पर्क में आ गया था और वह उसे भोग के मार्ग पर आगे बढ़ाने की चेष्टा कर रहा था। उसमें उसका स्वार्थ था। वह सोचता था कि महाराजा वृद्ध हैं अतः उसके बाद मानसिंह ही महाराजा बनेगा अतः पहले से यदि वह उसका पूरा विश्वास प्राप्त कर लेगा तो उसे बड़ा पद व बड़ी प्रतिष्ठा मिल सकेगी। एक तो मानसिंह गहरे रूप से विचारवान नहीं था, दूसरे यौवन के प्रारंभ काल में उस व्यक्ति की भोग-प्रधान बातें उसे बड़ी अच्छी लग रही थीं।

अभयसिंह लेकिन अपनी ही माटी में ढल रहा था। अपने पिता के सुसंस्कार उसके जीवन में विशेष रूप से फूलने-फलने लगे थे। अल्प-वय में ही उसने गहरा ज्ञान अर्जित कर लिया था। यौवन के आगमन के बावजूद भी उसकी दृष्टि स्पष्ट थी और उसका आचरण विशुद्ध। कारण उसने अपने जीवन का लक्ष्य सुनिश्चित कर लिया था कि वह स्वस्थ, स्वाधीन और सुन्दर बने तथा उस लक्ष्य के अनुरूप उसने अपनी संयमित व सन्तुलित गति-शीलता भी बनाली थी।

इसके उपरान्त भी दोनों भाइयों के बीच में अपार पारस्परिक स्नेह था। मानसिंह की हार्दिकता भले उतनी गहरी नहीं थी, परन्तु अभयसिंह की मानसिकता अभिन्न रूप से अपने ज्येष्ठ भ्राता से जुड़ी हुई थी और वह अपने बड़े भाई को भी अपने ही जीवन-मार्ग पर अपने साथ ले जाने के लिये सदा तत्पर रहता था।

दोनों भाई इस समय अपने नगर के सुप्रसिद्ध कमल-ताल के किनारे एक लता-गुल्म में बैठे हुए वसन्त ऋतु की मनमोहन दुपहरी परस्पर वार्तालाप में व्यतीत कर रहे थे। कमल ताल की नील जलराशि को स्पर्श करती हुई शीतल मन्द सुगन्ध समीर दोनों भाइयों के मन-मष्तिष्क को तरो-ताजा बना रही थी। चारों ओर फैली हुई सघन वृक्षों की पंक्तियाँ, दृष्टि को मुग्ध बना देने वाली लवंग लताएँ और सुगन्ध से विभोर कर देने वाली बहुरंगी पुष्पों से बिछी हुई धरती दर्शकों के नयनों को बांध देती थी। कमल ताल की सुषमा भी अपूर्व थी। सूरज की चमचमाती किरणों को अपनी अतल जलराशि की गोद में प्यार की थपकी देकर जैसे वह कमल ताल उन्हें कई गुनी चमक के साथ अपने विस्तृत आंचल में फैलाए हुए था। ऐसा लगता था कि नीले आंचल पर सोने का ताना-बाना बुन दिया गया हो। प्रकृति के उस रमणीय वातावरण में दोनों भाई लता गुल्म में एक शिला पर बैठे वार्तालाप में निमग्न थे। अभयसिंह ने उपयुक्त अवसर देखकर ही जीवन निर्माण की चर्चा चलाई थी कि वह मानसिंह की विचारधारा को श्रेष्ठता की ओर मोड़ सके।

अभयसिंह ने आगे कहा—"भाई साहब, आपकी विशेषता यह है कि आपका निशाना अचूक होता है और मेरा निवेदन है कि जीवन का श्रेष्ठ लक्ष्य निर्धारित करके

आप उस तरफ अपना अचूक निशाना लगादें। यह भीतरी लक्ष्य वेध आपको भी समय आने पर अपने पूज्य पिताजी के समान ही लोकप्रिय शासक बना देगा।"

"तुम ठीक कहते हो अभय कि मैं अपने जीवन का श्रेष्ठ लक्ष्य निर्धारित करलूं। तुम्हारी मेरे प्रति जो प्रगाढ़ आत्मीयता है, उसके रहते मैं तुम्हारी किसी बात में इनकार भी तो नहीं हो सकता हूँ!"

"मेरे पूज्य भ्राता, ऐसा कहकर आप मुझे संकोच में न डालें, किन्तु मेरा नम्र निवेदन है कि अपना जीवन स्वस्थ, स्वाधीन और सुन्दर बन जाना चाहिये।"–अभय ने कहा तथा बड़े भाई की प्रतिक्रिया जानने के लिये उसके मुंह की ओर निहारने लगा।

मानसिंह भी जैसे विचारों में डूब गया और उसी प्रवाह में बोलने लगा–"भाई अभय, तुमने जीवन के लिये तीन शब्द कहे हैं -स्वस्थ, स्वाधीन और सुन्दर तथा ये तीनों मुझे बहुत पसन्द हैं। सुन्दरता तो देखो चारों ओर बिखरी पड़ी है और इसका आनन्द उठाने में स्वाधीन हो जाना तो बहुत ही महत्त्व की बात है लेकिन यह भी सही है कि सुन्दरता का स्वाधीनता से पूरा-पूरा आनन्द तभी उठाया जा सकता है जब हम स्वस्थ हों। ऐसे जीवन के निर्माण का लक्ष्य मुझे एकदम स्वीकार है। अब तो मैं धनुष-बाण उठालूं न? हो जाय लक्ष्य-वेध ?"

यह सुनकर दोनों भाई ठठ्ठा मारकर हँस पड़े। फिर अपने स्वर को गंभीरता से भरकर अभय ने कहना शुरू किया –"यह लक्ष्य-वेध तो पीठ पीछे का है भाई साहब, पहले सुन्दरता कहां मिलती है? सुन्दरता तो अन्तिम उपलब्धि होती है। पहले स्वस्थ होना पड़ता है। स्वस्थ का बाहरी अर्थ शरीर की निरोगता माना जाता है किन्तु इसका आन्तरिक अर्थ बड़ा गूढ़ है। स्व का अर्थ है स्वयं यानी अपनी आत्मा और उसमें स्थित हो जाना स्वस्थ कहलाता है। 'स्व' में स्थित तभी हो सकते हैं जब 'पर' से विमुख हो जाय। आत्मा स्व है और सारा संसार पर है। पर से मोह हटालें तभी स्व में स्थित हो सकते हैं। यही समता है कि ममत्व हट कर स्व-पर का भेद समाप्त हो जाय और संसार के समस्त प्राणी आत्मवत् बन जांय। ऐसी स्वस्थ आत्मा ही स्वाधीन बन सकती है–अपने ही अधीन, बाहर के सुखोपभोगों के अधीन नहीं। बाह्य कामनाओं में लिप्त होकर इन्द्रियाँ और मन आत्मा को अपने नियंत्रण में न चला सकें, बल्कि आत्मा उन्हें अपने नियंत्रण में रखकर संयमित बना ले। सफलतापूर्वक ऐसी नियंत्रण शक्ति प्राप्त हो जाने पर आत्म-स्वरूप सुन्दर बन जाता है। ऐसी सुन्दरता हमारे जीवन का लक्ष्य बननी चाहिये। इस लक्ष्य की ओर सामने से निशाना लगाइये मेरे सुहृदवर!"

मन्द-मन्द बह रहे शीतल सुगंधित पवन वेग को जैसे अपने श्वासोश्वास में पूरी तरह भरते हुए और तृप्ति की सांस छोड़ते हुए मानसिंह ने कुछ मस्तीभरे शब्दों में कहा –"तुम तो अल्पायु में ही ज्ञानवृद्ध हो गये हो मेरे भैया, अभी तो जवानी ने झांकना ही शुरू किया है और तुम आत्मा की सुन्दरता में डूब रहे हो। पहले देह की सुन्दरता को तो समझ-भोग लो" और शिला से उठकर मानसिंह ने इधर-उधर टहलना शुरू कर दिया।

अभय ने तो हार मानना सीखा ही नहीं था, बड़े भाई की ओर मुस्कुराते हुए कहा –"भाई साहब मैं कहाँ कह रहा हूँ कि आप यौवन का आनन्द न उठावें या देह की

सुन्दरता को न भोगें ? हमने यौवन की देहरी पर पांव रखा है तो यथा-समय पिताजी हमारा विवाह भी करेंगे। किन्तु यह कार्य एक मर्यादा में ही संभव है। यह नहीं कि भोगों के पीछे आप अपने लक्ष्य से भटक जांय और आपका धनुष बाण लक्ष्य वेध न कर सके !"

शिला पर बैठा अभय भौंचक्का होकर देखता ही रहा कि मानसिंह ने न जाने किस लक्ष्य की ओर अपने धनुष से बाण छोड़ ही दिया। तब अट्टहास कर उठा मानसिंह और बोलने लगा-"भाई अभय, मुझे माफ कर देना, सुन्दरता की अनूठी झलक पाकर मेरा धनुष-बाण स्थिर नहीं रह सका। यौवन से लहकता हुआ मेरा मन पागल हो ही गया।"

अब तो अभय चौंक उठा और-तीव्र गति से उठ खड़ा हुआ यह जानने के लिये कि बड़े भाई के पागल मन ने कोई अनर्थ तो नहीं कर दिया है !

और देखा तो जाना कि वास्तव में अनर्थ ही हो गया है। कमल-ताल के दूसरी ओर वाले घाट पर कई सुकोमल कन्याएँ खड़ी हैं—लगता है अभी-अभी नीली-सुनहली जलराशि में नहा कर बाहर निकली ही हैं। उनके गौर गात अभी-अभी पहने वस्त्रों में से झांकते हुए जैसे स्वर्ण बिखेर रहे हों। उनका सौन्दर्य प्रकृति की सुन्दरता में हजार गुना सुन्दर बन कर किसी की भी आंखों को बरबस मुग्ध बना देने वाला था। प्रतीत हो रहा था कि हँसी की किलकारियाँ मारते हुए मुँह खुले के खुले रह गये हैं और अठखेलियाँ करती हुई देह-यष्टियाँ यकायक स्थिर हो गई हैं।

अभय यह सब देखता रहा और जानने का यत्न करता रहा कि हँसता खेलता हुआ सामने दिखाई देने वाला जीवन अचानक चित्र-लिखित सा कैसे हो गया है ? तभी उसकी नजर सौन्दर्य की एक अद्भुत प्रतिभा पर गिरी जिसके माथे पर जल की कलशी रखी हुई थी। उसे अचरज हुआ यह देखकर कि उस कलशी से एक पतली धार में पानी रिस रहा था और वह पानी उस गौरांगना के सद्यः स्नात मुख को फिर से भिगो रहा था किन्तु उस मुख पर लज्जा की ललाई नहीं रोष की रक्ताभा दिखाई दे रही थी। तब अभय को समझते देर नहीं लगी कि उसके बड़े भाई ने कहाँ लक्ष्य-वेध किया है ?

"जहाँ तक मैं सोचता हूँ कि जिनकी कलशी में आपने बाण छोड़कर छेद किया है और जिन्हें आपने अपनी अवैचारिकता से कुपित कर दिया है, वे चारित्र्य के धनी नगरसेठ की सुपुत्री दिखाई दे रही हैं। ये रोष से तपते हुए चेहरे सारे नगर में राजपुत्रों के आचरण को उघाड़ कर रख देंगे तब क्या होगी नगर के लोकप्रिय शासक की प्रतिक्रिया ?" अभय ने कहा।

इतना सुनना था कि मानसिंह जड़वत् खड़ा रह गया। यह सोचता हुआ कि उसकी छोटी सी चुहलबाजी हकीकत में न जाने कैसा गुल खिला दे ? वह घबरा सा गया। उसे भाई अभय से अभी-अभी सुनी समझदारी की बातें भी याद आने लगीं। इतना समझाने के बाद भी उसने ऐसी हरकत क्यों कर दी ? उसका मन खेदग्रस्त होने लगा और उसने तत्काल कोई उपाय करने की बात सोची।

जैसे मानसिंह ने बिना अभय को बताये श्रेष्ठि कन्या की जल कलशी पर पहला लक्ष्य-वेध किया था, उसी प्रकार अचानक ही मानसिंह ने तभी उसी जल कलशी पर दूसरा

लक्ष्य-वेध भी कर दिया। और अभय आश्चर्य से देखता रहा कि उस जल कलशी से पतली धार में रिसता हुआ और उस गौरांगना के मुंह को भिगोता हुआ पानी वहना वंद हो गया है। यह अभय के लक्ष्य-वेध का चमत्कार था। मानसिंह ने बाण पर लाख लगाकर उस जल कलशी के छेद पर ऐसा अचूक निशाना लगाया कि लाख लगकर छेद वंद हो गया। अपमान से आहत कन्याएँ तब घाट से अपने-अपने घरों की ओर चल पड़ी थीं।

लक्ष्य वेध की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का एक अनोखा क्रम चला। भीतरी लक्ष्य वेध शुरू किया था अभय ने कि वड़े भाई की आन्तरिकता में सुचारू परिवर्तन लाया जाय। मानसिंह ने दो लक्ष्य वेध किये और दोनों वाहरी थे। पहला तो उसकी चंचल मनोवृत्तियों का परिणाम था, किन्तु दूसरा लक्ष्य वेध अभय के भीतरी लक्ष्य-वेध की सुधारक प्रतिक्रिया थी।

मान और अभय विचारों की परिपक्वता में उतने समीप नहीं थे क्योंकि मान के मन को उसका धूर्त मित्र भरमाता रहता था। किन्तु अभय प्रतिपल मान का मान रखने का—वनाने का प्रयास करता था। वैसे दोनों भाइयों का आपसी स्नेह अपार था—दोनों दो शरीर अवश्य थे लेकिन मन-प्राण से एक थे। वड़ा भाई कभी वेपरवाह हो जाय, मगर छोटे भाई की वड़े भाई के लिये की जाने वाली परवाह में कभी भी कमी नहीं आती थी। वह तो जैसे वड़े भाई के लिये अपना सव कुछ समर्पित किये हुए था—वड़ा भाई उसका देवता भी था जिसके लिये वह अपने प्राणों का अर्घ्य भी चढ़ा सकता था तो वड़ा भाई उसका शिष्य भी था जिसकी हितकामना में उसकी देख-रेख की आंख हर समय लगी रहती थी। मान का ऐसा आदर्श भ्राता था अभय, जो जैसे वड़े भाई के लिये ही बना था।

दूसरे लक्ष्य वेध के वाद अभय ने द्रवित से होते हुए अपने वड़े भाई से कहा —"भाई साहव, अच्छा किया कि अपमान के रूप में रिसते हुए पानी को आपने वंद कर दिया—पहले लक्ष्य वेध का इस तरह आपने प्रायश्चित तो कर लिया। किन्तु इस वीच क्या आपने अपने विचारों के परिवर्तन को समझने का प्रयास किया ?"

"भाई अभय, तुमने ठीक कहा था—मेरा ही दोष है, मैंने नहीं माना कि जीवन को स्वस्थ, स्वाधीन और सुन्दर वनाने का ही लक्ष्य वनाना चाहिये और ऐसे आन्तरिक लक्ष्य वेध से ही कोई सच्चा धनुर्धारी वन सकता है। मेरे ये वाहर के निशाने तो महत्त्वहीन हैं। मुझे वहुत दुख: है कि मैंनें तुम्हारी सीख के वाद भी मर्यादा तोड़ी और मैं यह ओछी हरकत कर वैठा। मैं भविष्य में वहुत सावधानी रखूंगा।" जव मानसिंह ने यह कहा तो उसकी आंखों से पश्चात्ताप के आंसू झरने लगे थे।

दोनों भाई एक दूसरे के गले लग गये। संध्याकालीन सूर्य की रक्ताभ किरणें भीतरी भावों से चमकते हुए उन दोनों चेहरों को अधिक प्रदीप्त वना रही थी। आन्तरिक लक्ष्य वेध जैसे सार्थक हो गया था।

• • • •

२

यह नर तन तो अवश्य पाया है, किन्तु इसमें क्रियाएँ सभी प्रकार की चल रही हैं। जो श्रेष्ठ क्रियाओं के द्वारा इस नर तन को सफल बना लेता है, उसी के चरित्र का संसार में बखान होता है। जो इस नर तन को पाप-पंक में घसीट ले जाता है और इसे कलंकित बना लेता है, उसका अस्तित्व भी बाद में भुला दिया जाता है। मानसिंह ने अपने नर तन की क्रिया को मर्यादित और संयमित नहीं रखी तो उसका असद् प्रभाव गिरना ही था। क्रिया यदि मर्यादा या संवर युक्त नहीं होती है तो वह अप्रतिष्ठित होती ही है। रावण की फजीहत क्यों हुई ? क्योंकि उसने पर-स्त्री को स्व-स्त्री बनाने की कुचेष्टा की थी। पाप का दरवाजा एक बार कोई खोल देता है तो अनैतिकता की बाढ़ आ जाती है। अनैतिकता की उस बाढ़ में जो बह गया तो फिर उसकी गति-दुर्गति का अतापता ही नहीं रहता है।

यदि मानसिंह भी अभय की बात मानकर मर्यादा का ध्यान रखता और संकल्प कर लेता कि विवाह के पूर्व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूंगा तो उसकी मनोवृत्तियाँ उस प्रकार से चंचल नहीं बनतीं और न ही श्रेष्ठि पुत्री को वह उस प्रकार छेड़ने का दुस्साहस करता।

जब श्रेष्ठि पुत्री अपनी सखियों के साथ अपने घर पहुँची तो उसके पिता नगर सेठ जयमल अपनी बैठक में बैठे हुए थे। वह सीधी अपने पिता के सामने पहुँच कर मुंह नीचा किये खड़ी रह गई। अन्य सखियाँ भी उसके पीछे खड़ी हो गईं। जयमल उसे देखकर आश्चर्य करने लगे कि यह बहुत बोलने वाली बेटी इस तरह उदास मुँह चुपचाप क्यों खड़ी हो गई है ? उसका आश्चर्य और बढ़ गया, जब उन्होंने देखा कि उसके सिर पर जल की कलशी भी यथावत् रखी हुई है और उसे उतारे बिना ही बैठक में उसके सामने यों गुमसुम खड़ी है ?

जयमल ने बड़े स्नेह से पूछा—"बेटी, क्या बात है, तुम इतनी उदास क्यों हो ? तुम तो कमल ताल पर गई थी न ? जल की कलशी भी तुमने नहीं उतारी और सीधी मेरे पास बैठक में क्यों चली आई ? क्या कोई ऐसी वैसी बात हो गई है ?"

श्रेष्ठि-पुत्री एकदम चुप। सिर उसी तरह थोड़ा झुका हुआ और आँखें उसी तरह नीची।

नगर सेठ का आश्चर्य और बढ़ गया। वे खड़े हो गये और परम स्नेह से अपनी बेटी की पीठ पर हाथ फेरते हुए फिर कहने लगे—"बोलो न बेटी! अपने मन की बात तो कहो। तुम्हें किसी की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। निःसंकोच होकर अपनी बात कह दो। मैं समर्थ हूँ, मैं उसका उपाय करूंगा।"

फिर भी बेटी बोली नहीं। पिता के प्यार से उसकी व्यथा विगलित हो गई। पिता की बात का उत्तर उसके मुँह ने नहीं, उसकी आँखों ने दिया और वे झर-झर आंसू बहाने लगीं।

पिता का हृदय भी हिल उठा। उन्होंने उस की सखियों से पूछा—"तुम्हीं बताओ कि ऐसी क्या बात हो गई है जो तुम सभी चुप हो। बताये बिना तो काम चलेगा नहीं।"

सखियाँ भी चुप। एक अज्ञात भय उन के मन में समाया हुआ था। यह किसी छोटे-मोटे की शिकायत नहीं थी। यह तो एक ऐसे व्यक्ति की शिकायत थी जो कल इसी नगर का महाराजा होने वाला था और महाराजा की कितनी शक्ति होती है? बिना किसी अपराध के किसी का भी सिर वह धड़ से अलग करवा दे तो उसको कौन पूछने वाला है? वे असमंजस में थी कि नगर-सेठ को यह बात बताई जाय या नहीं, क्योंकि बात बताने के बाद उसका न जाने कैसा परिणाम सामने आ जाय! वे वैसी बात कहने का साहस भी नहीं जुटा पा रही थीं।

नगर सेठ के बार-बार के आग्रह में आखिर एक सखी ने साहस का परिचय दिया ही। वह बोली—"सेठ साहब, क्या बताऊँ, बड़ी अनहोनी घटना घटित हो गई है। हम सब हमेशा की तरह कमल ताल के नगर की तरफ वाले घाट पर स्नान करने गई थीं। हमेशा की तरह हमने स्नान किया और जल की कलशियाँ भर कर अपने सिर पर रखीं व चलने को तत्पर हुई ही थीं कि सनसनाता हुआ एक बाण सामने राजमहल वाले घाट से आया और बाईजी की जल की कलशी पर लगा। हम तो एकदम सन्न रह गई। बाण इतनी सफाई से लगा कि कलशी में एक छोटा-सा छेद हो गया और उसमें से पतली धार में पानी रिस कर बाईजी के चेहरे को भिगोने लगा। हमने सामने वाले घाट की ओर नज़र दौड़ाई तो क्या आप कल्पना भी कर सकते हैं सेठ साहब कि कौन दिखाई दिये?

जयमल ने कहा—"मैं क्या कल्पना करूंगा, लेकिन मुझे उस दुष्ट का नाम बताओ ताकि मैं उसे कठोर शिक्षा दिलवा सकूं कि इस तरह की हल्की हरकत करने का क्या नतीजा होता है?"

"सेठ साहब, आप भी उन्हें कोई शिक्षा नहीं दिलवा सकेंगे और इसी कारण हम सब भी भय से जकड़ी हुई हैं। वे थे बड़े राजकुमार मानसिंह। ज्यों ही हमने धनुष-बाण हाथ में लिये हुए घाट पर उनको देखा, हम स्तंभित रह गई। हमारे मुंह खुले के खुले रह गये और पैर ठिठक कर वहीं के वहीं खड़े हो गये। जल कलशी से झरता हुआ पानी उसी तरह बाई जी के चेहरे पर झरता रहा।"

"क्या कहा ? ऐसी हल्की हरकत करने वाला राजकुमार मानसिंह था ? क्या वह वहाँ अकेला ही था ? उसके बाद उसने और क्या किया ?"—अतीव व्यग्रता से सेठ ने आगे पूछा।

"तभी हमें उनके पास छोटे राजकुमार अभयसिंह भी दिखाई दिये। थोड़ी देर तक उन दोनों में शायद कुछ बातचीत हुई और तभी सनसनाता हुआ एक और बाण उधर से आया और बाईजी की जल की कलशी के छेद पर ही आकर लगा। उसके लगते ही कलशी में से पानी का रिसना बंद हो गया। यह बाण भी मानसिंह ने ही छोड़ा था।"—इतना कहकर उस सखी ने श्रेष्ठि पुत्री के सिर पर रखी हुई जल की कलशी को नीचे उतारी और उसे नगर सेठ को दिखाने लगी।

जयमल ने कलशी को ध्यानपूर्वक देखना शुरू किया। छेद भी उसमें दिखाई दिया तो उस को बन्द करने वाली लाख भी सेठ ने देखी। यह देखकर उन्होंने अनुमान लगा लिया कि मानसिंह के पहले लक्ष्य वेध पर अभयसिंह ने उसे समझाया होगा या बुरे नतीजे की आशंका प्रकट की होगी, तब उसने दूसरा लक्ष्य वेध करके छेद को बंद कर दिया, क्योंकि सेठ दोनों राजकुमारों के स्वभाव से परिचित थे।

तब सखी ने बताया—"सेठ साहब, इस घटना से बाईजी भयभीत भी हुई हैं और कुपित भी। वे इस अपमान से आहत भी हैं। आपके प्यार और विश्वास से ही ये सहज हो सकेंगी।"

जयमल विचार मग्न से हो गये। उनके मस्तिष्क में तेजी से नाना प्रकार के विचारों की उथल-पुथल होने लगी। ऐसा लगने लगा कि जैसे वे कहीं गहरे जाकर वहाँ खो से गये हैं। उसी अर्ध चेतनावस्था में उन्होंने प्यार से अपनी बेटी की पीठ थपथपाई और उसे आश्वस्त किया—"जाओ, बेटी, तुम आराम करो। इस घटना की मेरे दिल पर गहरी चोट लगी है और मैं इसका ऐसा उपाय करूंगा कि आगे किसी कन्या के साथ किसी के भी हाथों अपमानजनक व्यवहार न हो - चाहे वह राजकुमार या स्वयं राजा ही क्यों न हो ?"

नगर सेठ जैसे अपने आप से कहते रहे—"मर्यादाएँ टूट रही हैं, तो क्यों ? मैं मर्यादाओं को टूटने नहीं दूंगा—नगर के चरित्र को बिगड़ने नहीं दूंगा। इसके लिये मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा..............."

पिताजी की ऐसी विचारोत्तेजना को देखकर उनकी पुत्री सहम गई और वहाँ से वह हवेली के भीतर चली गई ताकि अपने बारे में और पिताजी के बारे में अपनी माँ को बतला सके। उसके बैठक से बाहर निकलने पर उसकी सखियाँ भी बाहर निकलकर अपने-अपने घरों को लौट गईं।

पुत्री भीतर जाकर एक बार तो अपनी माँ की गोद में अपना मुंह ढांप कर जी भर रोई और तब हिचकियाँ लेते-लेते उसने सारी बात बतादी और यह भी बता दिया कि सारी बात सुनकर पिताजी बहुत उत्तेजना में हैं।

× × × ×

जयमल मात्र अपनी सम्पत्ति के कारण ही नगर सेठ नहीं थे, अपने विशुद्ध चारित्र्य के कारण भी नगरीय सम्मान के धनी थे। किसी के पास अतीव धन का संचय हो जाय और उस धन की चमक से मगरूर बनकर वह अपने आपको सेठ मान ले— लेकिन हकीकत में वह सेठ नहीं कहला सकेगा। सेठ कौन होता है ? सम्पत्ति को प्राप्त करके भी जो सम्पत्ति को अपने सिर पर सवार नहीं होने दे, उसे अपने पैरों में रखे। वह यही सोचे कि यह सम्पत्ति अन्तराय कर्म के क्षयो- पशम से मिली है फिर भी चंचल है और पर-पदार्थ है अतः उसका सद्व्यय करके उसके बंधन से मुक्त रहने का ही संकल्प रखे।

पदार्थरूप परिग्रह की अपेक्षा भी परिग्रह के प्रति मूर्च्छा और ममता बड़ी भयावह होती है। साधु परिग्रह का पूर्णतः त्याग करता है और उसकी ममता से भी परे हो जाता है, श्रावक और सद्गृहस्थ को भी परिग्रह की मूर्च्छा या ममता को तो घटाते ही रहना चाहिये। वह पदार्थ रूप परिग्रह को तो निर्वहन हेतु अपने पास रखे लेकिन उसी रूप में जिस रूप में वह अपने पैरों को कांटों व कंकरों से बचाने के लिये जूते रखता है। कोई भी समझदार जूतों को सिर पर बांध कर नहीं चलता है, बल्कि उन्हें पैरों में ही पहिनता है। अगर कोई जूतों को सिर पर बांधकर चले तो उसे दुनिया पागल कह कर ही पुकारेगी। लेकिन उन गृहस्थों को कितने लोग पहिचानते हैं जो परिग्रह को सिर पर चढ़ा कर चलते हैं ? ऐसे लोग तो पागलों के भी पागल कहे जायेंगे। लेकिन नगर सेठ जयमल परिग्रह-मोह की दृष्टि से समझदारों के भी समझदार थे। वे सद्विवेकी और सदाशयी थे।

नगर सेठ सदा इस भावना के साथ चलते थे कि आवश्यकता के अनुसार जहाँ भी सत्कार्य में मेरे धन का उपयोग हो सके, वहाँ आगे बढ़ कर उसे सेवा कार्य में लगा दूं। वे अपने कर्त्तव्य को भी भली-भांति समझते थे कि नागरिकों के साथ उनके क्या कर्त्तव्य हैं अथवा अपने परिवार के साथ उन्हें क्या करना चाहिये। गंभीरता और उदारता के कारण ही उनकी नगर में पूर्ण प्रतिष्ठा थी। राज परिवार का भी उनके प्रति सम्मान था। उनके पास बाह्य सम्पत्ति का अपार वैभव था तथा वे सद्गुणों के स्वामी होने के रूप में आन्तरिक वैभव के भी धनी थे।

इस समय अपनी पुत्री के साथ घटित घटना की बात सुनकर वे एक ओर गहरी चिन्ता में डूब गये थे तो दूसरी ओर उस चिन्ता से उबरने के लिये गहन चिन्तन भी करने लगे।

विचारों का प्रवाह उनके मन-मस्तिष्क में अनवरत रूप से चल रहा था..........

"मेरी बेटी अपूर्व सुन्दरी है तो कई नागरिकों की बेटियाँ भी सुन्दर होंगी—तो क्या सुन्दर होने का यह अर्थ लगाया जाय कि वे अरक्षित हो जाँय ? क्या कोई भी उनका अपमान करने का दुस्साहस कर बैठे ? फिर रक्षक के रूप में राज्य क्या हुआ ? लेकिन जब रक्षक ही भक्षक बनने पर उतारू हो जाय तो मर्यादाएँ कहाँ बचेंगी ? निर्बलों की रक्षा कौन करेगा ? मानसिंह ने स्वयं राजपुत्र और भावी

शासक होने के बावजूद जो इस प्रकार का अनैतिक दुस्साहस किया है—इसके तो बड़े घातक परिणाम सामने आ सकते हैं। एक उद्दंड, निरंकुश और दुष्चरित्र राजवंशी के हाथों नगर की संस्कृति एवं सुरक्षा का विनाश निश्चित माना जा सकता है…………

"तो क्या इसे चुपचाप सहन कर लिया जाय और अधिक दुस्साहसी अनर्थों की प्रतीक्षा की जाय ? अथवा प्रारंभ हो रहे दुस्साहस को ही कुचल डालने का यत्न किया जाय ? लेकिन, लेकिन……………ऐसा यत्न मामूली यत्न नहीं होगा ! कौन जाने, ऐसे यत्न के पीछे भयंकर संघर्ष झेलने का अवसर पैदा हो जाय ?…………

"हो जाय तो हो जाय…………श्रेष्ठ उद्देश्य के लिये कष्ट भी झेलने पड़ें तो पड़ें …………लेकिन बुराई से जरूर टकराया जाय, घबराया नहीं जाय…………चूंकि टक्कर बड़े आदमी से है तो उसके लिये तैयारी भी बड़ी की जानी चाहिये।……………राजबल के विरोध में जन बल खड़ा किया जायं…………यह तो सभी की बहन-बेटियों की इज्जत का सवाल है—सभी एकजुट क्यों नहीं होंगे ? मुझे यही करना चाहिये और मर्यादाओं के टूटते हुए बांध को बचा लेना चाहिये……………"

इन विचारों के साथ ही जयमल की मुखाकृति खिल उठी—उस पर साहस, विश्वास और कर्मठता की आभा फैल गई।

तभी सेठानी वहाँ पहुँची। उसने चिन्तातुर अपनी बेटी की व्यथा-कथा सुनी थी और अपने पति की उससे उत्पन्न उत्तेजना के बारे में भी। इसीलिये वह पति को आश्वस्त करना चाहती थी। उसने अपने पति का खिला हुआ चेहरा देखकर संतोष की सांस ली और सोचने लगी कि पति ने समस्या का कोई न कोई सुन्दर समाधान निकाल लिया है। इस कारण वह कुछ निश्चिन्त सी होती हुई बोली—"प्राणनाथ, घटना बहुत छोटी है लेकिन बहुत बड़ी भी है। नगर में बहू-बेटियों के लिये जो एक निर्भयता का वातावरण है, वह तो इस तरह समाप्त हो ही जाएगा, किन्तु ऐसी अनैतिकता के प्रचलन से भविष्य में नागरिकों के लिये क्या-क्या संकट पैदा हो जाय—कौन कह सकता है ? इसलिये नगर सेठ के पद से आपका विशेष कर्त्तव्य है और आपकी सहधर्मिणी होने के कारण यही निवेदन करना चाहती हूँ कि आप साहसपूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करें—मैं कंधे से कंधा मिलाकर आपके साथ रहूंगी।"

"प्रिये, मुझे तुमसे यही आशा है। पति को धर्म और नीति के मार्ग पर जो अपने साथ लेकर चलती है, वही तो सच्ची धर्म पत्नी होती है। मैंने भी अब अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया है तथा हम सबको निडर होकर उसका पालन करना होगा।"—सेठ ने अति उत्साह के साथ अपना निर्णय सुनाया और 'क्या करना है' वह सारी बात सेठानी को समझाई।

जैसे डूबते उतराते व्यक्ति ने बड़ी कठिनाई से सागर पार कर लिया हो और वह अपनी सफलता पर फूला न समा रहा हो, कुछ-कुछ उसी जोश से सेठजी ने कहा—

"मर्यादाओं के बांध को मैं टूटने न दूंगा—अपना सब कुछ होम दूंगा, मेरे साथ समस्त नागरिकों का बल है। क्योंकि एक बार बांध टूट गया तो सारा नगर और नगर का 'सब कुछ' बह जायगा……………" □

३

अभयसिंह कमल-ताल से लौटकर जब अपने कक्ष में एकाकी हुआ, उसके मन में विचारों का अन्तर्द्वन्द्व फूट पड़ा।

वह अपने पिताजी की सुदृढ़ नैतिकता एवं निस्पृह न्यायप्रियता को भलीभांति पहिचानता था और साथ ही वह यह भी जानता था कि बड़े भाई मानसिंह ने चरित्रहीनता की जो हरकत की है, वह बहुत ही गम्भीरता से ली जायगी। अपने पिता के शासन में नगर का जैसा शुद्ध वातावरण बना हुआ था, उसमें यह घटना कलंक रूप मानी जायगी और खास तौर पर इसलिये कि चारित्रिक मर्यादा की पाल तोड़ने वाला स्वयं राजकुमार और राज्य का उत्तराधिकारी है।

उसके विचार द्रुतगति से दौड़ने लगे—यह तो बड़े भाई साहब की बात है, लेकिन वह खुद भी तो इस घटना से सम्बद्ध है। वह साथ था और ऐसा हुआ—यह तो एक बात, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं पाया—क्या यह उसका भी अपराध नहीं माना जायगा?........ इसे भी छोड़ दें, तब भी क्या वह दोषमुक्त हो सकेगा?........अभी भी तो वह दोष में ही चल रहा है। समझ लिया जाय कि छोटा भाई बड़े भाई को उस हरकत से रोक नहीं सका, किन्तु क्या उसका यह फर्ज नहीं है कि वह बड़े भाई के इस अपराध की तत्काल सूचना तो पिताजी और राज्य के शासक को कर देता?........तो क्या वह अब भी जाकर इसकी सूचना करदे? अपराध की सूचना न करना भी तो जघन्य अपराध ही कहलायगा!........

और इस विचार के साथ ही अभयसिंह का धर्म संकट गहरा हो गया। यह स्थिति साफ हो गई कि यदि वह अब भी बड़े भाई के अपराध की सूचना नहीं देगा तो दोनों भाई समान रूप से अपराधी माने जायेंगे और समान रूप से ही राज्य-दण्ड के भागी होंगे।

........अब क्या किया जाय? वह अब भी अगर सूचना दे देता है तो भाई साहब ही दण्ड के भागी होंगे तथा पिताजी की नजरों में उसका कार्य सराहनीय माना जायगा.... सराहनीय ही क्यों? यह प्रत्येक नागरिक के समान ही उसका भी कर्त्तव्य है कि अपनी जानकारी में आने वाले प्रत्येक अपराध की तरह योग्य अधिकारी को समय पर सूचना दे........फिर उसका तो विशेष कर्त्तव्य है क्योंकि वह तो स्वयं अपराध के समय अपराधी के साथ था।

लेकिन........भाई साहब उसे कितने प्रिय हैं ? भाई साहब उसके मन और प्राण हैं ! क्या वह किसी भी कीमत पर भाई साहब का साथ छोड़ सकता है ? आखिर भाई साहब ने उसी की बात मानकर ही तो दूसरा लक्ष्य-वेध किया था। वे जब सुधर रहे हैं तो मैं उनको अधिक कठिनाई में फंसा दूं—क्या यह उचित रहेगा ? दोनों भाई तो हम अभिन्न हैं मानो दो शरीर, एक आत्मा—फिर मैं सूचना कैसे कर दूं ?........

अभयसिंह की विचारधारा धर्म संकट से निकल कर एक दिशा में मुड़ने लगी।....

........चाहे जो हो, वह बड़े भाई साहब से जुदा नहीं हो सकेगा........वह उनके अपराध और दण्ड का सहभागी ही बनेगा........भाई साहब उसके भ्राता ही नहीं, सब कुछ हैं। वह हर हाल में उनके साथ ही रहेगा।

इस निश्चय के साथ ही अभयसिंह का मानस साफ होगया और उससे सारे बदन में हल्कापन लौट आया। वह उठा और खिड़की के पास खड़ा हुआ तो जान पड़ा कि आधी रात होने वाली है। अरे, यह क्या ? उसका सोच इतना लम्बा चला ! उसने एक अंगड़ाई ली और सोने के लिये पलंग की ओर कदम बढ़ाये।

तब अचानक ध्वनि गूंजी—खट्, खट्, खट्। अभी दरवाजे पर दस्तक देने वाला कौन है ? आशंका के साथ दरवाजा खोला तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि इस समय भाई साहब कैसे आ गये हैं ! क्या उसकी तरह वे भी विचारों के अन्तर्द्वन्द्व में डूबते उतराते रहे हैं ? और शायद अब भी उलझे हुए हैं ? तभी तो आधी रात में पधारे हैं !

"पधारिये, क्या अभी तक आप सोये नहीं ? आपने क्यों कष्ट किया ? मुझे ही आपके कक्ष में बुलवा लेते।"—अभयसिंह ने बड़े भाई को पलंग पर बिठाकर बड़ी नम्रता से कहा।

मोह-दशा एक तेज नशे के रूप में आती है और जब यह आती है तो मनुष्य बेभान हो जाता है। उस दशा में वह क्या अनर्थ कर बैठता है—उसका उसे कोई विचार नहीं आता। लेकिन जब वह नशा उतरने लगता है और वह सहज होकर सोचने लगता है तब उसका कृत्य असली रूप में उसके सामने खड़ा हो जाता है और वह उसके परिणाम की आशंकाओं तथा चिन्ताओं को बुरी तरह से जगा देता है। उस समय वह आकुल व्याकुल हो जाता है तथा अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य के बारे में कुछ भी सोच नहीं पाता है। ऐसी ही अवस्था मानसिंह की होगई थी। जब पहला लक्ष्य वेध किया था तब तो वह जवानी की मस्ती में रंगा हुआ था, किन्तु छोटे भाई के उद्‌बोधन पर उसने दूसरा लक्ष्य वेध किया तो उसकी मोह-दशा उतरने लगी थी। उसके बाद अपने कक्ष में लौटने पर तो वह विभिन्न प्रकार की आशंकाओं से जकड़ गया और भयभीत सी स्थिति महसूस करने लगा। आचरणनिष्ठ शासक के हाथों कौन जानें, उसे क्या दण्ड भुगतना पड़ सकता है। यह सोचकर ही वह बार-बार सिहर उठता था।

जब मानसिंह का मन चिन्ताओं की चोटों से चूर-चूर होने लगा और वैसी मानसिकता जब उसे असह्य हो उठी तो वह अपने कक्ष से बाहर निकल पड़ा। लेकिन बाहर कहाँ जाता और उसके चिन्तातुर मन को आश्वासन देने वाला भी अन्य कौन था ? उसके लिये भी तो अभय अपना ही प्राण था। वह उसी के कक्ष की ओर दौड़ा आया।

"भाई अभय, क्या बताऊँ ? मैं तो सोच-सोच कर पागल हुआ जा रहा हूँ कि मुझसे ऐसा अपराध क्यों हो गया और अब जब इसकी खबर पिताजी को लगेगी तो न जाने वे मुझे कितना कठोर दण्ड देने के लिये तत्पर हो जायेंगे ?""क्योंकि उनकी न्याय-प्रियता को हम जानते हैं। न्याय करते समय अपराधी भले उनका बेटा हो—वे कोई लिहाज नहीं करेंगे। कहाँ तो मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र हूँ और कहाँ मेरी आचरणहीनता से उन्हें दुखःद लांछना भोगनी पड़ेगी और मुझे लांछनायुक्त दण्ड ? तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ? मुझे कुछ भी सूझ नहीं पड़ रहा है। तुम कहो तो मैं अभी ही जाकर पिताजी को अपना अपराध बता दूं और दण्ड माँग लूं ? तुम्हीं मुझे राय दो, मेरे लिये तो तुम्हीं सब कुछ हो—मेरे छोटे भाई भी और मेरे गुरु भी......." कहते-कहते मानसिंह की गहरी चिन्ता आँखों से आँसू बनकर बिखर पड़ी।

अभयसिंह ने अपने बड़े भाई को आश्वस्त करते हुए बताया—"भाई साहब, मैंने आपके साथ 'जीवन के दृष्टिकोण' की चर्चा इसी लिये शुरू की थी कि आपका मन अपने उस चालाक मित्र की संगत से जो बहकना शुरू हो गया था, उसे आप अपनी ही प्रेरणा से नियन्त्रित करते। परन्तु बाहरी सुन्दरता के मोह में आप फंस ही गये और वह हरकत कर ही बैठे........"

बीच में ही मानसिंह बोल पड़े—"भैया, तुमने तो बहुत समझाया, मगर हकीकत में उस दोस्त की सिखावट का ही वह करतब था......."

"कोई बात नहीं, भाई साहब, जो हुआ सो तो हो गया। अब उसे अनहुआ कर नहीं सकते। मैं भी शाम से इसी चिन्ता में डूबा हुआ था और सो नहीं पाया था किन्तु अभी-अभी मैंने अपना मन बना ही लिया था कि हर हाल में मैं आपके साथ रहूँगा—दण्ड की हालत में भी। मैं आपके बिना रह नहीं सकता।"

"ऐसा निश्चय करके तुमने मुझे बहुत बड़ी चिन्ता से उबार लिया है। तुम मेरे साथ रहोगे तो फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं—तुम मेरे संरक्षक जो हो......."

"ऐसी बात न कहें, भाई साहब, मैं आपका छोटा भाई हूँ और आप मुझे अपना छोटा भाई ही रहने दीजिये व समझिये। आपकी चिन्ता का भार-वहन मैं खुशी से करूंगा आप निश्चिन्त हो जाइये। अब मेरा निवेदन सुनिये।"

"कहो भैया कहो, जैसा तुम कहोगे, वैसा ही मैं करूँगा।"

"भाई साहब, मेरा निवेदन यह है कि हम भावी की प्रतीक्षा करें। महाराजा को इस घटना की जानकारी तभी हो सकेगी, जब स्वयं नगर सेठ इसका अभियोग प्रस्तुत

करेंगे। यदि ऐसा होगा तो हम लोगों को दण्ड मिलना निश्चित है क्योंकि महाराजा नगर सेठ का बहुत सम्मान करते हैं तथा नगर सेठ भी सत्यवादी एवं चरित्रशील व्यक्ति हैं। हो सकता है कि महाराजा के पास अभियोग ही न पहुँचे। अतः हम स्वयं इसकी जानकारी महाराजा को न दें। दण्ड मिले या न मिले—मैं आपके साथ रहूँगा, किन्तु आपको भी अब दृढ़ संकल्प ले लेना चाहिये कि आप अपने शुद्धाचरण के प्रति सदैव सावधान रहेंगे।"

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने इस घटना से सबक सीख लिया है और जीवन भर इसे याद रखूंगा।"

मानसिंह के इस आश्वासन से अभयसिंह को हार्दिक प्रसन्नता हुई कि भाई साहब को अपने साथ का विश्वास दिलाने से वे चारित्र्य-पथ पर अग्रगामी होंगे। यह एक श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न होगा। भ्रातृ-प्रेम और प्रसन्नता से अभिभूत होकर अभयसिंह ने कहा—"भाई साहब, अब आप यहीं पर पोढ़ जाइये। मन में किसी प्रकार की चिन्ता न रखें।"

इस तरह अभय ने मान का मान रखा।

रोप तीन तरह का होता है—तामस, राजस और सात्विक। पहले दो प्रकार के रोप में मनुष्य प्रतिशोध की भावना से न्यूनाधिक रूप से संज्ञाहीन हो जाता है, किन्तु सात्विक रोप की दशा में मनुष्य अपनी स्वस्थ चित्तता तथा चेतनशीलता को खोता नहीं है। रोप होता है तो इस बात का कि क्यों नैतिकता व चरित्रशीलता का निर्वाह नहीं हो रहा है अथवा क्यों मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है? सात्विक रोप सदा ही किसी शुभ उद्देश्य के लिये उत्पन्न होता है। कमल—ताल की पूरी घटना सुनने के बाद नगर-सेठ जयमल को भी सात्विक रोप आ रहा था। वे निष्कारण किसी को दबाना नहीं चाहते थे या किसी के प्रति बुरी भावना नहीं रखते थे, परन्तु अनैतिकता का जैसा स्वरूप उनके सामने उपस्थित हुआ था, उससे वे विक्षुब्ध हो उठे थे।

जयमल का सात्विक रोप इस बात पर था कि मेरी कन्या कुंवारी है और उस पर बाण चलाकर मानसिंह ने एक प्रकार से घड़े को नहीं फोड़ा है बल्कि वास्तव में उसने नीति को तोड़ा है। महाराजा प्रतापसिंह के बाद जब ऐसी नीति वाला राजकुमार शासक बनेगा तो वह अपने उदाहरण से सारे नगर के आचरण की क्या गति बना देगा? इसलिये ऐसी नीति का कठोर विरोध करना प्रत्येक नागरिक का धर्म माना जाना चाहिये

तभी उन्हें अपने निर्णय का ध्यान आया और उन्होंने अपने विश्वस्त कर्मचारी को बुलाकर कहा—

"देखो, तुम नगर के सभी वर्गों के प्रमुख नागरिकों की यह सूची लो और उन्हें आदर पूर्वक मेरे यहाँ सायंकाल एक बैठक में एकत्रित होने का आमंत्रण देकर आओ। सबको बताना कि बैठक में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय विचारणीय है जिसका प्रभाव समस्त नागरिकों की आचरण पद्धति पर पड़ने वाला है। वापिस आकर मुझे तुरन्त सूचना दो कि सभी आमंत्रित कर लिये गये हैं।"

"मैं शीघ्रातिशीघ्र आमंत्रण का कार्य पूरा करके पुनः आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ"—कहकर वह कर्मचारी चला गया।

नगर सेठ पुनः विचारणा में बह गये कि यह घटना छोटी सी है किन्तु बड़े-बड़े अग्निकांड छोटी सी चिनगारी से ही होते हैं और चरित्र के क्षेत्र में राजपुत्र की ऐसा दुष्टता तो अक्षम्य है। मैं जब शक्तिशाली हूँ तो मुझे सभी प्रमुख नागरिकों को प्रेरणा

देनी चाहिये कि वे निर्भय होकर इस घटना की भावी आशंका के विषय में महाराजा
निवेदन करें और न्याय करने को कहें। यदि महाराजा भी पुत्र-मोह से ग्रसित हो जाते
तो जनता को आन्दोलन करने के लिये तैयार करें क्योंकि यह पूरे नगर के भविष्य
प्रश्न है। आज मेरी कन्या के साथ धृष्टता का छोटा सा व्यवहार हुआ है, कल दूस
कन्याओं के साथ इससे भी अधिक अशोभन व्यवहार हो सकता है। इस तरह देखें तो
छोटी सी घटना भी भविष्य में भयंकर रूप ले सकती हैं और वास्तव में इस घटना
इसी रूप में देखना चाहिये।

जब कोई आघातकारी विषय होता है तो उससे सम्बन्धित विचार मन-मस्ति
पर मंडराते ही रहते हैं। यही अवस्था जयमल की हो रही थी। वे विचारों के वेग में
ही जा रहे थे कि अपने कर्मचारी की आवाज सुनकर सावधान हुए।

"सेठ साहब, करीब-करीब सभी प्रमुख नागरिक आमंत्रण देते ही आपके यहाँ पहु
चुके हैं तथा सभागार में एकत्रित हैं। वहाँ आपकी ही प्रतीक्षा की जा रही है।"-
कर्मचारी ने निवेदन किया।

"अच्छा........" कहकर नगर सेठ जल्दी से उठे और अपने को थोड़ा सा स्व
बनाकर सभागार की ओर चल पड़े।

"नागरिक बन्धुओ! मैं आप सबका मेरे यहाँ हार्दिक सत्कार करता हूँ तथा क्ष
चाहता हूँ कि आपको यहाँ पधारने का कष्ट दिया है। किन्तु प्रयोजन इतना महत्त्वपू
और आवश्यक है कि जिस पर तत्काल विचार करके हम सबको समूचे नगर के हित
दृष्टि से समुचित निर्णय लेना चाहिये............

"मैं संक्षेप में निवेदन कर दूं कि आज दोपहर में मेरी सुपुत्री अपनी कई सखि
के साथ हमेशा की तरह कमल-ताल पर स्नान करने गई तो वहाँ पर वापिस लौटते सम
दूसरी ओर से राजकुमार मानसिंह ने एक बाण छोड़कर उसकी जल की कलशी में छे
कर दिया जिससे पानी झरने लगा और वह भीगने लगी। फिर दूसरा बाण छोड़क
उन्होंने उस छेद को बंद कर दिया। कुंवारी कन्या के साथ राजकुमार जैसे उत्तरदा
युवक की ऐसी छेड़छाड़ एक ओर अपमानजनक है तो दूसरी ओर नगर के चारित्रिक वात
वरण को प्रदूषित करने वाली भी है। क्योंकि सभी घरों में कुंवारी कन्यायें भी हैं त
बहुएँ भी हैं और यदि राजकुमार ही ऐसी ओछी हरकतें शुरू करें तो फिर दूसरे उद्द
युवक क्या पीछे रहेंगे? ....

"मेरी मान्यता है कि ऐसी हरकत को शुरू में दबा देने की कोशिश करनी चाहि
ताकि नगर का वातावरण यथावत् शुद्ध बना रहे..........."

इतना कहकर नगर सेठ सभासदों की ओर देखने लगे कि इस समस्या पर दूस
प्रतिनिधियों के क्या विचार और सुझाव हैं। जब कोई नहीं उठा तो सेठ ने अपना वक्तव्
जारी रखा—

"बन्धुओ! मैं सेठ या किसी विशिष्ट पुरुष की हैसियत से आपको कुछ नहीं क

रहा हूँ। जो मेरा निवेदन है वह एक सामान्य नागरिक की हैसियत से ही है। हम सब एकजुट होकर ही इस समस्या का सामना कर सकते हैं कारण यह राजवंश का मामला है। जनता जनार्दन होती है और संयुक्त रहने पर उसमें बड़ा बल रहता है। सूत के पतले-पतले धागे अकेले कुछ नहीं करते, किन्तु कई धागे शामिल होकर रस्सा बनालें तो उससे हाथी को भी बांध सकते हैं। आज हमको रस्सा बनकर इस बारे में समुचित कार्य-वाही करने की आवश्यकता है। कृपया आप अपने-अपने विचार प्रकट कीजिये और योग्य सुझाव दीजिये।"

एक प्रतिनिधि धीरे-धीरे खड़ा हुआ और खांस कर गला साफ करते हुए बोला—"सेठ साहब ने जो बात कही है, उस तरफ सबका ध्यान जाना चाहिये। राजकुमार की हरकत को अच्छी नहीं कह सकते हैं लेकिन राजकुमार ने एक बाण छोड़ने के बाद दूसरा बाण छोड़कर अपनी भूल सुधार ली है अतः मेरी राय में इस समय कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है।"

अपनी उत्तेजना को संयत करते हुए सेठ ने कहा—"आपने जो अपनी राय जाहिर की है, पुनः सोचिये कि क्या वह उचित है? अभी पड़ौस में आग लगी है और उससे अगर आप अभी खतरा नहीं मानें, लेकिन जब यह आग सब ओर फैलने लगेगी, तब क्या किसी का भी घर सुरक्षित रह सकेगा? जब नगर के सारे घर जल रहे होंगे तो कौन किसकी आग को बुझा पायेगा? यह रावणी वृत्ति की शुरुआत है—इसे यहीं नहीं रोकेंगे तो हम नगर की संस्कृति को नष्ट होने से नहीं बचा सकेंगे। यह सामूहिक एकता की वेला है अतः हमें गंभीरतापूर्वक चिन्तन करना चाहिये।"

तब अन्य प्रतिनिधि ने नगर सेठ के कथन का उत्तर दिया—"यह चरित्रशीलता तथा आचरण शुद्धता की समस्या है तो धर्म और नीति की भी समस्या है। धर्म और नीति की रक्षा के लिये हम सब नागरिकों में एकता जागनी ही चाहिये। मैं सेठ साहब से पूछना चाहूंगा कि इस बारे में क्या कार्यवाही करने का उनका प्रस्ताव है?"

नगर सेठ ने अपना सुझाव प्रस्तुत किया—"बन्धुओ! मैं नागरिकों द्वारा तत्काल कोई विद्रोह कर देने का सुझाव नहीं रख रहा हूँ। मेरा निवेदन है कि पहले हम सभी एक साथ महाराजा के पास चलें और उनके समक्ष अपनी मनोभावनाओं को प्रकट करें। यदि उनके द्वारा ही हमें न्याय मिल जाता है तो हमें और कुछ नहीं करना है। किन्तु पुत्र के मोह में गिर कर यदि महाराजा इस समस्या का सन्तोषजनक समाधान नहीं कर पाते हैं तो फिर हमें अपनी एकता का बल दिखाना होगा और जनता का आन्दोलन जगाना होगा।"

यह सुनकर वह प्रतिनिधि फिर से खड़ा हुआ और कुछ दबे से स्वर में बोलने लगा —"सेठ साहब का प्रस्ताव अच्छा है मगर अपने-अपने हिताहित की नजर से इस पर गहरा विचार कर लेने की जरूरत है। यह कोई सामान्य नागरिक का मामला नहीं है—राज-कुमार मानसिंह का मामला है जो कल महाराजा बनने वाले हैं। इस समय जो भी नागरिक जो कुछ कहेगा-करेगा, उसका वे पूरा ध्यान रखेंगे और शासक बन जाने पर

निश्चय ही उसका प्रतिशोध लेंगे। इस दृष्टि से मैं सब प्रतिनिधियों को सावधान कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।" वार्ता को कायराना मोड़ देकर वह प्रतिनिधि नीचे बैठ गया।

सभी सभासदों में तब भीतर खुसुर-फुसुर होने लगी और धीरे-धीरे भयमिश्रित स्वर उभरने लगे। उन्हीं स्वरों को एक अन्य प्रतिनिधि ने आवाज दी—"यह बड़ी गंभीर बात है। वैसे ही राजकुमार मानसिंह उद्दंड भी हैं तो क्रूर भी। महाराजा भी वृद्ध हैं और कह नहीं सकते कि कब मानसिंह का राज्याभिषेक हो जाय? इस कारण विरोध करने की सोचने के पहले भली भांति आगापीछा देखलें। समन्दर में रहना और मगर से बैर करना-क्या दोनों बातें एक साथ चल सकेंगी? पीढ़ियों से बसे हुए हम लोग नगर छोड़ कर अन्यत्र जा नहीं सकते तो फिर राज्य का विरोध लेना भी क्या हितकर होगा? ऐसी छोटी-मोटी घटनाएँ तो होती रहती हैं।"

जयमल का सात्विक रोष भी उभर कर गहरा हो गया। यह उनके विश्वास को बड़ा धक्का लगा था। वे हमेशा सामान्य नागरिकों की भरपूर सहायता किया करते थे और सभी वर्गों के प्रतिनिधियों का पूरा सम्मान रखते थे। इस कारण वे प्रभावशाली भी थे और जनप्रिय भी। इसी जन-प्रेम के आधार पर ही उन्होंनें अपनी पुत्री की घटना को सबके समक्ष रखकर चरित्रहीनता की समस्या से सफलतापूर्वक लड़ने की आशा रखी थी। उन्हें पूरा विश्वास था कि उनकी बात का पूरा-पूरा मान किया जायेगा और सभी उन्हें इस प्रश्न पर पूरा-पूरा सहयोग देंगे। किन्तु यह क्या? सभी प्रतिनिधियों में से एक भी प्रतिनिधि ऐसा नहीं निकला, जो उनके प्रस्ताव का पूरा-पूरा समर्थन करता और विरोध के वातावरण को बनाता। क्या भय और स्वार्थ इतनी बड़ी बुराइयाँ होती हैं जो व्यक्तियों के कर्त्तव्यों का दरवाजा ही बन्द कर देती हैं? अपनी ही जलती हुई लोगों को दीखती है, दूसरों के या पूरे समाज के हित के लिये साहस जुटाने से क्या लोग इस तरह कतरा जाते हैं? एकदम अनसोचा उनके सामने घटित हो रहा था। वे अब और बोलें भी, तो क्या बोलें? और उसका भला अब क्या असर होगा? वे जड़वत् से हो गये, बड़ी कठिनाई से वे उठे और कहने लगे—

"बन्धुओ! मुझे आप लोगों से ऐसी आशा नहीं थी। अगर आप इस घटना को छोटी-मोटी घटना समझते हैं और मेरे से सम्बन्धित होने के कारण कोई योगदान देना नहीं चाहते हैं तो कोई बात नहीं है। मेरा जीवन तो फिर भी सुखमय चल रहा है और मेरी समस्या का समाधान निकाल लेने में मैं अपने आपको समर्थ समझता हूँ। किन्तु आपकी यह साहसहीनता अवश्य ही भावी पीढ़ी की सुरक्षा और सदाचारिता को खतरे में डाल देगी। उस दोष से आपको सदैव आरोपित माना जायेगा।........

"मैंने इसे व्यक्तिगत नहीं, सार्वजनिक प्रश्न मानकर ही छेड़ा था और यदि आपने इस प्रश्न पर ऐसी कायरता दिखलाई है तो इसके परिणाम घातक ही होंगे। जन समुदाय का स्वस्थ जीवन ही राज्य की रक्षा करता है और शासक कुल की परम्परा को कर्त्तव्य-निष्ठ बनाये रखता है। यदि आज इस नगर का जनसमुदाय यह नहीं सोच पाता है कि

ग्राने वाले शासक का जीवन कैसा है और उसके शासन काल में नगर की सभ्यता व संस्कृति की क्या दशा बनेगी तो यह आज के जनसमुदाय की ही भीरुता होगी। आज नहीं तो कल आप ही सोचें कि क्या ऐसी परिस्थितियों में आप अपना कर्त्तव्य भली प्रकार निबाह रहे हैं ? ...."

इसके बाद भी सेठ ने भारी मन से सबको स्नेह पूर्वक भोजन कराया और मान-पूर्वक विदा किया।

रात का पहला पहर बीत चुका था। निराशा से नगरसेठ कुछ थकान का अनुभव कर रहे थे, किन्तु यह समय थक कर आराम करने का नहीं था। उन्हें सारी परिस्थितियों पर गंभीरता से विचार करके शीघ्र से शीघ्र समुचित निर्णय ले लेना था। उन के मन में जन-सहयोग का बड़ा सम्बल था, जो टूट चुका था और राजवंशियों की सहानुभूति अथवा सहयोग-भावना के सम्बन्ध में वे निश्चित रूप से कुछ नहीं सोच सकते थे अतः कोई भी निर्णय उन्हें अपने ही आधार पर लेना था।

ऐसे समय में सहधर्मिणी के सम्बल को ही उन्होंने सबसे बड़ा सम्बल माना और वे हवेली के भीतरी कक्ष में चले गये।

"पधारिये, नागरिक प्रतिनिधियों ने क्या निर्णय लिया है ?—उत्सुकता से सेठानी ने पूछा।

"भद्रे, उन लोगों में इतना साहस नहीं है कि वे राजकुमार की इस हरकत का या यों कहें कि नीतिहीनता का विरोध कर सकें। वे डरते हैं कि यदि वे सब साथ में राजकुमार के विरुद्ध अभियोग लेकर महाराजा के पास जावेंगे तो बाद में मानसिंह उनसे इसका बदला लेगा।"

"तो क्या सभी साहसहीन ही निकले ?"

"हां प्रिये, अभी वे अपने हितों को खतरे में डालने के इच्छुक नहीं हैं।"

"तो फिर आप अकेले ही पधारें महाराजा के पास। चाहे जो कुछ हो, बुराई का विरोध करने मे पीछे हटना हमको कतई मंजूर नहीं होना चाहिये।"

"तुम्हारा कथन सही है और मुझे भी अकेले जाकर महाराजा के सामने राजकुमार के विरुद्ध अभियोग लगाने में कोई भय या संकोच नहीं है, किन्तु मेरे इस कार्य से यह स्पष्ट हो जायेगा कि नगर के नागरिकों में एकता नहीं रही है तथा हमें नागरिकों का सहयोग भी नहीं रहा है। यह कुछ अशोभनीय सी स्थिति है।"

"तो फिर हमे क्या करना चाहिये ?"

"यही तो मैं सोच रहा हूं और तुम्हारे साथ चर्चा करके तुरन्त कोई निर्णय लेना चाहता हूं।"

"अपनी सुपुत्री के साथ मानसिंह द्वारा किया गया यह व्यवहार निश्चय ही अपमान-जनक है और नगर के भविष्य के लिये भी आशंकापूर्ण है। अतः इसे हम चुपचाप पीकर

तो बैठे नहीं रह सकते हैं।"—सेठानी ने आत्मसम्मान की कसक से यह सत्य खोलकर रख दिया।

जयमल भी कम आत्म-सम्मानी नहीं थे। उनके मस्तिष्क में भी ऐसे ही विचार उमड़-घुमड़ रहे थे, जिन्हें उनकी धर्मपत्नी ने सहज ही में एक दिशा दे दी थी। वे उससे उत्साहित होकर बोले—

"हाँ प्रिये, मेरा भी ऐसा ही विचार है। या तो पूरी शक्ति से अन्याय का प्रतिकार करो या फिर अन्याय के क्षेत्र से ही दूर हो जाओ। अन्याय को चुपचाप पी जाना हम सबके लिये कतई संभव नहीं है। और अब हमें इसी विचार के प्रकाश में योग्य निर्णय ले लेना चाहिये।"

"सेठ साहब, इस समय हमें ऐसा निर्णय लेना चाहिये कि जिससे हमारे आत्म-सम्मान की भी रक्षा हो जाय और नगर की फूट भी बाहर नहीं दीखे। क्योंकि एक बार अगर नगर की अखंडता टूट गई तो फिर मानसिंह जैसा व्यक्ति शासक बनने पर उसका अनुचित लाभ उठाकर निरंकुश और क्रूर हो जायेगा। इस कारण हमारे हाथों अभी या भविष्य में नगर का किसी भी प्रकार से अनिष्ट हो, यह भी हमें स्वीकार नहीं होना चाहिये।"

"तो प्रिये, इसका यही अर्थ होगा कि हम चुपचाप इस साहसहीन नगर को छोड़-कर कहीं अन्यत्र चले चलें। इसके अलावा और कोई चारा नहीं है।"

"एक शुभ उद्देश्य के लिये यदि हमें अपना घर-संसार भी छोड़ना पड़े तो भी कोई खेद नहीं करना चाहिये-मेरा तो यही मत है।"

"तुम्हारा ही मत मुझे मान्य है भद्रे। तो शुभस्य शीघ्रम्। कुछ दिन गुजरे, बात ज्यादा फैले और राज्य की ओर से भी कहीं अपने विरुद्ध कोई प्रतिकारात्मक कार्यवाही हो-इन सबसे पहले ही हमें यह नगर छोड़ देना चाहिये। मेरा तो कहना है कि आधी रात बीतने आई है और इसी शून्य काल में हमें प्रस्थान कर देना चाहिये।"

"तो ठीक है, आप भी तैयार हो जाइये, मैं भी बच्चों को तैयार कर लेती हूँ और चल पड़ते हैं अभी ही। जब कायरता का पहला चिह्न हमारे सामने प्रकट हो गया है तो वैसे नगर में ठहरे रहना उपयुक्त भी नहीं है, क्योंकि कल यही कायरता क्या रंग दिखावे-कौन जानता है ? आग फैलने से पहले बच निकलना नीति की बात है।"

फिर देखते ही देखते तैयारी पूरी हो गई और श्रेष्ठि परिवार धर्म और नीति की अटलता लेकर निकल पड़ा अपनी पुरखों की हवेली से।

• • • •

५

"ओ द्वार-रक्षक भाई........"

"कौन होगा ?"

"जरा इधर आओ तो—"

द्वार रक्षक जब नगर सेठ के समीप में आया तो वह देखकर दंग रह गया कि नगर के ये जाने-माने सेठ इस समय अर्द्धरात्रि में परिवार सहित नगर के निकास द्वार पर क्यों उपस्थित हैं ? वह नम्रतापूर्वक बोला—

"आज्ञा कीजिये सेठ साहब, इस समय आपका सपरिवार यहां कैसे पधारना हुआ है ?"

"तुम्हें एक कष्ट देना चाहता हूं। इस समय जरा द्वार खोल दो ताकि हम सब बाहर निकल जावें"—सेठ ने जरा जल्दी सी दिखाते हुए कहा।

"मैं द्वार तो एक बार नहीं, दस बार खोल दूंगा श्रीमान्, परन्तु आपसे बिना जाने नहीं खोलूंगा कि आपका कहां और क्यों पधारना हो रहा है ?"—केवट की सी हठ पकड़ते हुए द्वार रक्षक ने उत्तर दिया।

जयमल विचार में पड़ गये कि इसको क्या बतावें ? वे सिद्धान्त और आत्म-सम्मान के प्रश्न पर नगर छोड़ रहे हैं और इसे यह गहरी बात कैसे समझावें ? उन्होंने मन ही मन कुछ कठिनाई महसूस की, किन्तु असत्य भाषण भी वे नहीं करना चाहते थे अतः बोले—"भाई, कुछ ऐसी ही विपदा आ गई है कि हम यह नगर छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना चाहते है। इस कारण हमने अपने प्रस्थान का यही समय चुना है।"

द्वार रक्षक कुछ सशंकित होकर कहने लगा—"ऐसी कौनसी कठिन विपदा आ गई है, सेठ साहब, जो आप अपने पुरखों के नगर को यों छोड़ कर जा रहे हैं ?"

"क्या आपका यह नगर-त्याग महाराजा की जानकारी में है ?"

"यह कुछ ऐसा ही मामला है कि उन्हें इसकी जानकारी नहीं दी गई है।"

"तब तो मैं यह द्वार हरगिज नहीं खोलूंगा, सेठ साहब, बिना महाराजा की जानकारी के नगर का एक अमोल रत्न यों नगर छोड़ कर चला जाय—ऐसी गलती तो मैं नहीं करूंगा—चाहे आप कुछ भी कहें।"

द्वार-रक्षक की यह हठ देखकर सेठ फिर विचार में पड़ गये कि अब क्या किया जाय? घर से भी निकल गये और बीच में अटक गये। वे स्नेहपूर्वक बोले—"भाई, तुम्हें कोई उपालंभ नहीं आयगा। तुम एक बार द्वार खोल कर फिर बन्द कर देना। हम जल्दी से बाहर निकल जायेंगे।"

"मैं आपके लिये एक नहीं, हजार उपालंभ सहन कर सकता हूँ श्रीमान्। मेरे मन में उपालंभ का विचार नहीं है। मैं तो आपके अभाव में नगर की हानि के बारे में सोच रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि महाराजा को सूचना दिये बिना अगर मैं ऐसा करता हूँ तो यह मेरा अपराध भी होगा। आप कोई विचार मत कीजिये, सभी भीतर बिराजिये। मैं यह गया और यह आया। महाराजा को मैं सूचना तो दूंगा ही।"

कोई चारा न देखकर जयमल परिवार सहित द्वार कक्ष के भीतर बैठ गये। तभी द्वार रक्षक तेज चाल से राजमहल की ओर रवाना हो गया।

हकीकत में द्वार रक्षक ने जैसा कहा था, वह बहुत जल्दी वापिस लौट आया। आकर उसने सेठ से निवेदन किया—

"सेठ साहब, मैंने बहुत डरते-डरते ड्योढ़ीदार से महाराजा साहब को जगाने के लिये कहा। उसकी भी हिम्मत नहीं हो पा रही थी कि वह आधी रात को उन्हें जगाने की चेष्टा करे। आखिर हम दोनों साथ-साथ गये और यह जोखिम भरा काम कर ही गुजरे। किन्तु महाराजा की महानता देखिये श्रीमान् कि जब मैंने आपके बारे में बताया तो वे व्यग्र हो उठे और उन्होंने मुझे तत्काल आपको मिलने हेतु भेजने के लिये आदेश दे दिया। यह भी कहा कि जब तक नगर सेठ मिलने के लिये नहीं आवेंगे, मैं जाग रहा हूं। अब आप कृपया शीघ्र महाराजा साहब से मिलने के लिये पधारिये।"

जयमल ने क्या सोचा था और प्रकृति यह क्या कार्यक्रम रच रही है? किन्तु उनका विश्वास था कि जो कुछ होता है, अच्छे के लिये ही होता है, अतः वे वापिस लौट पड़े। जिस पर उनका कोई वश नहीं था, उसे वे टाल भी कैसे सकते थे? परिवार को हवेली पर छोड़ कर वे उसी समय महाराजा प्रतापसिंह से मिलने राजमहल चले गये।

महाराजा प्रतापसिंह एक सफल शासक होने के साथ-साथ राज्य के गम्भीर उत्तरदायित्वों को भी भली-भाँति समझते थे। वे समभावी और समतावान थे। वे सदा जागरूक रहते थे कि उनके राज्य में कहीं भी अन्याय पनपने न पावे। जनता की सुख-समृद्धि का खयाल उन्हें अपनी सुख-समृद्धि के खयाल से भी बढ़ कर था। वे कई नागरिकों

को व्यक्तिश: जानते थे और उनसे राज्य के अभाव-अभियोगों के बारे में पूछते रहते थे। उनमें नगर सेठ जयमल का तो प्रमुख स्थान था। सेठ की चरित्रशीलता, नैतिकता और सत्यवादिता से वे बहुत ही प्रभावित भी थे। वे सोच नहीं पा रहे थे कि नगर सेठ बिना उन्हें कुछ भी बताये यह नगर छोड़ देने के लिये क्यों तैयार हो गये? क्या उनसे कोई ऐसी भूल हो गई है या कोई अन्यायपूर्ण घटना घट गयी है जिससे विक्षुब्ध होकर सेठ ने ऐसा निर्णय ले लिया? उन्हें ऐसा कुछ भी याद नहीं आ रहा, फिर सेठ क्यों इस तरह चुपचाप चले जा रहे थे? उन्हें मुझे बताना तो चाहिये था, क्या उन्हें मेरे न्याय और मेरी नीति में विश्वास नहीं रहा?

राजा प्रताप सोच-सोच कर हैरान हो रहे थे कि तभी नगर सेठ ने भीतर प्रवेश किया। उन्होंने सविनय महाराजा का अभिवादन किया और खड़े-खड़े ही निवेदन किया—

"मेरा अपराध क्षमा करें महाराज कि आपको मेरे कारण अर्द्धरात्रि में कष्ट हुआ।"

"जयमल शायद आप स्वयं नहीं जानते होंगे कि मेरे मन में आपके लिये कितना सम्मान है? अर्द्धरात्रि में आपको यहाँ न बुलाकर मैं आपसे मिलने के लिये नगर द्वार पर भी पहुँच सकता था किन्तु चर्चा करने की दृष्टि से ही मैंने आपको यहाँ बुलाया है। भाई, मुझसे क्या भूल हो गई जो आप मुझसे रूठ कर बिना बताये ही नगर को छोड़कर अन्यत्र जा बसने के लिये तैयार हो गये?"

नगर सेठ नरेश के व्यवहार को देखकर गद्‌गद् हो गये। उनके मन में जो आशंका थी, उसका लवलेश भी नरेश के व्यवहार में नहीं था। उन्हें विश्वास हो गया कि नरेश अपने न्याय के कर्त्तव्य से कहीं भी डिगने वाले नहीं हैं। अतः सेठ ने अपनी बात निर्भयता से किन्तु नम्रता से कहने का निश्चय किया।

"महाराज, कल कुछ ऐसी घटना घट गई, जिसको लेकर आकस्मिक रूप से मुझे ऐसा निर्णय लेना पड़ गया था।"

"अरे भाई, कुछ भी निर्णय लेते, उसके पहले मुझसे राय तो कर सकते थे।"

"कुछ आशंकावश ही मैं वैसा नहीं कर पाया जिसका मुझे अब अतीव खेद है।"

"खैर हुआ सो हुआ। ऐसी क्या घटना हो गई, बताइये तो—"

"महाराज, मुझे क्षमा करें—आप कुपित तो नहीं होंगे क्योंकि घटना का सम्बन्ध राजकुमार मानसिंह से है।"

"कितने भोले हो नगर सेठ? न्याय करते समय क्या मैं किसी का चेहरा देखता हूँ? मैं तो अपराध सुनता हूँ और निर्णय देता हूँ—फिर वह भले कोई भी हो।"

"जय हो महाराज की, कल घटना इस तरह घटी थी कि...." कहते हुए नगर सेठ ने संक्षेप में कमल-ताल वाली पूरी घटना सुनादी और निवेदन किया—"महाराजा साहव, यह मेरी पुत्री और आपके राजकुमार से सम्बन्धित नैतिक प्रश्न तो है ही किन्तु उससे भी वढ़कर नगर का नैतिक प्रश्न भी है कि यदि स्वयं राजकुमार, जो भावी शासक भी हैं ही नैतिकता तोड़ने की ऐसी चेष्टा करेंगे तो क्या अन्य युवक उनका अनुकरण नहीं करेंगे और धीरे-धीरे ही सही, क्या नगर का शुद्धाचरणमय सौम्य वातावरण दूषित नहीं हो जायगा ?........

"इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मैंने प्रमुख नागरिकों की बैठक भी वुलाई थी कि सभी मिल कर इस सम्बन्ध में आपसे निवेदन करें। किन्तु किसी ने भी यह साहस नहीं दिखाया कि नगर के हित में इस समस्या का आपश्री से संयुक्त उल्लेख करें। वे राजकुमार मानसिंह से भयभीत हो रहे थे...........

"तब मैंने भी विचार किया कि अकेले आकर मेरा निवेदन शोभनीय नहीं होगा तथा उससे नगरवासियों की अनैक्यता या साहसहीनता भी वाहर फूटेगी। वैसी अवस्था में मुझ जैसे आत्म सम्मानी तथा सिद्धान्तप्रिय व्यक्ति को नगरत्याग के सिवाय दूसरा मार्ग नहीं सूझा। इसकी आपको जानकारी नहीं दे पाने के लिये मैं वहुत ही क्षमाप्रार्थी हूँ।"

महाराजा प्रतापसिंह ने सारी वात बहुत ध्यान से सुनी, सुनकर वे कुछ सोचते रहे, फिर धीरे-धीरे वोले—"नगर सेठ, आप मेरे राज्य के एक उत्तरदायी सहयोगी हैं और इस दृष्टि से आपका मुझमें पूरा विश्वास भी होना चाहिये। आप जिस प्रकार से मेरे वारे में आशंकित हुए हैं, उससे मेरे हृदय को आघात लगा है, किन्तु आपने क्षमा चाह ली है तो मुझे अब कुछ नहीं कहना है। मुझे जांच-परख कर आशंका वताते, तव तो कुछ वात भी थी।........

"तो जयमल सेठ, सुनिये। मैंने अपने शासन में सदैव धर्म और नीति का ध्यान रखा है तथा मेरी मान्यता है कि जिस राज्य के कार्य-कलापों में से धर्म और नीति निकल जाती है, समझिये कि उसका विनाश सन्निकट आ जाता है। अब तक मेरे राज्य कार्य में कहीं अधर्म या अनीति का पोषण हुआ हो तो वताइये ?"

"नहीं महाराजा नहीं, एक भी प्रसंग ऐसा नहीं आया जव हमें आपके किसी भी कार्य में अधर्म या अनीति की आशंका भी हुई हो !" जयमल ने यह बात निःसंकोच होकर कही, क्योंकि यह सर्वथा सत्य वात थी।

"नगर सेठ, मैंने अपनी मान्यता के अनुसार ही दोनों राजपुत्रों को पूरा नैतिक शिक्षण भी दिया है, फिर मानसिंह ने ऐसी हरकत क्यों की—इसका मुझे पूरा पता लगाना होगा। निश्चय ही यह गंभीर स्थिति है कि भविष्य में होने वाले शासक के जीवन में आज अनीति का ऐसा स्थान हो। मेरे लिये यह असह्य है और सर्वथा दंडनीय भी है। न्याय करते

समय, आप निश्चिन्त समझलें कि मुझे मात्र न्याय दिखाई देता है। मैं व्यक्ति को भूल जाता हूं। इस मामले में भी आप विश्वास रखें कि विशुद्ध न्याय ही किया जायगा—ऐसा न्याय जो दूध का दूध और पानी का पानी हो। कल मैं इस मामले में सभी का साक्ष्य लेकर विचारपूर्वक अपना निर्णय दूंगा और इसकी कार्यवाही खुली सभा में होगी।........

"अब आप हवेली पधार कर आराम कीजिये और मन में किसी भी आशंका को स्थान न दीजिये......."

फिर नरेश ने नगर सेठ को मानपूर्वक विदा किया और पलंग पर लेट गये।

लेकिन अपने ही राजकुमार की वैसी अनैतिक हरकत की बात सुनकर महाराजा की आंखों में नींद कहां रह गई थी ?

वे फटी आंखों से छत को देखते रहे और सोचते रहे......."मैंने दोनों पुत्रों को श्रेष्ठ वातावरण दिया, श्रेष्ठ संस्कार दिये और श्रेष्ठ शिक्षा दी—क्या आज के दिन के लिये कि उनकी ऐसी हरकत की लांछना मुझे भुगतनी होगी ? मानसिंह ने जब ऐसा किया तब अभयसिंह कहां था ? मैं मानसिंह को युवराज का पद देना चाहता हूं और सुनहला सपना देखता हूं कि वह स्वर्ण नगरी की शासन परम्परा को प्रभावशाली बनाये रखेगा, वही मानसिंह अनीति के मार्ग पर मुड़ रहा है। क्या होगा इस राज्य का और क्या होगा मेरे ऐसे सपने का ?........

"....... विवाह से पूर्व किसी भी कुंवारी कन्या से छेड़छाड़ निश्चित रूप से ऐसा अपराध है जो छोटा होते हुए भी जिसके परिणाम घातक हो सकते हैं। यह अनीति का आरम्भ भले छोटा दिखाई दे, अगर 'यथा राजा तथा प्रजा' का क्रम चले तो क्या मानसिंह के शासन काल में बहू-बेटियों की इज्जत कहीं भी बची रह सकती है ? हकीकत में मानसिंह का अपराध बड़ा है........

"........मानसिंह ने नगर सेठ की सुपुत्री की कलशी पर बाण मारा—इसे क्या विनोद कहेंगे ? क्या इन दोनों का कोई पूर्व परिचय था ? परिचय के तथ्य का तो पता लगाया जायगा लेकिन कुछ भी हो, इस तरह सखियों के बीच एक सुन्दर लड़की को कलशी के छेद करके भिगोया जाय—यह विनोद की सीमा से आगे की बात है। सेठ की लड़की अवश्य ही अपमान से आहत हुई होगी और लड़की ही क्यों, लड़की के माता-पिता ने भी कटु अपमान का अनुभव किया है—यह उनके नगर त्याग के निर्णय से स्पष्ट है........

"........लेकिन मानसिंह ने दूसरा बाण छोड़कर कलशी के छेद को बन्द क्यों किया ? यह तथ्य भी विचारणीय है। क्या थोड़ी ही देर बाद उसे सन्मति आ गई अथवा लड़की को भीगते हुए देखकर उसका दिल बदल गया ? क्या उसने लड़की की सहानुभूति पैदा करने के लिये तो ऐसा नहीं किया ? इसका अनुमान लड़की के साक्ष्य से ही लग

सकेगा। लेकिन सेठ ने तो कहा कि दोनों पक्ष कमल-ताल के आमने-सामने के घाटों पर थे, फिर परस्पर वार्तालाप का तो प्रश्न ही कहाँ रहता है ?........

"........तब हो सकता है कि अभयसिंह भी मानसिंह के साथ हो और अभयसिंह ने मानसिंह को दूसरा बाण छोड़ने के लिये प्रेरित किया हो ! यदि अभयसिंह भी साथ था तो उसने अब तक भी मुझे इस घटना की सूचना क्यों नहीं दी ? अपराध की सूचना को दबा कर रखना भी तो अपराध ही है........तो क्या मेरे दोनों पुत्र अपराधी सिद्ध हो जायेंगे ?........"

विचार-मग्न महाराजा की आँख कब लग गई, उन्हें पता ही नहीं चला।

६

नगर में चारों ओर हलचल मच गई कि महाराजा प्रतापसिंह स्वयं अपने राजकुमारों के विरुद्ध गुनी सभा में अभियोग की सुनवाई करेंगे। प्रमुख नागरिक प्रतिनिधि भी आश्चर्य में डूबे हुए थे कि यह सब कैसे हो गया? वे तो अभियोग को महाराजा के समक्ष ले जाने का साहस ही नहीं जुटा पाये, फिर यह किसने किया? क्या नगर सेठ अकेले ही महाराजा के पास गये और महाराजा ने उनकी बात को इतना सम्मान दिया? उनके मन में आया कि इससे तो अच्छा था कि वे सेठ की बात मान लेते तो सेठ भी उनका आभार मानते तथा महाराजा भी उन्हें श्रेय देते। उन्हें महसूस होने लगा कि साहसहीनता से कभी कुछ नहीं मिलता।

नागरिकों में महाराजा के प्रति भी सराहना के स्वर उभर रहे थे तो नगर सेठ के प्रति भी कि जिनके प्रयत्नों से नगरीय वातावरण के यथावत् विशुद्ध बने रहने की आशा थी। कोई-कोई आशंका भी प्रकट कर देते थे कि महाराजा अपने ही पुत्रों को क्या समुचित दंड देने की निर्ममता कर सकेंगे? न्याय करने में क्या उनका पितृ हृदय शून्य हो जायगा? किन्तु सभा भवन में यथा समय पहुँच कर दर्शक का स्थान पा लेने की उत्सुकता सभी को लगी हुई थी।

निश्चित समय पर सभा भवन खचाखच भर गया। दर्शकों तथा सभासदों के सिवाय एक ओर अभियोगी पक्ष तो दूसरी ओर अभियुक्त पक्ष के सदस्य भी बैठे हुए थे। सभी प्रतीक्षारत थे कि न्याय-नीति के धारक नरेश प्रतापसिंह पधारें। तभी उनके आगमन की सूचना हुई और वे अपने सिंहासन पर आसीन हो गये।

राजा प्रताप ने सबसे पहले नगर सेठ जयमल का आह्वान किया। उन्होंने उनसे कल की आमने-सामने वाली घटना सुनाने को कहा। जब सेठ ने संक्षेप में वह घटना सुना दी और उसके संदर्भ में नगर के नैतिक वातावरण पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी प्रकाश डाला। तब राजा ने प्रश्न किया—

"नगर सेठ, आपने जो घटना का विवरण दिया है, वह आपने अपनी आँखों से देखा नहीं है—मात्र सुना हुआ है। क्या यह सही है?"

जयमल ने इसे स्वीकार किया और कहा—"हाँ महाराजा, मैं प्रत्यक्षदर्शी नहीं था।"

"यह घटना आपकी सुपुत्री के साथ घटित हुई थी, वह कहाँ है ?"

"राजन्, वह सभागार में उपस्थित है।"

"अच्छा, उसे लाइये ।"

तब श्रेष्ठिपुत्री को महाराजा के सामने ले जाया गया। महाराजा ने स्नेह से पूछा—

"बेटी, जैसे तुम नगर सेठ की सुपुत्री हो, वैसे ही मेरी भी सुपुत्री हो। जो मैं पूछूं, सच-सच बताना, निःसंकोच होकर और निडर होकर।"

"हूँ" कहकर श्रेष्ठिपुत्री खड़ी रही।

"तुम कल जब कमल-ताल पर गई तब क्या तुम अकेली ही थीं ?"

"महाराज, मैं अकेली नहीं थी, मेरे साथ मेरी चार सखियाँ भी थीं।"

"कौन-कौन थीं ?"

"मेरे पड़ोस में रहने वाली कमला, दिव्या, चन्दना और नमिता।"

"तुमने राजकुमार मानसिंह को वहाँ किस समय देखा ?"

"हमें तो राजकुमार का पता ही नहीं था। नगर की तरफ वाले घाट पर हम सबने स्नान किया और फिर अपनी-अपनी कलशी में जल भरके रवाना होने लगीं तभी सनसनाता हुआ एक बाण मेरी कलशी के लगा, जिससे छोटा सा छेद होकर पानी रिसने लगा। उस पानी से मेरे अंग-प्रत्यंग भीगने लगे। हम सब पहले तो सन्न सी रह गईं। फिर जब चन्दना ने बताया कि सामने राजमहल वाले घाट से यह तीर आया है जहाँ धनुष चढ़ाये हुए राजकुमार मानसिंह दिखाई दे रहे थे तो मैंने अपमान का तीव्र अनुभव किया और मैं ठिठक कर खड़ी रह गई।"

"क्या मानसिंह के साथ तुम्हारा पूर्व परिचय था ?"

"मैंने मात्र नाम ही सुना था, कल भी उन्हें देखा नहीं, क्योंकि मैं रोष से कांप रही थी। चन्दना ने ही बताया कि पहला बाण छोड़ने के बाद छोटे राजकुमार अभयसिंह भी वहाँ दिखाई दिये—शायद उनके बीच कुछ बातचीत हुई और तभी मेरी ही कलशी पर राजकुमार मानसिंह का दूसरा बाण लगा जिससे पहले हुआ छेद बंद हो गया और तब पानी रिसना भी बंद हो गया। इससे मुझे कुछ राहत मिली। तब हम सभी वहाँ से रवाना होकर हवेली पहुंच गईं और वहाँ भी चन्दना ने ही सारी घटना पिताजी को बताई। वहीं पर कलशी देखने से पता चला कि दूसरे बाण से छेद पर लाख लगाई गई थी।"

"पहला बाण कलशी पर लगने से तुम्हारा मानसिंह के प्रति क्या विचार पैदा हुआ ?"

"मैं अपमान और भय से कांपने लगी कि यह अनीति का लक्ष्य वेध किसने किया

है ? मुझे पहले कभी भी ऐसा कटु अनुभव नहीं हुआ था। हम हमेशा बिना किसी भय या संकोच के कमल ताल पर या नगर में अन्यत्र आती जाती रही हैं ? यह इस तरह की पहली ही घटना सामने आई, अतः आँखों से रोष भी फूट रहा था।"

"दूसरे बाण का तुमने क्या अर्थ लगाया ?"

"मैंने देखा तो कभी नहीं किन्तु सुना है कि छोटे राजकुमार बहुत नीतिवान हैं अतः शायद उन्हीं के समझाने-बुझाने से बड़े राजकुमार ने दूसरा लक्ष्य-वेध किया होगा। भीगने का मतलब था लाज का उघड़ना और भीगना बंद हो जाने से मैंने राहत महसूस की।"

"तब तो तुमने राजमहल वाले घाट की तरफ देखा होगा ?"

"नहीं राजन्, उस घबराई हुई मनोदशा में हम तो जल्दी-जल्दी हवेली की तरफ चल पड़ीं।"

महाराजा कुछ देर सोचते रहे और फिर बोले—"चन्दना उपस्थित है ?"

चन्दना धीरे-धीरे सामने आकर खड़ी हो गई। महाराजा ने पूछना शुरू किया—

"तुम्हारा नाम ?"

"चन्दना, महाराज !"

"तुमने कल कमल-ताल पर क्या देखा ?"

"पहले तो हम नहाने और आपस में ही बातें करने में लगी हुई थीं किन्तु सेठजी की बाईजी जब घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं तो इनकी कलशी पर एक बाण आकर लगा। उस समय हम सखियों की आँखें बाण के आने की दिशा में मुड़ीं तो मैंने देखा कि सामने वाले घाट पर इसी ओर मुंह किये राजकुमार मानसिंह खड़े थे। उनके हाथ में धनुष था। मैंने पहले राजकीय सवारी में दोनों राजकुमारों को देखा था अतः उन्हें पहिचान गई। उसी समय जैसे बैठे से खड़े हुए हों, छोटे राजकुमार अभयसिंह दिखाई दिये। फिर शायद दोनों में बातचीत हुई तब बड़े राजकुमार को दूसरा बाण छोड़ते हुए मैंने देखा। तब हम डरीं किन्तु वह बाईजी की कलशी पर ही लगा और उससे पहले वाला छेद बंद हो गया।"

"पहला बाण छोड़ने के बाद जब तुम ने बड़े राजकुमार को देखा तो वह कैसा दिखाई दे रहा था ?"

"मस्ती में वे कुछ इस चेष्टा में दिखाई दे रहे थे जैसे वे बाईजी के प्रति आकृष्ट हो रहे हों।"

"तुम्हें पता है कि सेठ जी की सुपुत्री पहले भी कभी बड़े राजकुमार से मिली हो ?"

"मुझे पता नहीं है महाराज, किन्तु मैं इन बाईजी के पल-पल का हिसाब जानती

हूँ और निश्चय से कह सकती हूँ कि बाईजी का कभी भी बड़े राजकुमार से मिलना नहीं हुआ। देखने का भी काम नहीं पड़ा होगा।"

"छोटे राजकुमार ने भी कुछ गलत किया ?"

"नहीं राजन्, कुछ भी नहीं ?"

"अच्छा"—कह कर महाराज ने चन्दना को चले जाने को कहा तो न्यायाधिकारी को अपने पास बुलाया और कहा—"आरोप-पत्र तैयार कीजिये ! लिखिये.........."

महाराजा बोलते गये और न्यायाधिकारी लिखते गये।

पहला आरोप पत्र मानसिंह के लिये—(१) क्या तुमने बुरी नीयत से श्रेष्ठि पुत्री की जल कलशी पर बाण चलाकर छेद किया और इस तरह नैतिकता तोड़ी व अपराध किया ? (२) क्या तुमने एक कुंवारी कन्या को इस तरह अपमानित किया ? (३) इस नगर के भावी शासक होने के नाते तुम्हारी यह अनैतिकता क्या गंभीर अपराध नहीं है ?

दूसरा आरोप पत्र अभयसिंह के लिये—(१) अपराध के समय अभियुक्त के साथ होने पर भी अपराध की सूचना योग्य अधिकारी को न देकर क्या तुमने गंभीर अपराध किया है ?

आरोप पत्र तैयार हो जाने पर महाराजा के सामने राजकुमार मानसिंह को बुलाया गया और उसे उसका आरोप पत्र पढ़कर सुनाया गया। तब महाराजा ने पूछा—

"तुम अपने आरोपों के बारे में क्या स्पष्टीकरण देना चाहते हो ?"

"पहला आरोप मुझे स्वीकार है किन्तु मेरी नीयत बुरी नहीं थी। रूपराशि देखकर मात्र कौतूहल उपजा था। फिर भी नैतिकता तोड़ने का अपराध मैं मानता हूँ। दूसरा आरोप मेरी भावना के अनुसार मुझ पर नहीं लगाया जाना चाहिये, क्योंकि मैं श्रेष्ठिपुत्री को अपमानित नहीं करना चाहता था। तीसरे आरोप के विषय में मैं कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ।" राजकुमार मानसिंह यह स्पष्टीकरण देते समय बराबर आँखें नीचे किये खड़ा रहा।

"श्रेष्ठ वातावरण संस्कार और शिक्षा के उपरान्त भी तुम्हारे मन में ऐसी खोट क्यों पैदा हुई और तुमने ऐसी हल्की हरकत क्यों की ?"

"यह मेरा ही दोष है महाराज ! मेरी वृत्ति में चंचलता कुसंगति से आई है। एक चालाक मित्र के साथ ने मुझे बिगाड़ा, लेकिन भाई अभय ने मुझे तुरन्त सावधान कर दिया और जल कलशी का लाख से छेद बन्द कर देने वाला मेरा दूसरा लक्ष्य वेध उसी का सुपरिणाम था।"

महाराजा ने अपना रुख बदला और पूछा—"अच्छा अभय, तुम्हें अपने आरोप के विषय में क्या कहना है ?"

अभयसिंह ने कर बद्ध होकर विनयपूर्वक उत्तर दिया—"आरोप को मैं अस्वीकार

ही कर सकता, राजन्, किन्तु अपराधी को दण्ड दिलाने की अपेक्षा उसको सुधारने की री भावना प्रबल थी, इसी कारण सूचना नहीं दी।"

"इस तरह सभी अगर नियमों को ताक में रखदें तो क्या व्यवस्था चल सकेगी ?"

"इस दृष्टि से मैं अपराधी हूँ। राज्य में नियमों का पालन अनिवार्य होता है"—राजकुमार अभयसिंह ने स्वीकृति में सिर नीचा कर लिया।

सारे साक्ष्य के बाद महाराजा प्रतापसिंह तथ्यों का विश्लेषण करना चाहते थे और सच बात तो यह थी कि न्यायकर्ता प्रतापसिंह इस मामले में पिता प्रतापसिंह से जटिल संघर्ष करके न्याय की मशाल को ऊपर उठाना चाहते थे अतः उन्हें कुछ अवकाश चाहिये था।

उन्होंने घोषणा की—"सभा कुछ ही समय बाद फिर से बैठेगी जिसमें अभियुक्त मानसिंह तथा अभयसिंह के आरोप-पत्रों पर निर्णय सुनाया जायगा।" इतना कहकर वे भीतर कक्ष में चले गये।

× × ×

ज्योंही महाराजा प्रतापसिंह एकान्त में पहुंचे कि वहाँ मन ही मन न्यायकर्ता प्रतापसिंह और पिता प्रतापसिंह का द्वन्द्व युद्ध शुरू हो गया।

न्याय कर्ता—नियम के समक्ष सभी बराबर होते हैं, क्या राजकुमार और क्या मेहतर ? न्याय करने में कोई भेद नहीं किया जा सकता।

पिता—राजकुमारों के साथ इतनी कठोरता नहीं की जानी चाहिये। वे आखिर राजा के पुत्र जो है ! पिता इतना निर्मम नहीं हो सकता।

न्यायकर्ता—पिता ममता में अन्याय कर सकता है, न्यायकर्ता को केवल न्याय चाहिये। न्याय अंधा होता है, उसे नहीं देखना चाहिये कि अभियुक्त कौन है ?

पिता—बच्चों ने यौवन की देहरी पर पांव रखा ही है और ऐसी मनोदशा में रूप राशि देखकर अगर थोड़ी देर के लिये बहक गया तो कौनसा बड़ा अपराध हो गया ? फिर वह सम्हल भी तो तुरन्त गया है।

न्यायकर्ता—अपराध कर लेना और फिर सम्हल जाना अलग-अलग बातें हैं। दंड अपराध करने का दिया जाता है, सम्हल जाने का उससे क्या सम्बन्ध ! कलशी पर बाण छोड़कर कुंवारी कन्या को लज्जित करने का अपराध तुम्हें छोटा दिखाई दे रहा है ! तुम्हारे बेटे की तरह अगर नागरिकों के सारे बेटे दूसरे घरों की कुंवारी बेटियों को इस तरह छेड़ने लगें तो नगर की क्या दशा हो जायगी ?

पिता—क्या मानसिंह के इस पहले अपराध पर भी दया नहीं दिखाई जा सकती ? सच बोलकर अपराध स्वीकार कर लेने का भी क्या उसे कोई लाभ नहीं दिया जा सकता ?

न्यायकर्ता—तुम पुत्र मोह में न्याय को कलंकित मत कर वैठना। मानसिंह के पहले अपराध पर भी दया नहीं दिखाई जा सकती, क्योंकि वह युवराज है और भविष्य में नगर का शासक बनेगा। यदि ऐसा व्यक्ति भी अपना दायित्व नहीं निभाता तो उसका पहला अपराध भी सामान्य से अधिक गम्भीरता से लिया जाना चाहिये, नहीं तो जनता पर उसका कितना बुरा असर पड़ेगा ?

पिता—अभयसिंह तो श्रेष्ठ चरित्र वाला है। क्या उसे सूचना न देने के अपराध से बचाया नहीं जा सकता ?

न्यायकर्ता—अभयसिंह द्वारा अपराध की सूचना न देना तो मानसिंह के अपराध से भी बड़ा माना जाना चाहिये। अपराधी को बचाना या अपराध को छिपाना राज्य की व्यवस्था के लिये अधिक घातक होता है।

पिता—मेरे दो ही पुत्र हैं और दोनों को दण्ड दे दूंगा तो फिर राज्य के उत्तराधिकार का क्या होगा ? क्या सामान्य दंड से काम नहीं चल सकेगा ?

न्यायकर्ता—राज्य का भविष्य जो भी हो, न्याय वर्तमान को देखता है और अभियुक्त को नियमानुसार दंडित करना चाहता है—दंड न कम, न अधिक। अपने अपराधों के लिये दोनों ही समान दंड के भागी हैं और यह दंड सामान्य नहीं हो सकता। गंभीर अपराधों के लिये गंभीर दंड देना होगा।

पिता—पिता के स्नेह भरे हृदय का क्या कुछ भी स्थान नहीं रहेगा ?

न्यायकर्ता—कुछ भी नहीं। न्याय करते समय पिता पिता नहीं रहता तो उसमें स्नेह भरे हृदय का अस्तित्व ही कहाँ रहता है ?

पिता—बचालो मेरे पुत्रों को—मेरा सहारा ही टूट जायगा।

न्यायकर्ता—न्यायकर्ता का कोई पुत्र नहीं होता। उसका पुत्र और सहारा सिर्फ न्याय होता है।

पिता—पिता जब अपने ही पुत्रों को कठोर दंड देगा तो क्या संसार उसे धिक्कारेगा नहीं ?

न्यायकर्ता—संसार धिक्कारे या सराहे—इसकी परवाह न्यायकर्ता को नहीं होती। उसकी आत्मा की एक मात्र सावधानी होनी चाहिये कि किसी भी कीमत पर उसके हाथों अन्याय न हो और न्याय की अवहेलना भी नहीं।

पिता—मैं अपनी हार मानता हूँ और तुम्हारे सामने नत मस्तक होता हूँ।

न्यायकर्ता—एक सच्चे न्यायकर्ता का यही कर्त्तव्य होता है। न्याय की ऐसी परम्परा अन्याय, निरंकुशता या क्रूरता को पैदा ही नहीं होने देती है। पतित और दलित जन का न्याय ही एक मात्र आश्रय होता है। यह हार और जीत का सवाल नहीं, समग्र जनता के प्रति अपने पवित्र कर्तव्य का प्रश्न है। न्याय को अमर रखो।

× × ×

पुनः सभा जुटने पर जब महाराजा प्रतापसिंह अपने सिंहासन पर बैठे तो उनके मुख पर तनाव या चिन्ता की एक भी रेखा नहीं थी। पूरी सभा टकटकी लगाकर उन्हीं की ओर देख रही थी कि ऐसे नाजुक मामले में महाराजा क्या फैसला करते हैं ? क्या पिता का ममत्व जीतता है या एक सफल न्यायकर्ता का न्याय बिन्दु ? मनुष्य का मन बड़ा कमजोर होता है और कैसा भी न्यायकर्ता हो, एक पिता द्वारा अपने पुत्रों की ममता से ऊपर उठ जाना आसान नहीं होता। नीति ने कहा है कि मनुष्य सभी जगह अपनी विजय चाहता है, किन्तु पुत्र के हाथों पराजय को उससे भी अधिक चाहता है। पुत्र की रक्षा और उन्नति पिता के सर्वोच्चकरणीय कार्य माने गये हैं। आज एक पिता के रूप में महाराजा की कठोरतम परीक्षा है—यह सभी सोच रहे थे।

सेठ जयमल ने महाराजा के मुख पर खेल रही आभा से ही अनुमान लगा लिया कि न्याय और नीति की विजय सुनिश्चित है।

मानसिंह और अभयसिंह पिता को पहले पिता मानकर चल रहे थे। उन्हें अत्यधिक कठोर दंड की आशंका कम थी।

महाराजा प्रतापसिंह ने एक विजयी न्यायकर्ता की दृष्टि से सभा को निहारा और धीरे-धीरे वे अपने न्यायाधिकारी को निर्णय लिखाने लगे।

"मैंने न्यायासन पर बैठकर दोनों पक्षों को सुना और व्यक्तिशः प्रश्नों के उत्तर जाने। सारे मामले पर गहराई से विचार किया।............

"............ मानसिंह की नजर में अपना अपराध छोटा लगता हो किन्तु मैं उसे दो कारणों से बहुत बड़ा अपराध मानता हूँ। राजपुरुष का चरित्र इतना निर्मल होना चाहिए कि वह प्रजा के लिये अनुकरणीय हो। 'यथा राजा, तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार प्रजा राजा को देखती है और अपना आचार-विचार बनाती है। मानसिंह भी कल राजा होने वाला था और यदि आज वह ऐसी अनैतिकता दिखाता है तो यह उसका गंभीरतम अपराध माना जायगा।............

"............इसी प्रकार अभयसिंह के अपराध को भी साधारण नहीं मान सकते। सूचना दबाने से अभियुक्त का हौसला बढ़ता है और वह अधिक अपराध करने की ओर आगे बढ़ सकता है। अतः यह अपराध भी उतना ही गंभीर माना जायगा............"

जब निर्णय का इतना अंश लिखा दिया गया तो सभा में सभी को स्पष्ट हो गया कि एक नीतिमय न्यायकर्ता ने पिता के ममता भरे हृदय को जीत लिया है। वे केवल अपराध को देख रहे हैं, अपराधी की आकृति को कतई नहीं। न्यायकर्ता को तो दया करने का अधिकार नहीं होता, किन्तु सभा में बैठे हुए लोग तो दया से द्रवित हो उठे कि राजमहल के सुखों में पले दोनों राजकुमारों के सिर पर कठोर दंड की तलवार गिरने ही वाली है। कई लोगों की आँखें तो दोनों राजकुमारों को देखते हुए बरसने ही लग गईं।

लेकिन दोनों राजकुमार निश्चल मुद्रा के साथ खड़े थे—जैसे किसी भी दंड को झेलने के लिये उद्यत। क्षात्र तेज से उनके चेहरे दमक रहे थे। अभयसिंह की कान्ति तो देखते ही बनती थी।

महाराज ने मुख्य अंश लिखाया—

"इस लिये दोनों राजकुमारों को देश-निकाले का दंड दिया जाता है कि वे आगामी अहर्निश में इस राज्य की सीमा से बाहर निकल जांय। मृत्यु दंड न देकर न्याय ने उनके प्रति दया दिखलाई है—इसे याद रखा जाय।"

तब सिंहासन से उठकर तुरन्त महाराजा भीतर जाकर पलंग पर निढाल से गिर गये।
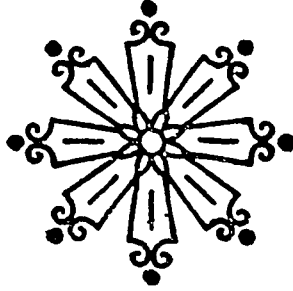
७

एक दूक फैसले ने नानाविध सुखों के झूलों में झूलने वाले दो राजपुत्रों को यकायक अनाथ और आश्रयहीन बना दिया। दंडादेश सुनकर दोनों भाई स्तंभित रह गये। अभयसिंह को भी ऐसे कठोर दण्ड की आशा नहीं थी। यह सही है कि न्याय की व्याख्या का कोई पार नहीं और उसकी सीमाएँ भी देश-काल के अनुसार बहुत व्यापक होती हैं। किन परिस्थितियों में किस अपराध की गम्भीरता कितनी होती है—इसका निर्णय न्यायकर्ता को ही करना होता है। और यह भी सही है कि न्यायकर्ता देवता के समान होता है, जो अपराध के असर को एकदम निष्पक्षता से आंकता है।

अभय ने सोचा—उसके पिता एक न्यायकर्ता पहले हैं। हमने व्यक्तिगत रूप से अपराध की गम्भीरता आंकी थी किन्तु राज्य के शासक ने निश्चय ही उसका आकलन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया है और उनकी ही दृष्टि सही है। वे दो पुत्रों के ही पिता नहीं हैं, राज्य की समग्र जनता के पिता हैं। उसी पितृत्व को उन्होंने ऊपर रखा है और ऐसा ही होना चाहिये।

अभय ने अपने बड़े भाई की ओर देखा तो वह घबरा गया। सारी सभा बिखर चुकी थी। सभागार में वे दोनों ही खड़े हुए थे लेकिन मानसिंह तो पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा था। फटी हुई आँखों से वह अब भी एकटक न्यायकर्ता के सिंहासन को ही देख रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे वह अपनी सुधबुध खो चुका हो। न देह हिल रही थी, न दृष्टि।

"भाई साहब, भाई साहब!"—अभय ने बड़े भाई को अपने हाथ से हिलाया।

मानसिंह जैसे गहरी नींद से जागा हो, चौंक कर बोला—"क्या है? मैं कहाँ हूँ? यह क्या हो गया है?"

अभयसिंह की आँखों से टप-टप आँसू झरने लगे—यह कैसा है न्याय? न्याय अंधा होता है, पर दया की आँखों से क्यों नहीं देखता? क्या न्याय का आधार मात्र दण्ड ही है? न्याय को सुधार का मार्ग भी अपनाना चाहिये।

उस सभागार के विशाल कक्ष में वे दोनों एकाकी खड़े थे। उसी सभागार में एक दिन मानसिंह को सिंहासनासीन होना था, लेकिन भाग्य की विडम्बना कि एक लक्ष्य-वेध उसके सिंहासन को उड़ा ले गया। उसकी आँखें अभी भी सिंहासन को ही देख रही थीं।

तभी आहट हुई और दोनों भाइयों ने द्वार की ओर देखा। नगर सेठ जयमल और कुछ प्रमुख नागरिक अपना मुंह लटकाये उनके पास ही आ रहे थे। नगर सेठ हाथ जोड़कर बोले—

"श्रीमानो! मेरा कभी यह अभिप्राय नहीं था कि मैं आप पर बढ़ा-चढ़ाकर अभियोग लगाता। मुझे अपमान का अनुभव अवश्य हुआ था और मैं इतना जरूर चाहता था कि नगर का शुद्धाचरण यथावत् बना रहे। मैं नहीं सोचता था कि हमारे न्याय और नीति के रखवाले महाराजा इतनी सी गलती को इतनी गम्भीरता से लेंगे! मैं आप लोगों के सामने बहुत लज्जित हूँ।"

अभय ने ही उत्तर दिया—"सेठ साहब, आपने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है और पूज्य पिताजी ने एक आदर्श शासक के कर्त्तव्य का। हम तो अब दण्डित पुरुष हैं, हमें भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना है। आपके प्रति हमारा किंचित् भी द्वेष-भाव नहीं है।"

"यह आप लोगों का बड़प्पन है। हम अभी भीतर गये थे महाराजा साहब से निवेदन करने कि वे आपके दण्ड को निरस्त कर दें या छोटा दण्ड देदें। वे कुछ नहीं बोले। एक पिता की व्यथा हमसे नहीं देखी गई। हमने बहुत कहा तो वे इतना ही बोले—"दंड न्यायकर्ता ने दिया है, पिता ने नहीं। अब पिता उसे निरस्त कैसे कर सकता है?"
"आपके पिता एक महान् पुरुष हैं।"—कहते हुए सेठ ही नहीं, सभी नागरिक रो पड़े।

"आप सब हमारे लिये वयोवृद्ध हैं। हमें भी आशीर्वाद दीजिये कि हम भी महान् पिता के महान् पुत्र बन सकें"—अभय ने हाथ जोड़ कर कहा।

सभी लोगों ने अपने हाथ ऊपर उठाये, लेकिन बोल कुछ नहीं सके। गीली आँखों के साथ ही वे धीरे-धीरे सभागार से बाहर निकल गये।

दोनों भाई भी जैसे सचेतन हुए, फिर भी मानसिंह कुछ भी बोलने की स्थिति में नहीं था। अभय ने ही परम आदर और घनिष्ठ आत्मीयता से कहा—"भाई साहब, अब ज्यादा सोचने का समय नहीं है। हमें राज्य की सीमा छोड़ देने के लिये एक दिन और रात की अवधि अवश्य दी गई है लेकिन जब राज्य छोड़ना ही है तो अभी ही क्यों न चल पड़ें? बस मन को तैयार कर लें।"

"हाँ भैया अभय, दंड तो भोगना ही होगा"—मानसिंह के मुंह से एक-एक शब्द बड़ी कठिनाई से निकल रहा था—"लेकिन मैं कैसे चल सकूंगा जंगल की डगर पर?"

अभय भाई का मुंह देखता रहा, बोला कुछ भी नहीं। मानसिंह ही रुंधे गले से फिर बोला—"भाई, मैं तो सुख-सुविधाओं के दायरे से कभी एक कदम भी बाहर नहीं निकला हूं। कैसे चल सकूंगा टेढ़ी-मेढ़ी कांटों वाली राह पर और कैसे सह सकूंगा भूख-प्यास का कष्ट और जंगल में भटकते रहने का दुःख ? क्या होगा मेरा हाल-हवाल मेरे भाई ?" और मानसिंह अपने छोटे भाई का हाथ पकड़ कर इस तरह व्याकुल हो गया जैसे एक बच्चा सामने आई हुई आपदा से घबरा कर अपने पिता का हाथ पकड़कर बिलख उठता है। अभय ने उन्हें अपनी भुजाओं में बांध लिया और पूरी तरह आश्वस्त करते हुए कहा—"आप मन को मजबूत बना लीजिये भाई साहब। कष्ट या दुःख का अनुभव मन ही करता है और मन ही उस अनुभव को मिटा सकता है। आप एक बार निश्चय करलें कि हमें यह सब खुशी-खुशी सहना है तो देखियेगा—मन एकदम बदल जायगा। मन की गति संकल्प शक्ति के साथ चलती है। और भाई साहब, हम अपने पूज्य पिताजी की धवल यशः-पताका को निरन्तर फहरते हुए देखना चाहते हैं क्योंकि वह सारे राज्य के लिये और हमारे लिये सबल प्रेरणा के स्रोत हैं। हमारा दंड हमारे पिताजी की निर्ममता नहीं है, एक निष्ठावान न्यायकर्ता का प्रकाश दान है। आइये, इसी प्रकाश में हम बढ़ चलें"—कहते हुए अभय अपने अग्रज मान का हाथ थाम कर धीरे-धीरे सभागार से—राज महल से—नगर से और राज्य की सीमा से भी बाहर हो गया।

वाह रे अभय और वाह तेरा भ्रातृप्रेम ! एक भाई को वनवास हुआ तो यों समझिये कि लक्ष्मण भी भाई की सेवा हेतु जंगल में चल दिया। अभय यथासमय अपराध की सूचना भी कर सकता था और मानसिंह को दंडादेश हो जाने के बाद राज्य सिंहासन भी प्राप्त कर सकता था। किन्तु नहीं, वह तो भ्रातृप्रेम का पुजारी था। जहां बड़ा भाई, वहां छोटा भाई और इतना ही नहीं, वह एक दृष्टि से लक्ष्मण से भी बढ़कर अपने बड़े भाई का हितैषी और मार्ग-दर्शक भी था। उसका हाथ थामकर चलता हुआ मानसिंह निश्चिन्त सा था कि जो भी होगा, उसका छोटा भाई उसे सम्हालेगा।

कहां राजमहल और कहां जंगल ? नरम-नरम गद्दों और हिंगलू के पलंगों पर सोने वाले सुकोमल राजकुमार जहां-तहां सूखी चट्टानों पर हाथ का तकिया लगा कर सो जाते थे, और मधुर व्यंजनों से स्वादिष्ट भोजन के स्थान पर खट्टे-मीठे जंगली फल खाकर ही सन्तोष करते थे। अभयसिंह तो दृढ़ संकल्पी था ही किन्तु मानसिंह भी धीरे-धीरे अपने मन को कष्ट सहने की क्षमता वाला बनाता जा रहा था।

"दुःख है ज्ञान की खान, मनुवा दुःख है ज्ञान की खान।" दुःख की अवस्था में सहज ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और दुःख ही मनुष्य को मन वश में करने की कला सिखाता है। मन को वश में करने की कला सीख लेने के बाद दुःखों की उपस्थिति में भी दुःखानुभव नहीं होता है। दोनों भाइयों को राजमहल में रहते हुए जो ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, वह ज्ञान उन्हें सब जंगल में होने वाले विविध प्रकार के अनुभवों से मिल रहा था। [illegible] के बीच चलते हुए वे दोनों अपने मन पर इस प्रकार नियन्त्रण करना सीख रहे थे।

कि असह्य शरीर कष्ट भी उन्हें सह्य हो रहे थे। जंगल के एक-एक पदार्थ में और प्रकृति के एक-एक दृश्य में जैसे उन्हें ज्ञान का प्रकाश दिखाई दे रहा था—हर पल उन्हें नई सीख मिलती थी। वे तटस्थ भाव से जीवन-तथ्यों का अनुसंधान करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे।

भय मनुष्य की आन्तरिक शक्ति को क्षय करते हैं और भयों में मृत्यु-भय सबसे बड़ा होता है। वन में मुक्त विचरण के बाद दोनों भाइयों के मन में से मृत्यु-भय भी निकल चुका था। जंगल में तो प्रति पल मृत्यु का भय लगा रहता था—कभी सिंह की निकट ही में हो रही गर्जना में मृत्यु दिखाई देती थी तो कभी रात के सूनेपन में जहरीले सांपों की फुफकार मृत्यु भय को तुरन्त जगा देती थी। जो भय प्रतिपल पीछे लगा हो, उसका आतंक फिर रहता नहीं – वह अभ्यास में आ जाता है। इसी तरह दोनों भाई भय को जीतते जा रहे थे। भय पर जितनी विजय होती थी, उतना ही उनका आत्म-बल बढ़ता जाता था।

आत्म-बल के विकास में दोनों भाई समान रूप से आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। उसका एक कारण था। मानसिंह बड़ा होकर भी छोटे भाई के साथ होने से अपने को संरक्षित मानता था जबकि अभयसिंह स्वाधीन तो था ही, किन्तु वास्तव में उसे संरक्षक का भार वहन भी करना ही पड़ रहा था। एक तो वह भ्रातृप्रेम का परम पुजारी था, दूसरे, मानसिंह की मानसिकता, प्रारम्भ से ही उतनी पुष्ट नहीं थी। अतः अभयसिंह का आत्मबल यहाँ भी मानसिंह का रक्षा-कवच बना हुआ था। अभयसिंह की अभयता विलक्षण रूप से कार्य कर रही थी।

चलते-चलते घने जंगल में एक टीले पर उन्हें छोटी सी बस्ती दिखाई दी। वे वहाँ पहुंचे तो देखा कि सिर्फ आठ-दस झौंपड़े हैं और केवल कुछ नंग धड़ंग बच्चे खेल रहे हैं। न पुरुष हैं, न स्त्रियाँ। उन्होंने बच्चों से कुछ पूछने की चेष्टा की तो वे भाषा न समझ पाने के कारण कोई उत्तर नहीं दे सके। एक सघन वृक्ष के नीचे दोनों भाई बैठ गये और उस वस्ती के निवासियों के आने की बाट जोहने लगे।

जब सूरज ढलने लगा तो दूर कुछ पुरुष जंगली फल, पौधे तथा स्त्रियाँ ईंधन लाती हुई दिखाई दीं। दोनों भाई उनसे परिचित होने के लिये तत्पर हो उठे, लेकिन उन्होंने उन्हें बाहरी आक्रान्ता समझ कर ललकारा। दोनों भाइयों ने अपने हाथ हिलाकर उन्हें आश्वस्त किया और समीप बुलाकर समझाया—"भाइयो! हम आपके हितैषी बनकर आये हैं, शत्रु बनकर नहीं। हमें भी जंगल में ही रहना है और आपकी ही तरह जंगली फल खाकर निर्वाह करना है। हम आपसे कुछ लेना नहीं चाहते। आप लोगों को जीवन सुन्दर बनाने के बारे में अच्छी-अच्छी बातें बताना चाहते हैं, आपकी सेवा करना चाहते हैं। क्या हम भी यहीं एक छोटी सी झौंपड़ी बनालें?"

वे लोग कहलाने को भले जंगली थे लेकिन हकीकत में बड़े सीधे और सरल थे। उन्हें दोनों का बोलना बड़ा प्रियकारी लगा। उनके नायक ने सबकी इच्छा जानकर उत्तर

दिया—"आप तो कोई बड़े आदमी दिखाई दे रहे हैं। यहाँ जंगल में आकर कष्टपूर्ण परिस्थितियों में रहने का आप लोगों ने निश्चय क्यों किया है ?"

"भाई, जिसको जहाँ-जहाँ जाने और जहाँ-जहाँ रहने का संयोग होता है, वह उसे पूरा करना पड़ता है। यही बात हमारे लिये भी समझ लो।"

"कुछ भी हो लेकिन आप हमारे साथ रहेंगे और हमें अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देंगे—यह जानकर हमें बहुत खुशी हो रही है। आप कष्ट न करें। आप लोगों के निवास योग्य झोपड़ी हम तुरन्त तैयार कर देंगे। आप हमारे मेहमान होंगे"—इतना कहते हुए उस नायक ने दोनों भाइयों को अपने साथ चलने का संकेत किया।

मूल रूप से मनुष्य का मन प्रत्येक मनुष्य के साथ समानता का अनुभाव ही ग्रहण करता है। यह तो स्वार्थी मनुष्यों की निकृष्ट देन होती है कि वे मनुष्य समाज में ऊँचे-नीचे वर्ग कायम कर देते हैं और भेदभाव की खाइयां खोद देते हैं कि समानता का अनुभाव क्षीण होता चला जाता है। परन्तु उन वनवासी लोगों में स्वार्थ का अभाव था और ये दोनों भाई भी ममतावान थे तो सबके बीच स्नेह का सूत्र कितनी जल्दी जुड़ गया ?

मानसिंह और अभयसिंह ने कुछ दिन उन्हीं लोगों के बीच बिताने का निश्चय किया। वे प्रफुल्ल थे कि वनवासी लोगों के हृदय कितने निश्छल और सरल होते हैं ? तभी तो उन्होंने उन्हें यों अपना लिया था। दोनों भाई वनवासी जीवन का आनन्द भी उठाते और बस्ती की सेवा भी करते। प्रौढ़ों को वे भांति-भांति की शिक्षाएँ देते तथा बालकों को नये-नये संस्कार। इस तरह वे अपने तन-मन को स्वस्थ बनाते हुए जंगल में राजमहल की सुखानुभूति लेने लगे।

८

टेकरी वाली बस्ती के लोगों में अच्छे संस्कारों का बीजारोपण करके कुछ समय बाद मान और अभय वहां से चल पड़े। यह इस बात का सबूत था कि अब उनका मन जंगल में रमने लगा था। वहां से जंगल के अधिक भीतरी भागों में प्रविष्ठ हुए। उन्हें जिज्ञासा थी कि वहां प्रकृति के अधिक रहस्यपूर्ण दृश्य दिखाई देंगे जिनके माध्यम से अधिक गहरा बोध प्राप्त कर सकेंगे साथ ही अपने आत्मबल को भी अधिक विकसित कर पायेंगे।

ज्यों-ज्यों वे दोनों सघन वन की ओर आगे बढ़ते गये, नैसर्गिक शोभा के विविध रूप उन्हें दिखाई देने लगे। चारों ओर वन श्री फलफूल रही थी। मन्द पवन के झोंकों से हिलते हुए बहुरंगी फूलों का प्रकम्पन दर्शनीय था। भांति-भांति के पक्षियों का कलरव और मयूरों का नृत्य उनकी प्रफुल्लता का आभास दे रहा था। वह प्रफुल्लता जैसे नये उत्साह और नई उमंग को जगाती थी। वे देख रहे थे कि यदि मनुष्य लेने का यत्न करे तो प्रकृति उसे देती ही देती है—न सिर्फ भौतिक साधन अपितु वे महान् आध्यात्मिक शिक्षाएँ—जिनसे जीवन का सच्चा विकास साधा जा सकता है। वृक्षों पर पत्थर फेंकते हैं लेकिन वे पत्थर का जवाब पत्थर से नहीं देते, चोट भी नहीं करते बल्कि मीठे-मीठे फल खाने के लिये देते हैं। सहनशीलता का कितना ऊँचा आदर्श है? क्या मनुष्य भी ऐसा आदर्श उपस्थित नहीं कर सकता? चाहिये दृढ़ संकल्प और कठिन साधना। मनुष्य जीवन में असम्भव कुछ नहीं। ऊँचा से ऊँचा आत्मिक विकास साधने की क्षमता होती है इस मनुष्य जीवन में। प्रकृति का एक-एक दृश्य, उसकी एक-एक देन मनुष्य को ऊर्ध्वगामिता का पाठ पढ़ाती है। धृष्ट मनुष्य अगर उन पाठों को न पढ़ें, और अपने आचार-विचार को विपरीत दिशा में ले जावें तो प्रकृति क्या करे? किन्तु नहीं, मान और अभय ऐसा नहीं कर रहे थे। वे प्रकृति से भरपूर सीख ले रहे थे और अपने जीवन को श्रेष्ठता में ढाल रहे थे।

दोनों भाई दृढ़ संकल्प के साथ आगे-आगे बढ़ रहे थे। कुछ दूर गये तो एक सघन वृक्ष दिखाई दिया। वह वट-वृक्ष था दूर-दूर तक फैला हुआ। उस ताप तप्त भूमि पर उसने शीतलता का एक अलग ही संसार रच रखा था। उसे देखते ही उनके मन में विचार जागा कि यह वट-वृक्ष तपते हुए सूर्य को खुद झेल रहा है और दे रहा है पथिकों

ध्यान की भी अवधि होती है और जब ध्यान खोलने का समय आया तो जैसे ही महात्मा ने दृष्टि प्रसार किया, उनकी दृष्टि सामने नतमस्तक खड़े दोनों भाइयों पर पड़ी। वह दृष्टि क्या थी—जैसे तेज का उमगता हुआ शान्ति प्रवाह, जिसमें दोनों भाइयों के मन, मस्तिष्क ने एक अनोखी अनुभूति प्राप्त की। दर्शन और दृष्टि के बाद तब वे वचन-वर्षा में अवगाहन करने के लिए तत्पर हो उठे।

महात्माजी की शान्त दृष्टि से उपकृत हो जाने के बाद अभय ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"महात्मन्, आप सारे संसार को हितकारी उपदेश देने वाले हैं। आपके पास पापी भी आते हैं और धर्मी भी किन्तु आप तो दोनों को ही उनके उत्थान की ही बात बताते हैं जैसे कि बादल जब बरसात करता है तो बिना भेदभाव सभी ठौर पर करता है। जो आपके सद्वचनों को धारण कर लेते हैं, उनका कल्याण हो जाता है और जो उन्हें सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं, वे पाप-पंक में ही फंसे रहते हैं। परन्तु आपकी अमृत-वर्षा कोई भेद नहीं देखती। कृपा करके हमारे तापतप्त हृदयों पर भी अमृत वर्षा करके हमें उपकृत कीजिये, स्वामी!"

महात्मा भी अति सुज्ञ थे। व्यक्ति की आकृति को देखकर ही व्यक्ति की हृदयस्थ भावना को जानने वाले थे। उन्होंने पहली दृष्टि में ही पहिचान लिया कि ये दोनों भले ही जंगल में मिले हैं लेकिन जंगली नहीं हैं। उत्तम कुल में जन्में हुए दीखते हैं और श्रेष्ठ साधना के अभिलाषी भी। उन्होंने उसी दृष्टि से सम्बोधन किया—"भव्यो, आपकी भावना उत्तम है और उत्तम भावना का सम्बन्ध भी पूर्व संचित कर्मों से होता है। पुण्य कर्मों के उदय से भावना भी उत्तम बनती है और उत्थानकारी संयोग भी मिलते हैं। यदि आप लोगों को किन्हीं विपरीत परिस्थितियों के कारण जंगल में आना पड़ा है तो उसे भी अशुभ कर्मों का प्रभाव ही मानिये। शुभ या अशुभ जैसे भी कर्मों का बंध एक बार यह आत्मा करती है, उनके शुभ या अशुभ फल को भोगे बिना उन कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता किन्तु जो अशुभ फल को भोगते समय भी पुनः अशुभ भाव नहीं लाता और समताभाव से उसे भोगता है, वह पुराने कर्मों को क्षय करता है और नये अशुभ कर्म नहीं बांधता। इस प्रकार कर्म-क्षय करते हुए आत्मा एक दिन पूर्ण मुक्तावस्था को प्राप्त कर सकती है।"

महात्मा का उपदेश उनकी आन्तरिकता को छू गया। जब अशुभ फल भोगना ही है तो उसे शान्त भाव से ही क्यों न भोगा जाय? अभय ने जिज्ञासा व्यक्त की—"कर्म-क्षय की साधना का कोई ऐसा दिव्य मंत्र बताइये भगवन् कि हम उसे हृदयस्थ कर सकें और आपदा के समय उसका जाप करते हुए अपने विवेकपूर्ण साहस को बनाये रख सकें। आपके उपदेश के अनुसार हम पूरा प्रयास करते हैं कि जंगल के कष्टों को सहते हुए भी हम समभावी बने रहें"—कहते हुए अभय ने महात्मा से कुछ भी छिपाना उचित नहीं समझा और अपनी जीवन-कथा उनके सामने खोलकर रखदी। वे भी उसे सुनकर द्रवित से हो उठे। उन्होंने मृदु शब्दों में कहा—"राजकुमारो! इस अवस्था में भी आप

सावधानी रखते हो—यह अच्छी बात है। घबराना कभी नहीं चाहिये, चाहे अशुभ कर्मों का कटुतम फल भी सामने आ जाय। मैं आपको 'महामंत्र' देता हूँ जिसे यदि अपनी आन्तरिकता से रटा लोगे तो वह आपके समग्र जीवन का रक्षा कवच हो जायगा।"

"हमें अवश्य कृतार्थ करें स्वामी!"—दोनों भाइयों ने महात्मा के चरण स्पर्श करते हुए प्रार्थना की।

"यह इस नर तन को सफल बनाने वाला महामंत्र है राजपुत्रो! यदि इसे अन्तःकरण पूर्वक जाप लोगे तो सदा अशुभ टलता जायगा और शुभ तुम्हें वरण करता जायगा। लो, इस महामंत्र को याद करलो"—कहते हुए महात्मा महामंत्र की एक-एक पंक्ति का उच्चारण करने लगे और राजकुमार उसे कंठ से उचारने लगे।" णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं—एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं।"······ सभी पंक्तियाँ जब कंठस्थ हो गई तो महात्मा ने महामंत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए फरमाया—"यह महामंत्र संसार का सर्वश्रेष्ठ महामंत्र है। इसका कारण भी मैं आप लोगों को बताऊँगा, पहले अर्थ स्पष्ट करदूँ। क्रमशः अर्थ है—अरिहंतों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार, लोक के सर्व साधुओं को नमस्कार—यह पांच नमस्कार सर्व पापों को नष्ट करने वाले है, और यह सभी मंगलों में प्रथम मंगल है।"

"महाप्रभु, पांचों मंगल पदों का स्वरूप भी समझाइये।"

"मैं यही समझा रहा हूँ। जो अपने घाति कर्मरूपी शत्रुओं को समाप्त कर दें वे अरिहंत कहलाते हैं और उसके बाद जब निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं तो सिद्ध हो जाते हैं। जो संघ के शासक और प्रमुख उपदेष्टा होते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं और शास्त्रों का पठन-पाठन कराने वालों को उपाध्याय। इन चारों पदों की समुन्नत आत्मस्थिति का आरंभ होता है साधक की साधना से। ऐसे साधक को साधु कहते हैं। सांसारिकता से [illegible] इन पांचों पद सभी के लिये वन्दनीय हैं। यह वन्दन इतना पवित्र होता है कि [illegible] से पाप नष्ट हो जाते हैं और उसका मंगल ही मंगल होता रहता है।"

"वस्तुतः यह महामंत्र है राजपुत्र, जिसके द्वारा सभी गुणी पुरुषों को नमस्कार किया जाता है। यहां व्यक्ति का भेद नहीं है कि मैं जिसे अच्छा मानता हूँ उसका नाम लेकर नमस्कार करूँ और जो अच्छा नहीं है वह चाहे गुणी भी हो तो उसे नमस्कार न करूँ। इसीलिए [illegible] भी नाम से नहीं, गुण से होता है अतः गुण की दृष्टि से ही किसी को देखा जाना चाहिये और गुण की अपेक्षा करके गुणी जीवन का ही अनुसरण किया जाना चाहिये। जो राग-द्वेष से परे हुए हैं, इस महामंत्र से उनकी [illegible] है। [illegible] भी है। अब इस महामंत्र की इस

हृदय से साधना करेंगे।" जब अभय ने यह कहा तो उसके मुख पर अद्भुत आभा बिखर रही थी।

महात्मा ने भी इस कथन से तुष्ट होकर फरमाया—"आप ज्ञानी और विवेकशील हैं। यह महामंत्र संसार का सर्वश्रेष्ठ महामंत्र इसी कारण है कि इसके द्वारा अभेद दृष्टि से केवल गुणों का सम्मान किया गया है। नाम में ममत्व आ जाता है लेकिन गुणीजनों को भावपूर्वक नमस्कार करना सर्वश्रेष्ठ साधना है। इस महामंत्र को नित प्रति प्रातः सायं और जब मन हो जाय जपते रहने में तल्लीन बन जाइये—बाधाएँ सब समाप्त हो जाएंगी और सर्वतः मंगल ही मंगल हो जायगा।"

राजकुमारों ने महात्मा की वाणी को गले उतारा और संकल्प लिया कि वे महामंत्र का नित प्रति जाप करते रहेंगे। अभयसिंह ने तो संकल्प की गांठ बांधली और मानसिंह की हृदयस्थिति तो जैसी थी, वैसी ही थी। अभयसिंह का मंगल होगा तो उसका भी मंगल होगा ही, इसका उसे पूर्ण विश्वास था।

यह एक संयोग की ही बात थी कि दोनों भाइयों का इस तरह एक तेजस्वी महात्मा से मिलन हो गया और इस तरह उन्हें वट-वृक्ष के नीचे महामंत्र की प्राप्ति हो गई। क्योंकि इसी महामंत्र को साधकर आगे अभयसिंह ने अद्भुत आत्मबल विकसित किया, जो उसकी जीवन पर्यन्त रक्षा और उन्नति करता रहा।

महात्मा अपनी राह चले गये किन्तु राजकुमारों को भी अपनी उन्नति की राह दिखा गये। कौन कितनी दृढ़ता से उस राह पर चले—यह अपनी-अपनी आत्मिक क्षमता की बात होती है। दोनों भाई भी साधना को अपना लक्ष्य बनाते हुए जंगल की गहराई में आगे बढ़ने लगे। पहले उनमें नैतिकता का संचार था तो अब उसके साथ धार्मिकता भी लहलहाने लगी। नीति जब धर्म से युक्त हो जाती है तो वह चिरस्थायी बन जाती है। नीति पर जब स्वार्थ हावी हो जाता है, तब वह अनीति हो जाती है। अपने ही मतलब में पड़कर मनुष्य पापी बनता है। ममत्व छोड़ता रहे और समत्व ग्रहण करता रहे तो वैसा मनुष्य अपनी मनुष्यता को ही विकसित नहीं बनाता बल्कि देवत्व की दिशा में गति करने लगता है।

अभयसिंह ने भी इसी दिशा में गतिशील रहने का निश्चय किया और उसने मन ही मन अपने को बड़े भाई की सेवा में समर्पित कर दिया। महामंत्र के जाप का अर्थ है साधना और साधना का अर्थ होता है त्याग। और सर्वस्व तक के त्याग की धारणा बना ली अभय ने। भाई साहब के लिये वह सर्वस्व का भी त्याग कर सकता है—यह अभय के मन में समा गया।

त्याग में जो आनन्द होता है, उसे भोगी नहीं जान सकता। भोगी तो यह समझता है कि यदि उसने प्राप्त अथवा प्राप्य भोग्य पदार्थों का अधिक से अधिक भोग कर

लिया तो वह सुखी हो गया । और उसकी वह सहानुभूति भी क्षणिक और अस्थायी होती है । किन्तु अपना सब कुछ देकर जिस सुख का अनुभव किया जाता है, वह स्थायी रहता है और सदा आनन्दित बनाता है ।

अमृतसम उपदेश सुनकर अभय का हृदय अमृतमय हो रहा था । त्याग का अनुभाव उसके मन-मानस में रम रहा था । उसके ज्येष्ठ भ्राता उसके उपास्य थे और वह उनके लिये त्याग की किसी भी स्थिति तक चले जाने के लिये तैयार था । उसका आदर्श भ्रातृ प्रेम नई ऊँचाइयों तक पहुँच जाने के लिये आतुर हो रहा था ।

अभय वट-वृक्ष और महात्मा के समान था तो मान उस पथिक के जैसा जो जब वट-वृक्ष की छाया में बैठा रहता है उसको याद रखता है और जब उस छाया से दूर हो जाता है तो उसे बिसार देता है । अतः यों कहिये कि उस समय वट-वृक्ष और पथिक साथ-साथ चल रहे थे ।

६
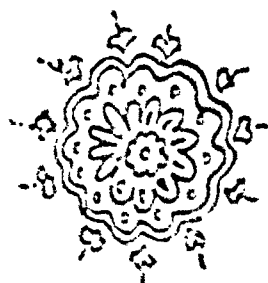
मानसिंह और अभयसिंह नई जिज्ञासाओं को लेकर घनघोर जंगल के भीतर आगे से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। महात्मा जी का ज्ञान-दान उनके लिये प्रकाशमान ज्योति की तरह चिन्तन की गहराइयों में उतर रहा था। वे उस पर पुनः पुनः चिन्तन करते थे और जीवन में उतारने की विधियों पर विचार करते थे। यों कहिये कि वे प्राप्त ज्ञान का पिष्टपेषण कर रहे थे उस ऊँट की तरह जो घास भूसा एक बार तो सबका सब पेट में डाल लेता है और फिर खाये हुए को वापिस मुंह में लाता है—धीरे-धीरे चबाता है। यह क्रिया वह कई बार करता रहता है। इसी प्रक्रिया को पिष्टपेषण कहते हैं। इसे पचाने की कला भी कह सकते हैं। अगर कोई खाना यों का यों निगल जाय तो क्या वह पच जायेगा? पचाना है तो उसे पूरी तरह चबा-चबाकर खाना होगा। ज्ञान भी इसी तरह पचता है पिष्टपेषण से और यही वे दोनों भाई कर रहे थे।

वे बार-बार महात्मा जी की बातों पर और अपने जीवन की वर्तमान अवस्था पर चिन्तन करते हुए निर्धारण कर रहे थे कि वे इसे जीवन में उतार कर किस प्रकार जीवन स्वरूप को उज्ज्वल बनावें? बार-बार चिन्तन करने से ही ज्ञान पुष्ट होता है। जो उपदेश इस तरह पचाया नहीं जाता, वह जल्दी ही बिखर-बिसर जाता है। तो वे दोनों भाई भोजन की तरह ही ज्ञान को भी पचाने की कला जान गये और उसी कला को कार्यान्वित करते हुए वे उस दुरुह पथ पर अग्रसर होते जा रहे थे।

ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ रहे थे, पथ की दुरुहता उतनी ही बढ़ती जा रही थी। पथ पर तीखे शिला खंड उभर रहे थे, तो पास की घनी झाड़ियों के तीखे कांटे सूख कर बिखर रहे थे। उन पर चलना दूभर ही नहीं, अशक्य था किन्तु दोनों भाई चूंकि उन परिस्थितियों के कुछ-कुछ अभ्यस्त हो चुके थे, अतः साहसपूर्वक चले जा रहे थे। फिर भी उन की शारीरिक शक्ति की भी एक सीमा थी और मानसिंह की तो सभी शक्तियाँ जवाब देने लग गई थीं जबकि छोटा भाई अभय अपने आत्म-बल के सहारे ही स्वयं बढ़ रहा था और मानसिंह को भी खींचे लिये जा रहा था।

किन्तु वह बिन्दु आ गया जब मानसिंह थक कर चूर-चूर हो गया और एक वृक्ष की छाया में बैठ गया—"भैया अभय, अब तो एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकूंगा। मन और तन दोनों थककर चूर-चूर हो गये हैं और इतनी तीव्र तृषा लगी हुई है कि जीभ ताल

से सूख गई है। अब तो कहीं से खोज तलाश कर पानी ले आओ, वरना मैं जीवित न रह सकूंगा।"

"भाई साहब, आज आप यूं क्या हिम्मत छोड़ रहे हैं? अब तक तो आपका तन-मन खूब थक चुका है। थोड़ी दूरी तक और चलिये क्योंकि इस ढलान पर तो पानी मिलना मुश्किल है। घाटी में कुछ नीचे उतर जायेंगे तो पानी भी मिल जायेगा और भरपूर विश्राम भी कर लेंगे। चलिये, कुछ दूरी और पार कर लें"—इस तरह हिम्मत बंधा कर अभय ने मानसिंह को हाथ का सहारा देकर उठाया और उनका हाथ अपने कंधे पर रखवा दिया। फिर दोनों धीरे-धीरे उस पहाड़ी ढलान से नीचे उतरने लगे।

चलते-चलते अभय कहने लगा—"महात्माजी ने क्या कहा था भाई साहब कि कैसा भी कष्ट आये मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये। कष्टों की कठिनाई में ही तो मनुष्य के धैर्य की परीक्षा होती है और पूर्व संचित कर्मों का क्षय करना है तो कष्टों को खुशी-खुशी ही झेलना चाहिये। इस तरह अगर मन नहीं थकेगा तो थका हुआ तन भी थकान महसूस नहीं करेगा। आप महामंत्र का जाप करते रहिये और धीरज के साथ चलते रहिये। मैं भी ऐसा ही कर रहा हूँ।"

मानसिंह क्या बोलता? इतना कहने के बाद फिर-फिर थकान का रोना-धोना भी ठीक नहीं लगता। मन को समझाकर वह भी थोड़ा-थोड़ा चलने लगा। उतार पूरा हो जाने के बाद अभय ने भाई साहब को एक सघन वृक्ष की छाया में बिठा दिया और स्वयं पीने लायक पानी की तलाश में वहाँ से चल दिया। वह कहता गया "भाई साहब, आप यहीं विश्राम करावें। मैं जल्दी से जल्दी पानी लेकर आपकी सेवा में पुनः उपस्थित होता हूँ।"

अभयसिंह थोड़ी ही दूर आगे गया होगा कि उसे एक सरोवर दिखाई दिया—वह भी ज्यादा दूर नहीं था। तेज चाल से वह उस सरोवर के किनारे पर पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसकी थकान दूर हो गई। पानी इतना साफ कि नीचे तले की सब चीजें दिखाई दे रही थी और ठंडा इतना कि हाथ लगाते ही सारे तन बदन में शीतलता व्याप गई। जैसे जल को छू कर जो हवा बह रही थी, उसके झोंकों ने बदन की सारी थकान एक ही क्षण में मिटा दी। सरोवर के पास का प्राकृतिक वातावरण भी अतीव रम्य था। चारों ओर सुगंधित पुष्पों से लदे हुए मंद-मंद हवा में हौले-हौले झूल रहे थे और लताओं की हिलकन मन को मोह लेती थी।

लेकिन जल ले जाऊंगा किस में ? वह बड़े और चौड़े पत्तों की तलाश में इधर-उधर घूमने लगा ताकि बड़ा सा दोना बनाकर उसमें भाई साहब को पिलाने के लिये जल भर कर ले जावे। पास ही उसे ऐसे पत्ते भी दिखाई दिये तथा वहीं एक शिलालेख भी दिखाई दिया।

उस घनघोर जंगल के बीच सरोवर के किनारे आखिर यह शिलालेख लगाने कौन आया ? उसने शिलालेख वहाँ पर क्यों लगाया ? और इस शिलालेख में आखिर लिखा क्या गया है ? अभय उसे पढ़ने के लिये आतुर हो उठा। वह पत्तों को छोड़कर पहले शिलालेख के समीप पँहुच गया। शिलालेख की लिखावट पढ़कर तो वह आश्चर्य में ही नहीं डूबा बल्कि एक अनजाने आतंक से भी त्रस्त हो उठा।

शिलालेख पर लिखा था—"सावधान ! जिसको अपना जीवन प्यारा हो, वह इसे पूरा पढ़े और गहराई से विचार करे। अपने प्राणों को खोना है या रखना है—उसी की सावधानी दिलाने के लिये यह सूचना लिखी जा रही है.... ...इस सरोवर के चारों ओर चार-चार कोस के क्षेत्र में कोई भी मानव-मानवी कतई प्रवेश न करे और कर गया हो तो तुरन्त बाहर निकल जावे—रात्रि वास तो किसी भी दशा में न करे। ....इस सरोवर का जल भी कोई किसी भी दशा में न स्वयं पीए और न किसी अन्य को पिलावे। यदि कोई इस क्षेत्र में रात बितायेगा अथवा सरोवर का जल पियेगा तो उसका जिन्दा रहना कठिन है।........दिन में कोई निकल गया सो निकल गया, रात में इस क्षेत्र में न रहे व सरोवर का जल कभी भी कोई न पीए—अत. यह चेतावनी दी जाती है।"

अभय ने शिलालेख को दूसरी बार पढ़ा, तीसरी बार पढ़ा और सोच में डूब गया कि अब क्या किया जाय ? तीव्र तृषा से भाई साहब की जान पर बनी हुई है तो वह भी कम प्यासा और थका हुआ नहीं है। अब बिना प्यास बुझाये इस चार कोस के क्षेत्र से बाहर निकलना भी एकदम अशक्य लग रहा है। प्राण प्यारे भी हैं और यों भी छूट सकते हैं, फिर प्राणों की रक्षा कैसे करें ? सरोवर का जल पिये तो प्राण जाते हैं और न पिये तब भी प्राण जाते हैं तो क्या करें ? रात्रि कहाँ बितावें—इस पर तो बाद में सोचें। अभय वहीं एक चट्टान पर बैठ गया चिन्ता के तनाव के साथ। ये कैसे देवी देवता—हैं जो भूले भटके मनुष्य के प्रति भी दया नहीं दिखाना चाहते ? वह वहीं कुछ देर के लिये ध्यानस्थ हो गया और महामंत्र का तल्लीनतापूर्वक जाप करने लगा। वह ज्यों-ज्यों जाप करता जाता था, त्यों-त्यों उसे अनुभव होने लगा कि मन में नये साहस का संचार होता जा रहा है और उसी वेग में उसने निश्चय कर लिया कि आने वाले की आशंका व्यर्थ है। जब दोनों ओर से प्राणों को खतरा है तो पहले खतरे को टाल देना ही बुद्धिमानी है। वह उठा, उसने जल्दी-जल्दी बड़ा दोना बनाया और उसमें सरोवर का जल भर कर उसी सघन वृक्ष की ओर तेजी से चल पड़ा जहाँ उसके भाई साहब अभी विश्राम कर रहे थे।

सघन वृक्ष तक पँहुच कर देखा तो उस ठंडी छाया के नीचे भी भाई साहब का बहुत बुरा हाल था। प्यास के मारे उनका जी तड़प रहा था और जिह्वा लड़खड़ा रही थी। हालत देखकर अभय चौंक उठा कि अगर वह थोड़ी सी भी देर और कर देता तो भाई साहब का जीवन खतरे में पड़ जाता। उसने जल्दी-जल्दी पानी की पतली धार

मानसिंह के मुँह में डाली और मुँह पर ठंडे-ठंडे छींटे तब कहीं जाकर मानसिंह की चेतना लौटी । उनकी सेवा करके तुरन्त अभय पुनः सरोवर पर पहुँचा और उसने भी अपनी तृषा शान्त की । तब उसने कल्पना की कि एक बार तो दोनों भाइयों के जाते हुए प्राण वापिस लौट आये हैं । अब आगे जो होगा, देखा जायेगा – महामंत्र जो उसके कण्ठ में बसा हुआ है । वह सधे हुए कदमों से वापिस सघन वृक्ष तक लौट आया ।

शिलालेख, में उल्लिखित खतरे के बारे में अभय ने मान को कुछ नहीं बताया । एक तो वैसे ही उनकी धीरता उतनी पुष्ट नहीं थी तथा दूसरे, अभय को ही जब सब कुछ निश्चित करना था तो फिर भाई साहब को व्यर्थ का मानसिक कष्ट दिया ही क्यों जाय ? निश्चय का दायित्व पूरे तौर पर उसने अपने पर ही थोप लिया ।

तृषा शान्ति के बाद रात्रिवास की समस्या सामने थी । अभय ने सोचा कि अब भाई साहब को समझा-बुझाकर चार कोस की सीमा से बाहर चले जावें । मानसिंह का जी जब कुछ अच्छा हो गया तो अभयसिंह ने उनसे कहा—"भाई साहब, अब आपकी तबियत कैसे है ?"

"भाई, यों समझो कि जान बच गई । प्यास की बेचैनी इतनी बढ़ी कि मैं तो बेसुध ही हो गया । अब कुछ-कुछ ठीक हूँ ।"

"आप कहें तो अब यहाँ से चल कर दो चार कोस आगे निकल जावें और वहीं ठीक स्थान देखकर रात बिता देंगे । किन्तु दिन ढलने वाला है, इसलिये अपन जल्दी ही रवाना हो जावें ।"—अभय ने जैसे जल्दी ही उठ जाने का संकेत दिया ।

किन्तु मानसिंह तो जैसे निढाल लेटा था वैसे ही लेटे रहा और बोला—"मुझमें उठने की भी शक्ति नहीं है, चलने की तो बात ही नहीं है । चाहे मरें या जियें आज की रात तो इस वृक्ष के नीचे ही बितानी होगी । मेरी थकान तो सुबह तक भी मिट जाय तो गनीमत है ।" इतना सुनने के बाद अभय ने भाई साहब को और अधिक कुछ कहना कतई उचित नहीं समझा । उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि जो होगा सो सही-अब रात भी इसी सघन वृक्ष के नीचे बितानी है । महामंत्र की शरण है । ऊपर से इतना ही बोला—"ठीक है भाई साहब, अगर आप इतने ही थके हुए हैं तो रात यहीं बितायेंगे, आगे नहीं चलेंगे ।" जब अभय ने यह कहा तो मानसिंह ने सन्तोष की सांस ली । उसने अपने पैर पसारे, आँखें बन्द की और खर्राटे खींचने शुरू कर दिये । मानसिंह को दिन भी नहीं दिखा, उसी वक्त ही प्रगाढ़ निद्रा में सो गया ।

मानसिंह को इतनी गाढ़ी नींद आ गई कि वह बेसुध हो गया । कहाँ क्या हो रहा है या क्या होने वाला है- इसकी उसे कोई चेतना नहीं रही । परिस्थिति का सामना उसे ही करना पड़ता है जो जागता है । जो सो जाता है वह तो दूसरों के भरोसे, अपने लिए से भी बेफिक्र हो जाता है । सोने वाला एक तरह से सारी जिम्मेदारी से बरी हो जाता है, लेकिन जागने वाला जिम्मेदारी छोड़ दे तो काम नहीं चलता । मानसिंह सो गया तो सारे उत्तरदायित्वों से भी मुक्त हो गया और सभी प्रकार के भयों से भी मुक्त हो गया । सोने वाले के लिये करणीय कुछ नहीं रहा और वैसे भी मानसिंह तो स्वभाव से ही सरल रहा था ।

दायित्व का पूरा भार अभयसिंह के कंधों पर ही था और भय का सारा विवरण भी उसी की जानकारी में था। इसलिये वह जाग रहा था और भाई साहब की सुरक्षा तथा सेवा के लिये उसे रात भर भी जागना ही था। सचमुच में भाई साहब का संरक्षक तो वही था—वे तो उसके संरक्षण के कारण ही निःशंक रहते आये थे और तब भी निःशंक ही सो गये थे।

दिन ढल गया, सूरज डूब गया तो धीरे-धीरे अंधेरा बढ़ने लगा। अंधेरे के बाद अरण्य का वातावरण अधिक भयावह होता जा रहा था। जंगल का सन्नाटा और चारों ओर सांय-सांय करती डरावनी आवाज। कभी सियारों की चिल्लाहट तो कभी किसी जंगली जानवर की गुर्राहट—कुछ न कुछ भय जगाने वाली बात होती ही रहती थी। मानसिंह एक साफ से ऊँचे स्थान पर सो रहा था और उसके पास बैठ गया अभयसिंह—सदा जागृत और अभी भी जागते रहने का संकल्प लिये हुए।

वह चिन्तन करने लगा—ऐसी कठिन वेला तो अब तक भी नहीं आई थी। स्थान भी इतना भयानक कभी नहीं रहा और सरोवर का जल पीने के बाद इसी सघन वृक्ष के नीचे रात बिताते वक्त तो कौन जाने कि कितना भीषण कुछ घटित होने वाला है! बड़े भाई साहब निश्चिन्त सो रहे हैं और एकाकी उसे ही दोनों की सुरक्षा का भार उठाना है जब कि उसके पास कोई छोटा-बड़ा शस्त्र भी नहीं है....उसके मन में विचारों का उतार-चढ़ाव तेजी से घूमने लगा।

चारों ओर का दृश्य इतना भयावह होता जा रहा था कि अभयसिंह जैसे सिंह का भी मन डावांडोल होने लगा। अरक्षा का इतना खतरनाक वातावरण और दोनों की रक्षा का कोई भी साधन उसके पास नहीं। यदि किसी भी रूप में कोई आपदा टूट पड़ी तो वह उससे कैसे जूझेगा?

भय कई प्रकार के होते हैं और कई प्रकार से मनुष्य को डारते रहते हैं। दूसरे, भय वास्तविक कम और काल्पनिक अधिक होते हैं। जो भय समक्ष प्रस्तुत होता है उसका रूप भी दिखाई देता है एवं उसका प्रकार भी समझ में आता है। उससे जूझना उतना कठिन नहीं होता। सामने दिखाई देने वाली जो भी स्थिति होती है, उसे तौलकर कोई भी साहसी व्यक्ति अपनी शक्ति समेट कर उससे भिड़ सकता है। किन्तु जो भय मात्र कल्पना में समाया हुआ हो, उससे, कितना भी साहस हो कोई कैसे लड़ सकता है? और कल्पना भी तो एक सी नहीं रहती—आसपास के वातावरण और सामने आने वाली परिस्थितियों के बदलते रहने से भी कल्पना बदलती रहती है तथा स्वयं सोच-सोच कर भी बदलती रह सकती है। अतः काल्पनिक भय पर काबू पाना बहुत ही कठिन होता है।

उस समय अभय भी अरण्य के उस भयावह वातावरण में काल्पनिक भय के चक्कर में फंस गया था। कहीं कुछ आहट होती या किधर से कोई आवाज आती तो वह चौकन्ना हो जाता। तभी अभय का चिन्तन जागा अर्थात् उसकी आन्तरिकता जागी कि वह भय ग्रस्त क्यों हो रहा है? उसके पास तो निर्भयता का महामंत्र है न? वह पद्मासन लगा कर बैठ गया लेकिन उसने नेत्र बंद नहीं किये। बाहर भी सावधान रहा और महामंत्र का जाप करते हुए भीतर की सावधानी भी पकड़ने लगा। निरन्तर उसकी भीतर-बाहर की सावधानी बढ़ती रही और उससे उसका साहस भी बढ़ता रहा। अभय तब वज्र सा कठोर हो गया कि कोई भी आपदा आ जाय, वह उसे परास्त करके ही छोड़ेगा। □

१०

अचानक मन के उस घनांधकार में एक दिशा तीव्र प्रकाश से आलोकित हो उठी। ऐसा लगा—जैसे उस प्रकाश में सूर्य के प्रकाश से भी अधिक चमक थी। वह प्रकाश एक कोने से फूट रहा था और वह सोना – अभय को ऐसा प्रतीत हुआ कि धीरे-धीरे उसी के पास खिसकता हुआ चला आ रहा है। अभय ने बहुत प्रयास किया यह जानने के लिये कि वह कैसा सोना है किन्तु उस की तरफ प्रकाश की तीव्रता के कारण न तो दृष्टि टिकती थी और न ही भीतर-बाहर कुछ भी दिखाई देता था।

आश्चर्यचकित सा कुछ देर तक तो अभय उसे अपलक देखने की चेष्टा करता रहा, लेकिन कुछ नहीं देख सका तो उसे ध्यान आ गया दिन को पढ़े सरोवर वाले शिलालेख का। और वह सोचने लगा कि हो न हो यह कोई दैवी चमत्कार ही है। देवी-देवताओं की रमण भूमि है तो उनके सिवाय और कौन हो सकता है ?

यह विचार आते ही वह भी मानसिंह की बगल में ही लेट गया और उसने जान-बूझकर आंखें बन्द करली जिससे देखने वाले को यही आभास हो कि वह भी निद्रालीन है। लेकिन उसकी भीतरी उत्कंठा प्रबल हो गई चुपचाप देखने और सुनने के लिये कि अब उसके आस-पास क्या घटित होता है। उसका शरीर तो एकदम शान्त और निश्चेष्ट था जैसे कि वह सांस भी रोककर सो रहा हो, लेकिन उसका मन बुरी तरह चंचल हो उठा था। और मानसिंह तो निश्चिन्त गहरी नींद में बेभान सोया ही हुआ था।

चंचल मन कभी भी बहक सकता है, क्योंकि वह आत्म-नियंत्रण से बाहर होता है। मन की चंचलता में बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय किया जाना भी कठिन हो जाता है। अतः अभयसिंह को मनोनिग्रह का ध्यान आया और उसकी अन्तरात्मा में महामंत्र की ध्वनि रमण करने लगी। जब मृत्यु का भय तो मर चुका है तो फिर चंचलता क्यों ? जो भी दिखाई देगा या जो भी सुनाई देगा अथवा जो भी घटित होगा, उसे वह शान्त चित्त से देखेगा, सुनेगा और तदनुसार अपने कर्तव्य का निर्धारण करेगा। अभय ने अपने आपको सावधान एवं शान्त बना लिया। कोई बाहर से [illegible] सुनाई—वे उसी तरह निश्चिन्त सो रहे थे—वह भी निश्चिन्त हो [illegible] और [illegible] के सोने की तरह उसने अपने खर्राटे [illegible] कर दिये।

किन्तु गोले का तीव्र प्रकाश अधमुंदे नयनों को भी असह्य होने लगा क्योंकि गोला बहुत समीप तक आ चुका था। तब अभय ने एक चद्दर मुंह पर डाल लिया और उसके एक छेद से बाहर का दृश्य देखने लगा।

अभय ने क्या देखा ?

वह प्रकाश का गोला एक देव विमान था और वह उस सघन वृक्ष से कुछ ही दूरी पर भूमि से लगकर ठहर गया था। लाल किरणों की झिलमिलाती रोशनी में विमान का द्वार खुला और उसमें से दो देवियाँ निकलीं। पहले निकली एक सौम्य स्वरूपा देवी जिसे वह पहचान गया कि वह लक्ष्मी थी। उसके हृदय में हर्ष की एक लहर उठी। तभी पीछे-पीछे ही एक दूसरी देवी निकली। वह रौद्ररूपा थी—कालिका देवी। उसे भी वह पहिचान गया।

किन्तु अभय अभय भी बन गया। महामंत्र की शरण में जाने के बाद भय रहता ही कहाँ है ? सुमति उसके हृदय में व्याप गई। जो सुमति की गोद में बैठ जाता है, वह मात्र अभय ही नहीं बनता, बल्कि उसकी बुद्धि भी निर्मल और सजग बन जाती है। इस समय अभय भी भयरहित हो कर सजग बुद्धि के साथ आगे की घटना की सांस रोके प्रतीक्षा करने लगा। तभी उसे दोनों देवियों के बीच होने वाले वार्तालाप की ध्वनि सुनाई दी। उसका ध्यान उनकी तरफ केन्द्रित हो गया।

कालिका ने लक्ष्मी से कहा—"महादेवीजी, ये कौन नराधम हैं, जो अपने जीवन से हाथ धोने पर उतारु हो रहे हैं ? शिलालेख पढ़कर भी उन्होंने उसे गंभीरता से नहीं लिया—यह इनकी धृष्टता है। आपकी आज्ञा हो तो मैं उन्हें इनकी करणी का अभी ही फल चखा दूं।"

जब ये शब्द अभय के कानों में पड़े तो जैसे एक क्षण के लिये सन्नाटा छा गया—भय का उद्वेग जाग उठा। किन्तु दूसरे ही क्षण अभय के भीतर बैठी हुई सुमति ने कहा—यह क्या कर रहा है ? महामंत्र के प्रति अपनी निष्ठा को डिगा मत। देखता रह, सुनता रह और अपना कर्त्तव्य निर्धारित करले, ऐसा तभी कर सकेगा, जब सावधान रहेगा और सजगता बरतेगा। उसने तब बेडर होकर देखा कि कालिका चमचमाती नंगी तलवार लेकर दोनों भाइयों की ओर लपकी। तभी लपक कर लक्ष्मी ने उसका हाथ थाम लिया और कहा—"बहन, इन बेचारों को क्यों सता रही हो ? कोई भी जानबूझ कर मरना थोड़े ही चाहता है ? ये भी किसी न किसी मजबूरी में फंस कर ही इस क्षेत्र में ठहर गये होंगे। इनके पास न कोई शस्त्र है और न कोई भावना कि ये हमारे मुकाबले की हिम्मत करके यहाँ ठहरे हों। कोई पीड़ित पुरुष मालूम होते हैं अतः दया करो, इन्हें छोड़ दो।"

"महादेवी जी, कुछ भी हो—आज्ञा का पालन नहीं करना भी तो अधर्म होता है और आप अधर्म के प्रति दया दिखाने का निर्देश क्यों कर दे रही हैं ?" कालिका की विकरालता ज्यों की त्यों बनी हुई थी।

"तुम्हारा कहना भी सही है बहिन, किन्तु ये तो धार्मिक पुरुष दिखाई दे रहे हैं। आज्ञा की अवज्ञा करने का उनका कोई भाव नहीं दिखाई देता है। किसी न किसी विवशता के कारण ही ये लोग रात्रि विश्राम के लिए यहाँ ठहर गये लगते हैं। अतः इनके साथ [illegible] का व्यवहार उचित नहीं है।"—आन्तरिक करुणा से अभिभूत होकर लक्ष्मी ने कालिका के हाथ से तलवार छीन ली।

अभय ने सोचा कि क्या यह महामंत्र का ही प्रभावपूर्ण चमत्कार नहीं है कि इस प्रकार उनके जीवन की सहज ही में रक्षा हो गई है?

"आपने इन मनुष्यों को बचा लिया, ये बेचारे आपकी दया का आभार मानेंगे।" देवी कालिका ने कुछ निराशा सी प्रकट की।

लक्ष्मी ने भी स्नेह पूर्वक समझाया—"नहीं, बहिन, आभार तो ये लोग तुम्हारे प्रति प्रकट करेंगे, क्योंकि तुम्हारी तलवार इनका काम तमाम करने के लिए बाहर निकल चुकी थी और जगदम्बा तो तुम्हीं कहलाती हो—जगत् की माता, फिर मां के उपकार को ही तो बच्चे याद रखते हैं। तुम विचार मत करो—यह शुभ काम ही हुआ है।"

कालिका का दिल भी पिघल गया, वह बोली—"महादेवी, दुष्टों का वध करने में मेरी विकरालता प्रकट होती है किन्तु आज आपने मेरे हृदय में करुणा को जगाकर मुझे अनूठा आनन्द अनुभव करने का अवसर दिया है। मारने से बचाने का अनुभव निराला ही होता है। क्रूरता से मधुरता की ओर आगे बढ़ने का मेरे मन में नया उत्साह जाग उठा है। आपने ठीक ही कहा है कि संसार मुझे जगदम्बा कहता है—दुष्ट दलन ही मेरा कार्य नहीं, पुत्र-वत्सल भी तो मुझे होना चाहिए। यह सोचकर मैं आपसे कहना चाहती हूँ कि मेरे हाथों इन लोगों के जीवन की आपने रक्षा कर वाली है, लेकिन फिर भी क्या ये बच पायेंगे?"

"क्यों, क्या बात होगी बहिन?"

"हमारे चले जाने के बाद नर राक्षस भी तो इस तरफ आयेगा, वह क्या इन्हें छोड़ेगा? उसे तो मनुष्यों का मांस खाने की बहुत लालसा रहती है जो उसको इस क्षेत्र के [illegible] में ही मिल पाता है।"—कालिका ने कहा।

"उसका भी कुछ उपाय होगा, किन्तु तुमने इन लोगों को अपनी तरफ से जो [illegible] दिया है उससे इनका जीवन एक बार तो बच ही गया है और ऐसा करके तुमने भी पुण्य बंध कर ही लिया है—यह सन्तोष का विषय है।"—लक्ष्मी ने कालिका के [illegible] की सराहना की।

अभय के चौकन्ने कानों में देवियों के संवाद की ध्वनियाँ गूंज रही थीं। एक [illegible] दूसरी सिर पर खड़ी हो गई। वह नर राक्षस कैसा होगा? क्या करेगा? [illegible] उसके मन-मानस में मंडराने लगी।

तभी कालिका ने लक्ष्मी से आगे कहा—"महादेवी, अभी तो नर राक्षस के अलावा एक और खतरा उनके सिर पर है।" अभय के कान और चौकन्ने हो गये।

"वह क्या, बहिन ?"

"ये लोग यदि नर राक्षस के पंजे से छूट भी जायेंगे तब भी इनकी जीवन-रक्षा कठिन ही है। रात्रि के तीसरे पहर में मणिधर सर्प भी तो आयेगा। उसके बारह जहरीले फन क्या इन्हें छोड़ेंगे ? उसके जहर से तो मनुष्य का बचना ही कठिन है। यदि ये किसी तरह मणिधर सांप से बच जांय तो फिर इनके जीवन को कोई खतरा नहीं रहेगा।"

लक्ष्मी ने सोचा कि जिन लोगों के प्रति उसके हृदय में करुणा जागी है, उनकी अन्त तक जीवन रक्षा हो सके, तभी उसकी करुणा भी सफल होगी। उसने मणिधर सर्प से बचने का उपाय कालिका से जानना चाहा, अत पूछा—"क्यों, बहिन, मणिधर सर्प से बच सकने का इनके लिए क्या उपाय हो सकता है ?"

तब कालिका ने पूरी जानकारी देनी शुरू की—"महादेवी, ऐसा है कि वह मणिधर सर्प रात्रि काल में अपना खाद्य खोजने के लिए आता है। इस कारण यहाँ आकर वह अपनी मणि को सामने के ऊँचे स्थान पर रख देता है और उसके तीव्र प्रकाश में अपना भोजन ढूंढ़ता है। भोजन की तलाश में वह दूर-दूर तक भी घूमता है क्योंकि इस अंधेरे जंगल में मणि की वजह से चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। अपनी क्षुधा शान्त करके वह वापिस लौटता है और पुनः मणि धारण करके चल पड़ता है। इस मणिधर सर्प से ये लोग अपनी जीवन-रक्षा एक ही उपाय से कर सकते हैं और वह यह है कि ज्योंही सर्प अपनी मणि उतार कर सामने वाले ऊँचे स्थान पर रखे और वहाँ से भोजन की तलाश में चल पड़े तो तुरन्त इनमें से कोई झपट कर मणि पर कब्जा कर ले और उसको पूरी तरह से ढक कर छिपा दे। उससे चारों ओर गहरा अंधेरा हो जायगा और सांप भटक जायगा तथा मणि के अभाव में चट्टान पर अपना फन पटक-पटक कर अपने प्राण दे देगा। क्योंकि वह मणि के बिना जी नहीं सकता है।"

उत्साह से भरकर तब लक्ष्मी बोली—"इस तरह तो इनके जीवन की रक्षा संभव दिखाई देती है।"

"जीवन रक्षा ही संभव नहीं है, अपितु इन में से जिसके पास मणि रहेगी, वह निश्चित रूप से सातवें ही दिन किसी राज्य का राजा बनेगा।"—कालिका ने जब यह बात सुनाई तो अभय किसी अजीब कल्पना में खो गया और उसके दिल में अपने बड़े भाई के लिए अपूर्व प्रेम जाग उठा।

लक्ष्मी ने कहा—"बहिन, यदि इनका आयु बल बड़ा हुआ और इनके पुण्य प्रभावी हुए तो न केवल उनकी जीवन रक्षा ही होगी बल्कि इनका सौभाग्य भी खुल कर खिल उठेगा।"

तभी कालिका ने लक्ष्मी से आगे कहा—"महादेवी, अभी तो नर राक्षस के अलावा एक और खतरा उनके सिर पर है।" अभय के कान और चौकन्ने हो गये।

"वह क्या, बहिन ?"

"ये लोग यदि नर राक्षस के पंजे से छूट भी जायेंगे तब भी इनकी जीवन-रक्षा कठिन ही है। रात्रि के तीसरे पहर में मणिधर सर्प भी तो आयेगा। उसके बारह जहरीले फन क्या इन्हें छोड़ेंगे ? उसके जहर से तो मनुष्य का बचना ही कठिन है। यदि ये किसी तरह मणिधर सांप से बच जांय तो फिर इनके जीवन को कोई खतरा नहीं रहेगा।"

लक्ष्मी ने सोचा कि जिन लोगों के प्रति उसके हृदय में करुणा जागी है, उनकी अन्त तक जीवन रक्षा हो सके, तभी उसकी करुणा भी सफल होगी। उसने मणिधर सर्प से बचने का उपाय कालिका से जानना चाहा, अत पूछा—"क्यों, बहिन, मणिधर सर्प से बच सकने का इनके लिए क्या उपाय हो सकता है ?"

तब कालिका ने पूरी जानकारी देनी शुरू की—"महादेवी, ऐसा है कि वह मणिधर सर्प रात्रि काल में अपना खाद्य खोजने के लिए आता है। इस कारण यहाँ आकर वह अपनी मणि को सामने के ऊँचे स्थान पर रख देता है और उसके तीव्र प्रकाश में अपना भोजन ढूंढ़ता है। भोजन की तलाश में वह दूर-दूर तक भी घूमता है क्योंकि इस अंधेरे जंगल में मणि की वजह से चारों ओर प्रकाश फैल जाता है। अपनी क्षुधा शान्त करके वह वापिस लौटता है और पुनः मणि धारण करके चल पड़ता है। इस मणिधर सर्प से ये लोग अपनी जीवन-रक्षा एक ही उपाय से कर सकते हैं और वह यह है कि ज्योंही सर्प अपनी मणि उतार कर सामने वाले ऊँचे स्थान पर रखे और वहाँ से भोजन की तलाश में चल पड़े तो तुरन्त इनमें से कोई झपट कर मणि पर कब्जा कर ले और उसको पूरी तरह से ढक कर छिपा दे। उससे चारों ओर गहरा अंधेरा हो जायगा और सांप भटक जायगा तथा मणि के अभाव में चट्टान पर अपना फन पटक-पटक कर अपने प्राण दे देगा। क्योंकि वह मणि के बिना जी नहीं सकता है।"

उत्साह से भरकर तब लक्ष्मी बोली—"इस तरह तो इनके जीवन की रक्षा संभव दिखाई देती है।"

"जीवन रक्षा ही संभव नहीं है, अपितु इन में से जिसके पास मणि रहेगी, वह निश्चित रूप से सातवें ही दिन किसी राज्य का राजा बनेगा।"—कालिका ने जब यह बात सुनाई तो अभय किसी अजीब कल्पना में खो गया और उसके दिल में अपने बड़े भाई के लिए अपूर्व प्रेम जाग उठा।

लक्ष्मी ने कहा—"बहिन, यदि इनका आयु बल बड़ा हुआ और इनके पुण्य प्रभावी हुए तो न केवल उनकी जीवन रक्षा ही होगी बल्कि इनका सौभाग्य भी खुल कर खिल उठेगा।"

कालिका ने उत्तर दिया—"परन्तु महादेवी, एक खतरा तो उठाना ही पड़ेगा । इन दोनों में से एक अपनी बलि देगा तभी मणि की मदद से दूसरा राज्य-प्राप्ति कर सकेगा ।"

"ऐसा क्यों बहिन ?"

"यह इसलिए महादेवी कि सर्प के मर जाने पर उसकी प्रतीक्षा करने वाली सर्पिणी विचलित हो उठेगी और तब वह उसकी खोज करने के लिये तत्काल इधर पहुँचेगी । यह उसकी विशेष शक्ति है कि वह अपने पति के हत्यारे और मणि के लेने वाले को तत्काल पहिचान लेती है और उसको डस लेती है । सर्पिणी की पहुँच से वह बच नहीं सकता ।"

"यदि ये लोग तत्काल यहाँ से चल दें, तब भी क्या सर्पिणी से नहीं बच पायेंगे ?"

"ये चाहें कहीं भी, कितनी भी दूरी तक चले जायें, सर्पिणी से नहीं बच सकते । लेकिन सर्पिणी उसे ही डसेगी जिसने स्वयं मणि ली होगी और जिसके ऐसा करने से सर्प की मृत्यु हुई होगी । वह दूसरे व्यक्ति को कुछ भी नहीं कहेगी - भले ही मणि उसके पास हो । क्योंकि सर्पिणी मणि वापिस लेने के लिए नहीं आती है, वह तो सर्प की हत्या का बदला लेने के लिये ही आती है ।"

"तुम्हारा बहुत-बहुत धन्यवाद बहिन कि तुमने यह विस्तारवार जानकारी दी । काश, इनमें से कोई सुन रहा हो और इसके मुताबिक काम करके अपने जीवन को बचावे और अपने भाग्य को जगावें ताकि तुम्हारा दिया हुआ अभयदान पूर्णतः सफल हो सके । कोई न कोई मार्ग निकल आवे कि सर्पिणी से भी रक्षा हो जाय । ये धार्मिक और भाग्य-शाली पुरुष लगते हैं, तभी तो तुम से ये अभयदान भी पा सके और तुम से अभयदान पा लिया है तो मैं समझती हूँ कि आगे तक भी ये निर्विघ्न रूप से चलते रहेंगे ।"—लक्ष्मी ने जैसे अपने आशीर्वाद का हाथ अमर और मान की तरफ घुमाया । फिर कालिका की ओर मुड़कर कहा—"तो बहिन अब चलें यहाँ से किसी और दिशा में भ्रमण करने ?"

"चलिये, महादेवी"—और दोनों देवियाँ अपने विमान पर चढ़कर वहाँ से चल दीं ।

× × × ×

सांसारिक आत्माओं के साथ कर्मों का बड़ा ही विचित्र खेल चलता रहता है । जिसे लोग भाग्य कहते हैं, पर भाग्य कुछ नहीं होता है । उसके नाम से पूर्व संचित कर्मों का शुभाशुभ फल ही प्रकट होता रहता है । इस जन्म से पहले के जन्म का सामान्यतया आत्मा को ज्ञान नहीं होता है, इसलिये वह नहीं जान पाती है कि पहले के जन्म में उसके द्वारा कैसे-कैसे शुभ कार्य हुए हैं और क्या-क्या अशुभ कार्य ? शुभ कार्यों से पुण्यों का बंध होता है और पाप कर्मों से अशुभ फल मिलता है । पहले के जन्म-जन्म के कर्मों का ही इस [illegible] में अच्छा-बुरा फल दृष्टिगत [illegible] है ।

अशुभता के दौर में जब शुभता का प्रभाव प्रकट होता है तो वह अमुक-आत्मा को हर खतरे से बाहर कर देता है और उसकी किस्मत को जगा देता है। शुभता के वेग में अशुभता का असर भी इसी प्रकार प्रकट होता है। कर्मों के इसी गतिचक्र को नियति का खेल इसी कारण कहते हैं।

नियति के इसी खेल के दूसरे दौर में जाने वाले थे दोनों भाई—मान और अभय। शुभता में अशुभता का असर ये देशनिकाले के दंड को भुगतते हुए देख ही रहे थे किन्तु दोनों देवियों के संवाद की ध्वनियाँ बता रही थीं कि अब दोनों भाइयों के अशुभ कर्म फल भोग में शुभता का प्रभाव प्रकट होने वाला है। कर्मों के अशुभ फल भोग के समय कोई आत्मा शान्त और सहनशील रहे—यह उसकी श्रेष्ठता का प्रतीक माना गया है, किन्तु यह भी उसकी उतनी ही श्रेष्ठता का प्रतीक है कि वह शुभ कर्मों के फल भोग के समय भी अभिमान से फूले नहीं बल्कि समभाव बनाये रखे। और इसे तो उस आत्मा की दिव्यता मानेंगे कि जो सुखों के अवसर अपने हाथ में आ जाने पर भी उन्हें दूसरों के सुख के लिए त्याग दे और वे सुख दूसरे के पल्ले बांध दे। ऐसा त्याग एवं बलिदान निस्संदेह सराहनीय होता है।

अभय सम्पूर्ण लक्ष्मी-कालिका संवाद सुनकर ऐसी ही दिव्य भावनाओं से ओत-प्रोत हो गया। उसके मस्तिष्क में विचारों की दौड़ मच गई। वह संवाद के अनुसार सक्रिय हो जाना चाहता था, किन्तु अभी एक संकट का सामना बाकी था।

मानसिंह अभी भी निश्चिन्तता से सो रहा था। न उसे वर्तमान के संकटों का भान न आने वाले भविष्य का ज्ञान। अभय जाग रहा था इस कारण जो देख-सुन रहा था उसको लेकर विचारों से जूझ रहा था तथा भविष्य की योजनाओं की रूपरेखा भी बना रहा था।

तभी जोरदार गर्जना सुनाई दी जिससे एक बार तो सारा जंगल गूंज उठा। गर्जना ऐसी भीषण थी कि सुनने वाले का दिल एक बार तो दहल ही उठे। अभय ने महसूस कर लिया कि कालिका देवी ने जिसका उल्लेख किया था, वह नर राक्षस यहाँ पहुंच गया है। उसने अपने चद्दर के छेद से जो उसकी झलक देखी तो हकीकत में वह बहुत ही डरावनी थी। किन्तु उसका मनोबल तो अपनी ऊँचाई पर था, वह शान्त और सावधान होकर प्रतीक्षा करने लगा कि अब क्या घटित होता है ?

नर राक्षस ने दूर से देखा कि आज तो सघन वृक्ष के नीचे दो मानवी शरीर मौजूद हैं—वह उनका भक्षण करेगा। वह अपने विकराल दांतों को फैलाकर अट्टहास करता हुआ दोनों भाइयों की तरफ आगे बढ़ा, तभी अचानक ठिठक कर खड़ा हो गया। वह जानता था कि उसके आने से पहले लक्ष्मी और कालिका देवियाँ हमेशा इधर आती हैं और आज भी निश्चित रूप से इधर आई ही होंगी—फिर ये दोनों व्यक्ति जीवित कैसे छोड़ दिये गये ?

कालिका देवी कभी भी ऐसा नहीं करती कि उसकी आज्ञा उल्लंघन वाले को छोड़ दे—यदि आज कालिका ने इन्हें छोड़ दिया है तो अवश्य ही कोई न कोई खास कारण रहा होगा। वह कारण इसके सिवाय क्या हो सकता है कि ये किसी विशिष्ट शक्ति के धारक पुरुष होंगे जिनका वध कालिका नहीं कर पाई है तो मैं इन पर हाथ कैसे डाल सकता हूँ? मैं तो कालिका से कई गुना कम शक्तिशाली हूँ। मुझे इनसे दूर हो जाना चाहिए। अच्छा है कि ये अभी सो रहे हैं—कहीं जाग न जांय वरना मेरी दुर्दशा हो सकती है। वह एक दम वहाँ से मुड़ गया और दूर चला गया।

इस प्रकार एक और संकट टल गया और अभय को निश्चिन्तता मिली। तब वह आगामी संकट का सामना करने के लिए तैयार होने लगा।

११

कहते हैं कि आपत्ति कभी अकेली नहीं आती। सुख तो बहुत होता है या नहीं, लेकिन दु:खों का पहाड़ टूट पड़ने की ही कहावत मशहूर है। आपत्ति पर आपत्तियाँ आती रहती हैं मानो वे मनुष्य के धैर्य और साहस की परीक्षा लेना चाहती हैं। आपत्तियों को आग मान लें और मनुष्य को धातु तो जो ऐसी वैसी धातु होगी, वह धधकती हुई आग में जल जायगी या गल जायगी अथवा काली पड़ कर अपनी कान्ति को खो देगी। परन्तु एक धातु है सोना। सोना जब धधकती हुई आग में डाला जाता है तो वह उस आग के ताप को सहकर अपना अस्तित्व तो बनाये रखता ही है, बल्कि आग के बढ़ते हुए ताप के साथ सोने की कान्ति भी प्रखर बनती जाती है। उसकी सारी अशुद्धता समाप्त हो जाती है और वह निखर कर कुन्दन बन जाता है—सोने से कई गुना मूल्यवान। इसलिये कहा जाता है कि आग के ताप को सोना ही सह सकता है और सहकर अपनी स्वरूप-शुद्धि कर लेता है।

उसी प्रकार आपत्तियों की उपस्थिति में सोने जैसे सद्गुण और चरित्र को धारण करने वाला पुरुष न केवल अपने अद्भुत धैर्य और सत्-साहस का परिचय देता है बल्कि उन आपत्तियों की आग में अपने को भली-भांति तपाते हुए अपने जीवन को निखार कर समुज्ज्वल भी बना लेता है। सोने के समान ही अभयसिंह का जीवन सद्गुणी और सच्चरित्र था और अब आपत्तियों की आग में वह अधिकाधिक निखरता भी जा रहा था। अभयसिंह के सिर पर जब आपत्तियाँ नहीं थीं, बल्कि अधिकाधिक सुखों का संसार सामने था तब भी उसने आदर्श भ्रातृप्रेम के कारण देश निकाले का दंड स्वीकार किया और स्वेच्छा से वन के कठिन कष्टों का वरण किया। किन्तु अब जब आपत्ति पर आपत्ति सामने आ रही थी, तब भी वह आकुल-व्याकुल नहीं हुआ अपितु अधिक आत्म-बल का धनी बन कर अपने बड़े भाई के लिये सर्वस्व निछावर कर देने की तैयारी करने लगा। सोने से इस प्रकार वह कुन्दन बनता जा रहा था।

आधी रात बीत चुकी थी। लक्ष्मी की कृपा से कालिमा का संकट टला, फिर नर राक्षस का संकट भी टल गया। वह जानता था कि उसे लक्ष्मी की कृपा क्यों कर प्राप्त हो गई? लक्ष्मी का हृदय करुणा से परिपूरित करने वाली शक्ति थी महामन्त्र की शक्ति, जो

कहते हैं कि आपत्ति कभी अकेली नहीं आती
लेकिन दुःखों का पहाड़ टूट पड़ने की ही कहावत मश
रहती हैं मानो वे मनुष्य के धैर्य और साहस की परी
आग मान लें और मनुष्य को धातु तो जो ऐसी वै
में जल जायगी या गल जायगी अथवा काली पड़
एक धातु है सोना। सोना जब धधकती हुई आग
ताप को सहकर अपना अस्तित्व तो बनाये रखता ही
साथ सोने की कान्ति भी प्रखर बनती जाती है। उ
है और वह निखर कर कुन्दन बन जाता है—सोने
जाता है कि आग के ताप को सोना ही सह सकता
लेता है।

उसी प्रकार आपत्तियों की उपस्थिति में स
करने वाला पुरुष न केवल अपने अद्भुत धैर्य और
उन आपत्तियों की आग में अपने को भली-भांति त
समुज्ज्वल भी बना लेता है। सोने के समान
सच्चरित्र था और अब आपत्तियों की आग में वह
अभयसिंह के सिर पर जब आपत्तियाँ नहीं थीं, ब
था तब भी उसने आदर्श भ्रातृप्रेम के कारण देश
स्वेच्छा से वन के कठिन कष्टों का वरण किया
सामने आ रही थी, तब भी वह आकुल-व्याकुल
धनी बन कर अपने बड़े भाई के लिये सर्वस्व निछा
सोने से इस प्रकार वह कुन्दन बनता जा रहा था।

आधी रात बीत चुकी थी। लक्ष्मी की कृपा
राक्षस का संकट भी टल गया। वह जानता था कि
गई ? लक्ष्मी का हृदय करुणा से परिपूरित करने

उसी प्रकाश की चाल पर लग गई। वही प्रकाश धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ सामने वाले ऊँचे स्थान तक पहुँच गया। उस ऊँचे स्थान पर एक सूखा हुआ वृक्ष था—पतला और सीधा उसका डंठल था। सर्प सीधा उस पर चढ़ गया और उसने उस वृक्ष के एक सुरक्षित साफ स्थान पर अपनी मणि उतार कर रखदी।

मणि के वहाँ रखते ही दूर-दूर तक जंगल में तीव्र प्रकाश फैल गया। चारों ओर के अंधेरे में वह प्रकाश अद्भुत दिखाई दे रहा था जैसे कि प्रकाश का वहता हुआ झरना हो। अभय अपनी आश्चर्यमिश्रित दृष्टि से कई पलों तक उस अनूठे प्रकाश को ही देखता रह गया। ज्योंही उसे ध्यान आया सर्प का, वह यकायक चौंक सा पड़ा। इतना विशाल और भयंकर विषधर—उसने जीवन में पहली बार देखा था। मणि के प्रकाश में उसका कृष्ण रूप चमक उठा था। उसी प्रकाश में सर्प चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहा था कि उसे अपना भोजन कहाँ मिलेगा ? अभय की सुरक्षात्मक स्थिति थी कि बीच में एक दूसरा वृक्ष आ जाने से वे दोनों भाई सर्प की सीधी दृष्टि में नहीं थे। अव अभय तैयार हो गया कि ज्योंहि सर्प वहां से खिसके और दूर चला जाय तब वह उस ठूंठ पेड़ की तरफ भागे। मन ही मन वह उस पेड़ की ऊँचाई नापने लगा और ऊपर चढ़ कर मणि पर कब्जा कर लेने की बात सोचने लगा।

सर्प धीरे-धीरे वृक्ष से नीचे उतरा और अपने दृष्टि-अनुमान के अनुसार एक दिशा में आगे बढ़ने लगा। चलते-चलते एक क्षण के लिये वह रुका और फन उस दिशा की ओर मोड़ने लगा जिस दिशा में अभय खड़ा था और मानसिंह सोया हुआ था तो अभय चौंक पड़ा कि कहीं वह उस दिशा में मुड़ गया तो दोनों भाइयों की मृत्यु निश्चित है। वह किसी भी दशा में उन्हें जीवित नहीं छोड़ेगा। उसे तो अपना भोजन चाहिये था और उसे वह एक ही स्थान पर मिल रहा था। अभय का एक बार तो रोम-रोम खड़ा हो गया और वह महामंत्र का जाप जल्दी-जल्दी करने लगा। अभय को अपनी चिन्ता से भी अधिक बड़े भाई की चिन्ता जाग उठी। इस भीषण विषधर का सामना करना भी किसी तरह सम्भव नहीं दीख रहा था। उसकी फुफकार और दृष्टि से विष बरसता जा रहा था। सर्प के इस दिशा में आगे बढ़ते रहने पर उसके विष की चपेट में आ जाना निश्चित सा लगने लगा। पूरे आत्म-बल के बावजूद भी अभय के पैर कांपने लगे। वह मानसिंह के लिये गम्भीर रूप से चिन्तित हो उठा। सहसा उसका चिन्तन मुड़ा, विचार करने लगा धैर्य एवं साहस के साथ किया गया कार्य अवश्य सफल होता है, इसलिए धैर्य और साहस के साथ दृढ़तापूर्वक महामंत्र में उसने अपना ध्यान गहराई से लगा दिया।

तभी एक चमत्कार हुआ। विपरीत दिशा से किसी जंगली जीव के कूदने की आवाज आई और उसके साथ ही सर्प एकदम पलट कर उल्टा चलने लगा। और अभय का संकट दूसरी दिशा में मुड़ गया। अब उसका मनोबल बढ़ गया। सांप आगे-आगे बढ़ता रहा और अभय धीरे-धीरे उस ठूंठ पेड़ की तरफ सरकता रहा। उसका साहस पुनः जागृत हो उठा था। उसके पांव मजबूती से आगे बढ़ने लगे। सर्प काफी दूर चला गया तब वह

अभय की देह भी निष्चेष्ट सी होने लगी। वह धम्म से वहीं पर नीचे बैठ गया। रात का तीसरा पहर बीत रहा था और उसे लगने लगा जैसे उसकी देह का सारा बल भी बीतता जा रहा हो। यह एकदम क्या होने लगा? उसको यकायक इतनी दुर्बलता का अनुभव क्यों हो रहा है? क्या एक प्राणी की हत्या से उसकी आत्मा हिल उठी है? और क्या विचारों के इसी आन्दोलन से उसकी देह भी दुर्बल होती जा रही है? मणि तो जड़ पदार्थ है और एक जड़ पदार्थ के लिये उसके हाथों एक चेतन की हत्या हो गई है? हत्या उसने तो नहीं की, किन्तु उसका निमित्त तो वही कहलायगा। यह उसने क्या कर दिया, क्यों कर दिया? यह दूसरी बात है कि एक विशालकाय विषधर के मारक विष से सारे वन्य जीव जन्तु मुक्त हो गये हैं किन्तु उसकी हत्या का पाप तो उसके ही सिर पर रहेगा? अकेले उसके सिर पर, क्योंकि भाई साहब उस पाप के भागीदार थोड़े ही हो सकते हैं?

सम्पत्ति के प्रति—पदार्थों के प्रति मनुष्य के मन में रहा हुआ जो मोह या ममत्व होता है अथवा मूर्छा या संज्ञाहीनता होती है, वही असल में परिग्रह है। क्योंकि हकीकत में सत्ता और सम्पत्ति किसी के पास हो लेकिन उसकी उसमें मूर्छा न हो तो उसे परिग्रही कहना उचित नहीं समझा गया है। इसके विपरीत सत्ता-सम्पत्ति या पदार्थ पास में न हो परन्तु उनको पा लेने की तीव्र मोह-दशा चल रही हो तो वैसे व्यक्ति को परिग्रही ही नहीं, घोर परिग्रही भी कह सकते हैं।

यह तो सत्ता या सम्पत्ति याने परिग्रह के प्रति मोह अथवा निर्मोह दशा की बात हुई, किन्तु जो व्यक्ति इससे भी ऊपर उठकर त्याग-भाव तक पँहुच जाता है, उसको तो यह मानिये कि वह मनुष्यत्व से भी ऊपर उठकर देवत्व की गरिमा-मय उच्चता की ओर गति कर रहा है। अभयसिंह के समक्ष अवसर प्रस्तुत होते हुए भी मन में सत्ता और सम्पत्ति के प्रति मोह-दशा नहीं जागी और वह उनके प्रति निर्मोही बना रहा—यह तो एक बात, लेकिन उनके प्रति विरागी होकर परिग्रह का त्याग करदे और उसे अपने अग्रज को समर्पित कर देने का संकल्प बनाले—यह उसके भावनात्मक गौरव की ही बात कही जायगी। इस संकल्य के संदर्भ में अभयसिंह के आत्मिक विकास का ही अनुमान लगाया जा सकता था, जो उसने अपनी वैचारिक गूढ़ता तथा चारित्रिक शुद्धता से सम्पादित किया था।

रात्रि का तब चौथा प्रहर प्रारम्भ होने वाला था और नाग का अन्त हुए भी दो घड़ी बीत चुकी थी। नागिन का खतरा सिर पर मंडराने लगा था। इसलिये अभय ने सोचा कि जो कुछ भी करना है, जल्दी ही सम्पन्न कर लेना चाहिये। जब उसने नागमणि अपने ज्येष्ठ भ्राता को अर्पित कर देने का संकल्प बना लिया, तब उसके मन में नागमणि को लेकर कोई दुविधा नहीं बची थी। दुविधा पैदा हुई तो कार्यविधि पर कि वह उसे किस तरह अर्पित करे ताकि भाई साहब उसे निःसंकोच ग्रहण करलें। ऐसा न हो कि वे आग्रह करने के चक्कर में पड़ जांय और विलम्ब करते रहें क्योंकि उसमें यह स्थिति पैदा हो सकती है कि खतरा एक कि बजाय दोनों को निगल जाय। अतः कार्य इस प्रकार सम्पन्न हो कि यह स्थिति ही पैदा न हो सके।

समय थोड़ा रह गया था, इस कारण अभय अधीरतापूर्वक कार्यविधि पर विचार करने लगा। मानसिंह अभी भी बेफिक्री से सोया हुआ था। अगर अभय उसे जगादे तो आग्रह और संकोच वाली स्थिति से विलम्ब की आशंका थी, तथा विलम्ब से खतरे की। अगर उन्हें नहीं जगावे तो वे कैसे समझेंगे कि यह काँच का टुकड़ा क्या है और उसका कैसा अद्भुत प्रभाव उनके हित में प्रकट होने वाला है? बड़ा टेढ़ा सवाल सामने खड़ा हो गया। और यह भी टेढ़ा सवाल ही था कि वह स्वयं क्या करे? वहीं ठहरा रहे या अन्यत्र चला जावे। उसका मस्तिष्क इन गुत्थियों को सुलझाने में लग गया।

त्याग से अभिभूत जब कोई सत्पुरुष सत्संकल्प धारण करता है तो वह प्रत्येक प्रकार से उस त्याग की सफलता का यत्न भी करता है। त्याग भावना भी आई और वह विफल हो जाय-ऐसा त्यागी पुरुष कभी नहीं होने देता है। अभय भी दृढ़ प्रतिज्ञ था कि उसका नागमणि का त्याग भाई साहब के हित में पूर्णतया सफल भी होना चाहिये। अतः

अभय चादर ओढ़कर सोया हुआ है तो उसने सोचा कि वह रात भर उसकी रक्षा में जागता रहा होगा अतः उसे सोने दिया जाय। यह सोचकर वह शारीरिक चिन्ताओं से निवृत्त होने के लिये चला गया। वापिस आने पर भी जब उसने अभय को सोते हुए ही पाया तो उसने अभय को आवाज लगाई—"भैया अब तो उठो, सूर्योदय हो गया है ताकि इस खतरे भरे वन क्षेत्र से बाहर निकल जावें।" फिर भी अभय न बोला न हिला तो वह आशंकित हो उठा। उसने अभय को हाथ पकड़ कर उठाने की चेष्टा की। इस पर जैसे हिलाया उसी तरह उसका शरीर इधर-उधर लुढ़का तो वह दंग रह गया कि अभय अचेतन सा कैसे हैं? तब उसने चादर हटाई और यह देखकर तो वह रो ही पड़ा कि उसका पूरा शरीर नीला हुआ पड़ा है। उसने अनुमान लगाया कि यहाँ पर अवश्य किसी जहरीले जन्तु ने उसे डस लिया है और इसी कारण अभय अपनी चेतना खो बैठा है।

मानसिंह हतप्रभ सा खड़ा और सोचता रहा कि इस समय उसके भाई पर जो यह संकट आया है, उसे दूर करने के लिये वह क्या करे? उसका भाई तो उसका रक्षा कवच रहा है, वह तो उसकी सुरक्षा में निश्चिन्त था। अब भाई का उसे उपचार करना है लेकिन वह तो कुछ जानता ही नहीं है। सोचते-सोचते उसका अनुताप बढ़ता गया और उसका शरीर शिथिल होने लगा। उसे पता ही नहीं चला कि इस घोर दुःख में वह कब मूर्छित होकर गिर पड़ा?

वन में दोनो भाई मूर्छित पड़े थे लेकिन विडम्बना यह थी कि ऐसे संकट के समय में उन्हें देखने वाला तक वहाँ कोई नहीं था। किन्तु प्रकृति सबको देखती है और उस समय की प्रातःकालीन प्राण वायु ने ही मानसिंह की मूर्छा दूर की। वह ज्योंही उठा तो भाई के दुःख ने फिर उसके मन मानस को घेर लिया। वह भाई के शरीर से लिपट कर विलाप करने लगा। आज वह भाई यों असहाय पड़ा है जिसने उसकी सदा सहायता की। उसके लिये राज सुख छोड़े और निरन्तर उसकी रक्षा करता रहा। वही आज रक्षा की मांग कर रहा है। किन्तु उसका बड़ा भाई होकर भी वह समझ नहीं पा रहा है कि उसके जीवन को बचाने के लिये वह कैसा प्रयास करे?

तभी मानसिंह की दृष्टि अचानक सामने बिछी चादर पर पड़ी जिस पर अभय ने अपने रक्ताक्षरों में भाई साहब के नाम पर पत्र लिखा था। उसने पत्र को एक बार-दो बार पढ़ा और सोचा कि उसके भाई ने उसे यहाँ से शीघ्र चल देने का निर्देश क्यों दिया है? वह जानता था कि उसका भाई अभय बहुत ही विचारवान तथा विवेकवान है और उसने कुछ गहरा सोच समझ कर ही उसके लिये ऐसा निर्देश दिया होगा। उसकी आँखों के सामने पत्र का अन्तिम भाग पुनः उभर उठा। वह नहीं चाहता था कि अपने प्राणप्यारे भाई को उस अवस्था में छोड़कर वह वहाँ से चला जावे।

मानसिंह के मन की दुविधा उलझन भरी बन गई। वह जाना नहीं चाहता था किन्तु समझदार छोटे भाई का स्पष्ट संकेत उसके सामने था तब उसने यही सोचा कि छोटे भाई के बुद्धिमानी के निर्देश को ही उसे मान लेना चाहिये। इसलिये बड़े ही भारी मन से वह उठा और उस वन क्षेत्र से बाहर निकल जाने के लिये वहाँ से चल पड़ा। प्रस्थान तो उसने कर दिया लेकिन मन वहीं अड़ा हुआ था। आगे चलते-चलते भी वह बारम्बार पीछे देखता हुआ बढ़ रहा था। ☐

१३

उधर जब तीसरे पहर की समाप्ति तक भी नाग अपने स्थान पर नहीं लौटा तो नागिन चिन्ता में डूब गई। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ था कि नाग अपने रात्रि-भ्रमण से विलम्ब करके भी लौटा हो। सदा ही वह स्वयं भोजन से तृप्त होकर आता था तो नागिन के लिये भी खाद्य लेकर लौटता था। आज तो हमेशा के समय से भी अधिक देरी हो गई है। क्या बात हो गई? नागिन प्रतीक्षा करते-करते व्याकुल हो उठी। यह उसे मालूम था कि उसका स्वामी किन-किन दिशाओं में खाद्य की तलाश में जाया करता था अतः उन-उन दिशाओं की तरफ वह दूर-दूर तक अपनी दृष्टि दौड़ाने लगी। किन्तु किसी भी तरफ से नाग लौटता हुआ उसे नहीं दिखाई दिया।

अपने आत्मीय के लिये अनिष्ट की आशंका सबसे पहले होती है। नागिन को यही खयाल आया कि कहीं उसके स्वामी खतरे में फंस गये हैं. वरना वे देरी कभी नहीं करते। उनके जीवन में अवश्य ही कोई आपत्ति आगई होगी, किन्तु कोई उन्हें पकड़ले या मार दे, ऐसी आशंका उसके मन में नहीं उठी क्योंकि इस वन क्षेत्र में कोई ऐसा शक्तिशाली प्राणी नहीं है जो उनसे टकरा सके। साधारण रूप से कोई मनुष्य इधर आता ही नहीं और आ भी जाय तो सरोवर का शिलालेख पढ़कर उल्टे पांव लौट जाता है। उसके स्वामी की मणि पर भी कोई हाथ डाल सके—यह संभावना भी उसे नहीं दिखी। उसके स्वामी के बल और विष से तो सारा वन क्षेत्र कम्पायमान होता रहता था।

तो फिर उसके स्वामी अभी तक भी आये क्यों नहीं? इस प्रश्न का कोई हल उसकी समझ में नहीं आ रहा था। सोचते-सोचते जब वह बुरी तरह घबरा उठी तो वहां से वह नागिन चल पड़ी। वह जानती थी कि नाग सबसे पहले उस सघन वृक्ष के पास वाले ऊँचे स्थान पर ही हमेशा जाया करता था और वहां एक ठूंठ पेड़ के ऊपर अपनी मणि रखकर उसके प्रकाश में भोजन की तलाश में इधर-उधर घूमा करता था। इस कारण वह सघन वृक्ष की दिशा में ही आगे बढ़ने लगी। फूं फां करती हुई और तेज चाल से सरसराती हुई जब वह ऊँचे स्थान पर पँहुची तो यह देखकर दंग रह गई कि उसी के स्वामी वहां मरे पड़े हैं और चट्टान पर चारों तरफ उनका लहू बिखर रहा है। विक्षोभ और शोक से वह नाग की क्षत-विक्षत देह को देखती ही रही और सोचती रही कि यह अनर्थ कैसे हो गया? किसी के द्वारा उसके स्वामी मारे गये हों ऐसे लक्षण नहीं दिखाई

दे रहे थे। यही समझ में आ रहा था कि नाग ने खुद ही अपना फन पटक-पटक कर आत्म हत्या करली है।

तभी नागिन का ध्यान अपने पति के मस्तक की तरफ गया, जहाँ से उनकी मणि गायब थी। यह देखने के बाद नागिन को यह समझने में देर नहीं लगी कि अवश्य किसी ने नागमणि हथियाली है। मणि शायद तब ली गई है जबकि नाग यहाँ मौजूद नहीं था और मणि के अभाव में ही शायद उसके स्वामी ने अपने प्राण त्याग दिये हैं। मणिधर सर्प मणिहीन होकर जिन्दा नहीं रह सकता है। तो कौन है वह जिसने उसके स्वामी की मणि चुराई है और उसके स्वामी की मृत्यु का कारण बना है? अब नागिन का क्रोध तेजी से बढ़ने लगा। छल बल से उसके पति को मारने वाले को वह जीवित नहीं छोड़ेगी। पति की मृत देह के पास कुछ देर शान्त पड़ी रह कर नागिन ने उसी चट्टान पर अपना फन खड़ा किया और चारों तरफ वह क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगी कि अपने पति के हत्यारे को ढूंढकर उसे अपनी विषाक्त डाढ़ों के नीचे दबाकर अपने पति की मृत्यु का बदला ले।

अपने फन को तेजी से इधर-उधर घुमाती और फुफकारें मारती हुई नागिन सघन वृक्ष तक पँहुची। वहाँ उसने देखा कि दो मानवी सोये हुए हैं। उसको यह शक्ति प्राप्त थी कि वह अपने स्वामी के हत्यारे को हजारों मनुष्यों के मध्य भी पहिचान ले। लेकिन मानसिंह और अभयसिंह की आकृतियों को देख लेने के बाद भी वह असमंजस में खड़ी रही। वह निश्चय नहीं कर सकी कि इनमें कौन सा व्यक्ति उसके स्वामी का हत्यारा है?

नागिन के इस अनिश्चय का एक कारण भी था। नाग से मणि प्राप्त करने की कोशिश करने वाले लोग अक्सर करके एक उपाय से नाग की स्वयं हत्या किया करते थे। मणि एक स्थान पर रखकर नाग उसके प्रकाश में अपने भोजन की तलाश करने के लिये जब दूर तक चला जाया करता था, तब मणि प्राप्त करने की इच्छा वाले लोग यकायक मणि पर नीचे लोह के तीखे भाले लगी हुई तगारी को डाल कर उसे ढक दिया करते थे। अंधेरा होते ही जब नाग उस स्थान पर पहुँचता, जहाँ उसने मणि रखी थी तो क्रुद्ध होकर उस तगारी पर अपने फन फटकारा करता। तब तीखे भालों पर बार बार फन लगने से वह फट जाता और नाग की मौत हो जाती। तब तगारी के नीचे से मणि निकाल कर वे लोग लेकर चले जाते।

किन्तु यहाँ तो अभय ने देवी के वचनों के अनुसार कार्य किया था, जिसमें नाग की हत्या सीधे तौर पर अभय के हाथों नहीं हुई थी। नाग खुद ही चट्टान पर अपने फन पटक-पटक कर मरा था। इस कारण दोनों की मुखाकृतियों पर नाग की मृत्यु की छाया नागिन को स्पष्ट नहीं दिखाई दी। उसके असमंजस का यही कारण था। बहुत देर तक वह नागिन उस सोई हुई मुखाकृतियों को एकटक देखती ही रही।

अभय भी अपनी बंद आँखों की कोरों से नागिन को देख रहा था। वह भी असमंजस में घिरा हुआ था कि यह नागिन दूर खड़ी ही उसे क्यों देख रही है? देवियों के वचन के अनुसार तो यह उसे पहिचान गई होगी और अब तक तो उसे उस पर आक्रमण कर देना था। कहीं कुछ न कुछ शंका का मामला जरूर पैदा होगया लगता है। फिर भी

वह मृत्यु से बच जाय– उसके मन में ऐसी आशा पैदा नहीं हुई, अतः वह मृत्यु का वरण करने के लिये तैयार होगया और मन ही मन महामंत्र का एकाग्रता से पाठ करने लगा।

नागिन की पहिचान शक्ति अनोखी थी। वह नागिन पहले मानसिंह की तरफ मुड़ी और उसके वक्ष पर चढ़ी। उसे कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया कि उस व्यक्ति ने नाग की हत्या की हो। तब एकटक अभय की ओर देखते–देखते जैसे उसे अस्पष्ट सा समझ में आने लगा कि उसके स्वामी की मृत्यु का निमित्त रूप व्यक्ति यही है। किन्तु इस अस्पष्टता के कारण नागिन का क्रोध भी उतना उग्र नहीं रहा था जैसा कि स्पष्ट पहिचान में वह उभर कर उबल उठता था। अपने भीतर कुछ-कुछ विश्वास पकड़ कर नागिन धीरे-धीरे सरकती हुई अभय के सीने पर चढ़ गई और अपना फन उठा कर खड़ी होगई कि वह उसे डसे या नहीं और डसे तो क्या पूरी पहिचान स्पष्ट हो जाने पर डसे या इसी समय डस ले ?

अभय सोया हुआ था विषाक्त डाढ़ों के नीचे, जो किसी भी समय उसको डस कर उसके जीवन को समाप्त कर सकती थी। नागिन की विषाक्त डाढ़ों के नीचे यों कहें कि अभयसिंह नहीं, मात्र उसका शरीर था जिसके प्रति वह अपना ममत्व छोड़ चुका था। उसका मन, उसकी बुद्धि और उसका आत्म–स्वरूप तो जैसे स्वतंत्रता का आनन्द उठा रहा था कि शरीर के बंधन से छूटते ही उसे निर्मलता का वातावरण प्राप्त हो जायगा। यह अवस्था अभय की समाधि की अवस्था थी, जो उसने इच्छापूर्वक धारण की थी। वह उसी समाधि में निजत्व की खोज कर रहा था और आन्तरिक शान्ति का आनन्द उठा रहा था।

श्वास की गति और शरीर की प्रक्रिया से भी नागिन ने जांच की और जब उसे विश्वास हो गया कि उसके स्वामी की हत्या इसी व्यक्ति के निमित्त से हुई है उसने अभय के पैर के अंगूठे को डसा और अपना प्रतिशोध पूरा करके वहां से चलदी। धीरे-धीरे अभय उसके विष से संज्ञाहीन हो गया।

□□

१४

दीपक जब बुझने को होता है तो एक बार पहले उसकी लौ तेज होती है और तदनुसार बसन्तपुर के नरेश अपने कठिन रोग की अचेतनावस्था से कुछ-कुछ जागे और उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। चारों ओर उनके प्रधान, मंत्रीगण, सेनापति, नगर श्रेष्ठि आदि प्रमुख अधिकारी व गण्यमान्य नागरिक उदास मुख लिये खड़े थे। अपने महाराजा की आँखें खुलने से जैसे इन सबके चेहरों पर प्रसन्नता की एक झलक सी दिखाई दी। वे पिछले कई दिनों से वेहोश जो थे।

नरेश ने आँखें खोलीं और एक नजर चारों ओर घुमाई। नजर से ऐसा लग रहा था कि उनके मन में बहुत कुछ उमड़-घुमड़ रहा हो। अन्तिम समय में उनकी इस प्रकार की मानसिकता का भी विशेष कारण था। उनके कोई सन्तान नहीं थी, अतः राज्य का कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी भी नहीं था। उन्होंने अपने राज्य की जीवन भर एकनिष्ठा से सेवा की थी। वे प्रजा को अपनी सन्तान की तरह ही चाहते थे और उसके सुख-दुःख से सुखी और दुःखी होते थे। इस समय में भी उनके चेहरे पर यही चिन्ता बिखरी पड़ी थी कि उनके देहावसान के बाद उनके समुन्नत राज्य का क्या होगा? उनकी प्यारी प्रजा का क्या होगा?

अपनी क्षीण होती हुई दृष्टि से नरेश ने एक-एक चेहरे को पहिचानने की कोशिश की। सभी लोगों को उन्होंने मन-ही-मन पहिचाना। किन्तु वे जानते थे कि उन में से प्रशासन व सेना के कई लोग भीतर ही भीतर सत्ता की भूख लिये हुए थे। इस समय भी उनके चेहरों पर यही भाव लक्षित होता था कि कब नरेश आखिरी सांस लें और कब वे लोहा से लोहा बजाकर सत्ता हस्तगत करने का सफल प्रयास करें। नरेश उनकी इस मनोवृत्ति से अधिक दुःख महसूस कर रहे थे। उन्होंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—

"मैं अब शायद चन्द पलों का ही मेहमान हूँ किन्तु इस समय में भी मेरे मन में राज्य के भविष्य को लेकर ही संकल्प–विकल्प चल रहे हैं। आप जानते हैं कि जीवन भर मैंने अपने एक-एक प्रजा जन को सुखी बनाने के लिये कठिन प्रयत्न किये हैं और मैं चाहता हूँ कि भविष्य में भी यही राज्य-परम्परा चलती रहे—राजा सबसे पहले अपनी प्रजा का ध्यान रखे।...........

"यह भी आप जानते हैं कि आज राज्य का कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी नहीं है और हो सकता है कि इस कारण किसी भी रूप में सत्ता का द्वन्द्व खड़ा हो, किन्तु मेरी अन्तिम इच्छा है कि कोई भी सत्ता के लिये द्वन्द्व खड़ा न करे। सभी अपने-अपने वर्तमान पदों व उत्तरदायित्वों पर यथावत् कार्य करते रहें, ताकि एकता एवं राज्यहित की वर्तमान लगन बनी रहे।..........

"नये राजा के लिये यह पद्धति काम में लाई जाय कि मेरे देहावसान के बाद श्वेता हथिनी को पुष्पमाल देकर घुमाई जाय और वह अपनी प्रकृति-प्रेरणा से जिस किसी भी व्यक्ति के गले में पुष्पमाल डाल दे, उसे ही सिंहासनासीन कर दिया जाय ताकि वैसा राजा आप सभी की एकता से नियंत्रित भी रहेगा और सभी के एकजुट सहयोग से राज्य का भविष्य सुखद एवं सुन्दर बन सकेगा।.........."

नरेश का एक-एक शब्द दर्द में डूबकर निकल रहा था जो एक सुयोग्य एवं प्रजा-हितैषी राजा का दर्द था। नरेश अपने कथन का समुचित प्रभाव सभी के चेहरों पर पड़ते हुए कुछ-कुछ सन्तुष्ट हुए, फिर भी उतने आश्वस्त नहीं हुए, क्योंकि किसी प्रमुख पदाधिकारी ने उनकी आज्ञा का यथारूप पालन करने का कोई विश्वास नहीं दिलाया।

समय बहुत थोड़ा था—दीपक बुझने को आ रहा था, अतः नरेश ने नगर श्रेष्ठि की ओर अपनी वह दृष्टि दौड़ाई। उन्हें उन पर अपार विश्वास था, क्योंकि श्रेष्ठि एक अत्यन्त ही सज्जन, नीतिवान तथा प्राभाविक पुरुष थे। वे सोचते थे कि राज्य के लिये कोई विवाद भी हुआ तो श्रेष्ठि निर्णायक भूमिका निभा सकेंगे। आँखों ही आँखों जैसे नरेश ने श्रेष्ठि को उनके निकट आने का संकेत किया। जब वे पास में आ गये तो बड़ी कठिनाई से नरेश के ये शब्द निकले—

"श्रेष्ठिवर, आप प्रजा के परम हितैषी रहे हैं। इस कारण मैं आपका आश्वासन लेकर आप सबसे विदा लेना चाहता हूँ कि मेरे बाद आप राज्य सत्ता सम्बन्धी किसी भी विवाद को शान्त करके प्रजाजन का किसी भी रूप में कोई अहित नहीं होने देंगे.........."

नरेश ने सेठ की आँसू बहाती आँखों में झांका। रुंधे हुए गले से सेठ ने कहा—"राजन्, यह कार्य बहुत कठिन है, फिर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा सम्पूर्ण प्रभाव से यदि कोई ऐसा विवाद खड़ा हुआ तो उसे शान्त करूँगा तथा नागरिकों का किसी के भी हाथों किसी भी रूप में कोई अहित नहीं होने दूँगा।"

"मैं सन्तुष्ट हूँ श्रेष्ठिवर आपके इस आश्वासन से और अब मैं सुख से मर सकूँगा........" कहते हुए नरेश ने अपने नेत्र मूँद लिये मानों वे आत्म-चिन्तन में निमग्न हो गये हों। उनकी शान्त मुद्रा को सभी एकटक निहारते रहे जिस पर विशुद्ध भावों की

निश्चलता इस तरह अंकित हो गई कि किसी को यह भान तक नहीं हुआ कि प्राण पखेरू कब उड़ गया है ? वैद्यराजजी द्वारा नाड़ी परीक्षा के बाद ही यह तथ्य सभी को ज्ञात हो सका, वरन् नरेश की मुख मुद्रा इतनी आभायुक्त और जीवन्त दिखाई दे रही थी जैसे वे अभी कुछ बोलने ही वाले हों।

सभी उपस्थितों ने श्रद्धाभाव से अपने सिर नीतिमान नरेश के सम्मान में झुका दिये और मखमली चादर से उनका मृत शरीर ढक दिया।

यह राज परम्परा होती थी कि जब तक नये राजा का सिंहासनारोहण न हो जाय, मृत राजा का अन्तिम संस्कार नहीं किया जाता था। इसका सिद्धान्त यह था कि राज्य-सिंहासन कभी खाली न रहे—बिना राजा के न रहे। यह सुव्यवस्था का सिद्धान्त था। बसन्तपुर में भी उस समय इस परम्परा के पालन करने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ।

इस प्रश्न का शान्तिपूर्ण समाधान दिवंगत नरेश बता गए थे और उस समाधान के शान्तिपूर्ण क्रियान्वयन का आश्वासन भी वे नगर श्रेष्ठि से ले गये थे अतः नगर सेठ ने अपना पहला कर्त्तव्य समझा कि वे सबको नरेश के सुझाव पर सहमत करें। उन्होंने तब वहाँ उपस्थित सभी मान्य सज्जनों से पास के कक्ष में चलकर विचार-विमर्श करने का नम्र निवेदन किया। वे इतने लोकप्रिय थे कि उन के इस निवेदन को किसी ने नहीं टाला और सभी चाहे वे मृत नरेश के सुझाव से सहमत थे या नहीं, पास के कक्ष में एकत्रित हो गये।

सबके यथास्थान बैठ जाने पर उन लोगों ने जो सिंहासन पाने के महत्त्वाकांक्षी थे, अपने-अपने दावे रखे। कोई वंश परम्परा से तो कोई राज्य की दीर्घ व कुशल सेवा के कारण अथवा कोई सेना की पिछली जीतों के आधार पर निःसन्तान राजा के सिंहासन को प्राप्त करना चाहता था। सबको सुन लेने के बाद नगर श्रेष्ठि ने एक ही बात पूछी कि वे अपने स्वार्थ साधने के लिये राज्य सिंहासन चाहते हैं अथवा नागरिकों की भलाई के लिये ? कोई नहीं बोला कि नागरिकों की भलाई उसका उद्देश्य नहीं है। तब नगर सेठ ने समझाया कि इतने दावेदारों में से जिस किसी के लिये सिंहासनारोहण का निश्चय किया जायगा बचे हुए सभी दावेदार उसके घोर शत्रु हो जायेंगे। राज्य तब पारस्परिक कलह तथा संघर्ष में इतना उलझ जायगा कि इसकी उन्नति तो दरकिनार, इसकी स्वतंत्रता भी टिक नहीं सकेगी। दिवंगत नरेश ने नये राजा के चयन का जो सुझाव दिया है, वही एकदम उपयुक्त है क्योंकि इस सुझाव को अमल में लाने से एक ओर सभी सदस्यों की एकता बनी रह जायगी तथा दूसरी ओर उनकी हितकारी एकता नये राजा को कभी निरंकुश नहीं होने देगी।

नगर श्रेष्ठि की निःस्वार्थ प्रेरणा अन्ततोगत्वा रंग लाई और सभी ने अपने दावों को छोड़ दिये। फिर सभी नये राजा के चयन तथा सिंहासनारोहण एवं दिवंगत राजा के

भावपूर्ण अन्तिम संस्कार की व्यवस्थाओं के निर्धारण पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे।

× × ×

मानसिंह ने सम्पूर्ण वन प्रदेश पार कर लिया, अब वह नगरीय क्षेत्र में चल रहा था। छोटी-छोटी बस्तियाँ उसे मिल रही थीं जहाँ वह भोजन प्राप्त करता तो विश्राम भी लेता। उसके तन-मन में उससे एक नई शक्ति संचरित होने लगी थी तथा उसके मुख पर एक नई आभा मिलने लगी थी। उसका राजकीय व्यक्तित्व जैसे पुनः निखरने लगा था। वह भव्य दिखाई दे रहा था।

संयोग प्रबल होता है और वह पूरा होकर ही रहता है। वह नागमणि के प्राप्त होने का याने कि उस वन प्रदेश से प्रस्थान कर देने का सातवां दिन था और मानसिंह वसन्तपुर नगर के बाह्य भाग में पहुँचा। उस दिन वह काफी लम्बा चला था अतः विशेष रूप से थक गया था। इस कारण एक बावड़ी और छायादार पेड़ देखकर वह वहीं रुक गया। बावड़ी का ठंडा पानी उसने पिया और पेड़ की छाया में उसी बावड़ी की पाली पर लेट कर वह विश्राम करने लगा। उसे अच्छी नींद आ गई, किन्तु जब उठा तो दोपहर ढल चुकी थी और तीसरा पहर शुरू हो रहा था। उसने हाथ मुंह धोए तो उसे बड़ी ताजगी महसूस हुई।

वह फिर पाली पर आकर बैठ गया और सोचने लगा कि अब क्या करे? वहीं थोड़ी देर तक और विश्राम करे या नगर के भीतर जावे। अभी धूप तेज थी अतः कुछ देर तक और पाली पर ही विश्राम करने का उसने निश्चय किया।

कुछ क्षणों बाद वास्तव में चमत्कार ही घटित हुआ। वह बावड़ी की पाली पर बैठा ही था कि सामने से उसे एक श्वेत हथिनी उसी की ओर आती हुई दिखाई दी। उसकी सूंड में फूलों की मोटी माला टंगी हुई थी और वह सूंड ऊपर उठाए हुई थी। श्वेत हथिनी के पीछे प्रभावशाली से दिखाई देने वाले राजपुरुषों तथा बाद में नागरिकों की भीड़ चल रही थी। यकायक वह दृश्य देखकर उसके मन में हड़बड़ाहट पैदा हो गई।

मानसिंह वहाँ से उठकर हटना चाह ही रहा था कि श्वेता हथिनी एकदम उसके सामने आकर खड़ी हो गई। तब वह उठ भी नहीं सका। वह उसका कुछ अर्थ समझ भी नहीं पाया, तब तक तो श्वेता हथिनी की सूंड में थमी हुई फूलों की मोटी माला उसके गले में गिर चुकी थी और भीड़ ने उसका जय जयकार लगाना शुरू कर दिया था, "नये महाराज की जय।" तभी राज्य का प्रधान मंत्री मानसिंह के समक्ष उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगा—

"श्रीमान् अब आप इस वसन्तपुर राज्य के नये महाराज हो गये हैं। आज प्रातः ही हमारे नरेश का देहावसान हो गया और उन्होंने निःसंतान होने के कारण अपने

उत्तराधिकारी के चयन के लिये इसी पद्धति का निर्देश दिया था। अब आप कृपया जल्दी पधारिये ताकि पहले आपके सिंहासनारोहण का उत्सव मना लें और फिर मृत महाराज का अन्तिम संस्कार सम्पन्न करें।"

सेवकों ने मिलकर मानसिंह को उसी श्वेता हथिनी के हौदे पर आसीन किया—उस पर छत्र चंवर ढुलने लगे। सारे नगरवासी आगे बढ़-बढ़ कर अपने नये महाराजा के दर्शन करने लगे। पदस्थ राजपुरुषों के भी आश्चर्य का ठिकाना नहीं था कि उन्हें ऐसा भव्य पुरुष नये राजा के रूप में मिल गया है तो सामान्य नागरिकों की प्रशंसा और प्रसन्नता का तो कहना ही क्या ? वे अपने मृत महाराजा की बुद्धिमत्ता की सराहना कर रहे थे।

श्वेता हथिनी पर आरूढ़ बसन्तपुर का अभिषिक्त होने वाला नव नरेश मानसिंह वैसे भी राजपुरुष ही था और था भव्य स्वरूप का स्वामी किन्तु उस समय उसके प्रभाविक व्यक्तित्व की छटा कुछ निराली ही प्रतीत हो रही थी। वहाँ के नगरवासी ऐसा स्वरूपवान नरेश प्राप्त करके अपने को धन्य मान रहे थे। आगे-आगे श्वेता हथिनी और उसके पीछे बसन्तपुर के राजपुरुष, गणमान्य नागरिक तथा सामान्य जन अतीव हर्ष के साथ चल रहे थे। नगर में प्रविष्ठ होकर यह जुलूस राजमहल पहुँचा। व्यवस्थाओं पर विचार-विमर्श हो ही चुका था अतः तदनुसार सिंहासनारोहण की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं।

राजमहल के विशाल सभा-कक्ष में यह उत्सव आयाजित किया गया। राजसी वेशभूषा धारण करके जब मंगल कृत्यों के साथ मानसिंह सिंहासनासीन किये गये तो उनकी शोभा दर्शनीय थी। सभी राजपुरुष, पदस्थ अधिकारी एवं नागरिक यथास्थान बैठे और सभी ने क्रमवार नये महाराजा का नजराना करके अभिनन्दन किया। अन्त में नये महाराजा ने अपनी प्रजा को सम्बोधित किया—

"भद्रजनो ! यह दैवयोग ही है कि मैं इस राज्य का शासक मनोनीत हुआ हूँ किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि मैं राजकीय परम्पराओं तथा मर्यादाओं से अबोध नहीं हूँ बल्कि उनका प्रशिक्षण मुझे मिला है। इस कारण शासकीय दायित्वों को मैं भलीभांति समझता हूँ........।

"अपने प्रशिक्षण एवं अनुभव से मेरा विचार बना हुआ है कि मैं अपना शासन न्याय, नीति एवं प्रजाहित की दृष्टि से चलाऊँ। अतः आज घोषणा करना चाहूँगा कि मेरी दृष्टि में सभी नागरिक समान समझे जायेंगे और किसी को किसी पर अन्याय या अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी जायगी। सभी नागरिक परस्पर प्रेम, भाइचारे एवं सहयोग की भावना के साथ रहें........।

"अपने अधिकारियों, कर्मचारियों एवं जिम्मेदार लोगों से भी मैं कहूँगा कि वे

राज्यहित तथा प्रजा की भलाई को ध्यान में रखकर ही अपनी सारी कार्यवाहियां चलावें.......।

"अन्त में मैं अपने लिये भी निवेदन करूंगा कि मुझे आप अपना सच्चा हितैषी समझें। मैं अपनी समस्त शक्तियों से प्रजा का हित साध सकूं—वैसी निष्ठा प्रभु मुझे दें।"

तब नये महाराजा ने खड़े होकर सबका अभिवादन स्वीकार किया।

यह सम्बोधन सुनकर सभी विस्मित रह गये। अब तक तो वे नये राजा को सिर्फ रूपवान ही समझ रहे थे किन्तु अब वे जान पाये कि नये राजा बुद्धिमान भी हैं तथा नीतिमान भी। इससे अधिक उन्हें क्या चाहिये था ? उन्हें तो दिवंगत महाराजा के समान ही नये महाराजा अनायास ही मिल गये थे।

नये महाराजा के रूप में जब मानसिंह ने ऐसा सुन्दर वक्तव्य दिया, तब उसे अनुभव हो रहा था कि उसके कंठ स्वर में वह नहीं, उसका भाई अभय बोल रहा था। उसके बाहरी दो लक्ष्यवेधों की तुलना में अभय ने जो भीतरी लक्ष्यवेध किया था और वनवास में जो ज्ञान दिया था, यह घोषणा उसी का सुपरिणाम थी। मानसिंह की विचार-धारा में तो अभयसिंह का ही प्रवाह समाया हुआ था।

दूसरे दिन ही उसने प्रधानमंत्री को बुलाकर यह निर्देश दिया—"देखिये मेरे साथ मेरा छोटा भाई अभयसिंह भी था, उसे सांप ने डस लिया था सो मैं आगे चला आया ताकि उसके उपचार की व्यवस्था कर सकता। अतः आप सैनिकों का एक दल सर्प दंश उतारने वाले गारुड़ी सहित उसकी तलाश में शीघ्र भिजवाइये और वापिस आने पर उन सैनिकों को मेरे पास भेजिये ताकि मैं उनसे विस्तार से पूछताछ कर सकूं। विश्वास तो यही है कि भाई उन्हें मिल ही जायगा।" इतना कहकर मानसिंह ने अभयसिंह की आकृति का वर्णन किया साथ ही जिस वन क्षेत्र से वह आया था, उसकी दिशा तथा उसका पूरा विवरण भी बताया।

"मैं दल और चिकित्सक आज ही भेज देता हूं राजन् और उसके आते ही सैनिकों को आपके पास भिजवा दूंगा। आप निश्चिन्त रहें—" प्रधानमंत्री निवेदन करके चला गया।

कई दिन बीत गये, मानसिंह अभय की व्यग्रता से प्रतीक्षा करता रहा किन्तु न अभय आया और न उसके बारे में कोई सूचना ही मिली। एक दिन द्वारपाल ने सैनिक दल के लौट आने की सूचना दी और राजा से मिलाने के लिये वह सैनिकों को भीतर ले आया।

राजा ने पूछा—"क्या निराशा के साथ ही लौटे हो ?"

कोई सैनिक नहीं बोला । सभी उदास थे । तब दल के नायक ने उत्तर दिया—"महाराजा, आपके निर्देशानुसार हम उस वन प्रदेश में पहुँच गये जहाँ हमने शिलालेख वाला सरोवर भी देखा और वह सघन वृक्ष भी । किन्तु आपके भाई साहब कहीं भी नहीं दिखाई दिये, न उनका कोई चिह्न ही मिला । वहाँ तो कोई मनुष्य ही नहीं मिला, जिससे हम कोई पूछताछ भी करते । अतः निराश ही लौटना पड़ा स्वामी ।"

"अच्छा"—बड़ी कठिनाई से यह शब्द राजा के से मुंह निकला, उसने उन्हें बाहर जाने का संकेत किया तथा स्वयं हताशा में डूबा पलंग पर निढाल गिर गया ।

सैनिकों का दल भेजकर तो पूरी निश्चिन्तता हो गई थी कि वह अभय का अवश्य ही पता लगाकर लौटेगा । किन्तु आज उसे अपार दुःख हो रहा था कि दल भी निराश लौट आया था । अब अभय के पहुँचने और मिलने की आशा बहुत क्षीण हो गई थी ।

कुछ दिन तक मानसिंह अभय के विचारों में खोया हुआ रहा किन्तु राज्य कार्यों में उसकी व्यस्तता बढ़ती गई ।

दिन पर दिन बीतने लगे और महीनों पर महीने । मानसिंह राजपद में व्यस्त हो गया ।

१५
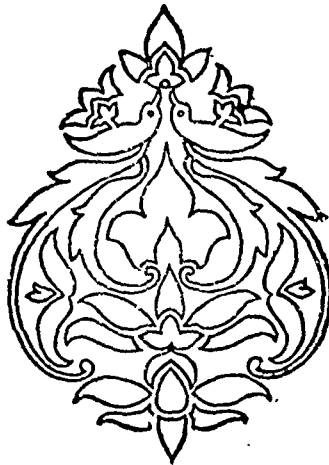
आज की दुनिया में धर्मद्वेषी लोगों ने एक निरर्थक कहावत चला रखी है कि 'जो करे धरम सो फूटे करम तथा जो करे पाप सो खावे धाप।' और जैसा मौका अभयसिंह के साथ पड़ा, वैसा अगर आज किसी के साथ पड़ जाय तो ऐसे लोग तुरन्त ये कहावतें सुना देते हैं। किन्तु हकीकत ऐसी नहीं होती है। इस संसार का सारा चलन कर्म सिद्धान्त के अनुसार चलता है। जो आज नीति, न्याय तथा धार्मिकता के साथ अपना जीवन चलाता है, वह आज शुभ कर्मों का बंध करता है जिसका शुभ फल उसे देश काल के पकने पर प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति को आज यदि कोई अशुभ फल मिल रहा है तो वह उस अशुभ कर्म का होता है जो उसने पूर्व में बांध रखा है और जिसे वह भुगतेगा तभी काम चलेगा। इसी बात को उलट कर भी समझलें। आज जो पाप कार्यों में लिप्त हैं फिर भी उसे शुभ फल मिलता हुआ दिखाई देता है तो वह उसके पूर्व में बंधे शुभ कर्म का फल होता है तथा आज जो वह अशुभ कर्म बांध रहा है, उसका उसे आगे अशुभ फल भुगतना ही होगा। अतः केवल वर्तमान को देखकर ही एकांगी निर्णय नहीं निकाल लेना चाहिये।

नागिन तो अपने प्रतिशोध के रूप में अभयसिंह को डस कर चली गई और अभय ने भी उस कष्ट को समभाव से सहन किया, किन्तु उसके शरीर पर विष का कुप्रभाव होने लगा और नीलापन बढ़ता गया। अभयसिंह विष के कारण संज्ञाहीन होकर पड़ा रहा। सर्पदंश में शारीरिक स्थिति के लिये कहा जाता है कि डसने के तीन दिन तक शरीर में प्राण बने रहते हैं और इस बीच यदि विष झाड़ दिया जाय या उपयुक्त चिकित्सा कर ली जाय तो सर्पदंश वाले व्यक्ति का जीवन बचाया जा सकता है। सर्पदंश के कुछ ही समय बाद शरीर की बाह्य अवस्था अवश्य ऐसी दिखाई देती है जैसे कि प्राणपखेरू उड़ गये हों। तदनुसार अभयसिंह का जीवन मृत्यु-मुख में अवश्य चला गया था किन्तु मृत्यु से ग्रसित नहीं हुआ था। उस बियावान जंगल में सघन वृक्ष के नीचे अभयसिंह का शरीर अचेत अवस्था में पड़ा हुआ था।

यह आशंका अवश्य थी कि खतरों से भरे उस जंगल में भला कौन आवेगा और कोई आ भी गया तो उसके सर्पदंश की वह भला क्या चिकित्सा करके जीवन को बचा पायेगा ? किन्तु शुभ और अशुभ कर्म फल का भी कई बार क्रम चला करता है। अशुभ कर्म का फल भुगतते समय किसी भी काल के लिए निराशा का वातावरण सामने से आता

है किन्तु उस दौरान यदि शुभ कर्म का फलोदय हो जाता है तो चमत्कारपूर्ण घटनाएं घटित हो जाती हैं तथा असंभव सी दिखाई देने वाली परिस्थिति संभव ही नहीं अपितु अनुकूल और सुखद भी बन जाती है। ऐसा ही फलोदय अकल्पनीय रूप से अभय के जीवन में भी प्रकट हुआ।

× × ×

एक सार्थवाह परिवार सहित अपना काफिला लेकर व्यापार करने के लिए परदेश गया हुआ था वो वापिस लौट रहा था। लौटते समय उसका काफिला रास्ता भटक गया और उस वियावान जंगल में पहुँच गया। योग ऐसा बैठा कि सघन वृक्ष देखकर वह काफिला वहीं पर ठहर गया। उस सुनसान जगह पर एक मानव शरीर पड़ा हुआ—यह देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। सार्थवाह बहुत दयावान था। उसने कहा—जो भी हो इसकी यथा साध्य सभी सहायता करनी चाहिए। उसके काफिले में सभी प्रकार के साधन तथा व्यक्ति थे, अतः सार्थवाह को विश्वास था कि उसकी सहायता सफल हो सकेगी।

सार्थवाह ने अपने साथियों से कहा कि इस अपरिचित युवक के शरीर की परीक्षा की जानी चाहिये। उस समय सभी प्यास से पीड़ित हो रहे थे अतः सेठ ने दो-तीन अनुचरों को खोजकर पीने योग्य पानी लाने का आदेश दिया व अपने एक समझदार साथी को अभय के शरीर की जांच पड़ताल करने को कहा। सभी प्रकार से नाड़ी, श्वास आदि देखने के बाद उस समझदार साथी ने कहा—"सेठ साहब, यद्यपि इस व्यक्ति की नाड़ी शून्य सी लग रही है। किन्तु यह मरा नहीं है—शरीर प्राणवान है। शरीर चूंकि नीला पड़ रहा है जिससे लगता है कि यह व्यक्ति सर्पदंश से पीड़ित है किसी अन्य जहरीले जन्तु द्वारा काटा हुआ भी हो सकता है।"

"यह तो बड़ी कठिन परिस्थिति है। सर्पदंश की चिकित्सा का तो हमारे पास कोई साधन नहीं है। अब क्या होगा? एक मरणासन्न व्यक्ति की जीवन रक्षा न कर पाएं—यह भी दुःखद बात होगी"—सेठ ने निराशा किन्तु करुणापूरित स्वर में कहा।

"क्या दुःखद बात होगी, भाई?"—नई अनजानी आवाज सुनकर सभी की नजर ऊपर उठ गई तो उन्होंने विस्मयपूर्वक देखा कि एक महात्मा सामने के मार्ग से चलते हुए आकर एक दम उनके समीप ही पहुंच गये हैं। उनके लम्बे केश और लम्बी दाढ़ी से वे ऋषि के समान प्रभावशाली लग रहे थे। उनकी मुखाकृति भी तपोतेज से चमक रही थी।

सबने आगे बढ़कर महात्मा का स्वागत किया और बताया—"महात्मन्, हम अभी-अभी यहाँ पहुँचे तो एक युवक का यह शरीर दिखाई दिया। परीक्षा करने से पता चला है कि किसी विषधर ने इसे काटा है, किन्तु दुःखद बात यही है कि हम इसकी कोई चिकित्सा कर पाने में असमर्थ हैं।"

महात्मा ने एक जोरदार ठहाका लगाया और कहा—"मेरा नाम फक्कड़ बाबा है और सब तरह घुमक्कड़ी करना मेरा काम है । इस घुमक्कड़ी ने मुझे सब कुछ सिखा दिया है । इस युवक की चिकित्सा मैं करूंगा"—कहकर फक्कड़ बाबा उस शरीर की बारीकी से जांच करने लगे ।

काफिले के लोगों के साथ सेठ का परिवार भी वहाँ आ गया था । सेठ की पुत्री भी काफिले के साथ थी । उसका नाम था मदनमंजरी । जब फक्कड़ बाबा जांच कर रहे थे तो युवक की भव्य मुद्रा देखकर सेठ बोले—"हो न हो—यह युवक कोई सामान्य पुरुष नहीं है । लक्षण तो राजपुरुष जैसे लगते हैं । कौन जाने, किस विपत्ति के कारण इसका इधर आना हुआ और यह सर्पदंश का शिकार बन गया ?" तब मदनमंजरी ने भी अपनी राय जताई—"पिताजी, कितना सुन्दर और स्वरूपवान युवक है यह ?" अब तक वह युवक के मुख की ओर अपलक दृष्टि से देख रही थी और उसकी उस समय की आकृति को देखकर कहा जा सकता था कि उसकी दृष्टि एक विमुग्धा की दृष्टि सी प्रतीत हो रही थी ।

फक्कड़ बाबा के चेहरे पर कुछ उदासी सी छा गई, वे बोले—"प्राण तो इस शरीर में हैं, पर ये बहुत क्षीण हो गये हैं । लगता है कि सर्पदंश बहुत गहरा है अथवा सर्प या सर्पिणी घातक विषधर थी । अतः मुझे कठिन प्रयास करना होगा । आशा करता हूँ कि इस युवक का जीवन मैं बचा लूंगा"—कह कर बाबा तुरन्त अपने मन्त्र प्रयोग में निमग्न हो गये । वे उस शरीर को झाड़ते जाते थे और मंत्रों का जोर-जोर से उच्चारण करते जाते थे । सभी अतीव आशापूर्वक फक्कड़ बाबा की उस प्रक्रिया को देख रहे थे ।

सभी पानी की खोज में गये वे अनुचर वापिस लौट आये । आतंक और भय से उनके चेहरे सूखे हुए थे । सेठ उन्हें देखकर दंग रह गये । ऐसा क्या हुआ है कि ये लोग इतने भयभीत हो गये हैं ? वे स्नेहपूर्वक बोले—"मेरे भाइयो ! क्या बात हो गई है ? आप इतने भयग्रस्त क्यों लग रहे हैं ?" उन्होंने सरोवर और सिंह-व्याघ्र का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—"सेठ साहब, यह बड़ा खतरनाक स्थान मालूम होता है—एक क्षण भी यहाँ ठहरे रहने का अवसर नहीं है । इसी कारण हम पात्र भी जल से भर कर नहीं लाये हैं । अच्छा हो कि काफिला यहाँ से तत्काल चल पड़े और दिन ढलने से पहले-पहले इस वन क्षेत्र की सीमा से बाहर निकल जायें ।"

वृत्तान्त सुनकर सेठ और उनके साथ के सभी लोग विचार में पड़ गये । वास्तव में वहाँ पर अधिक ठहरना खतरे से खाली नहीं था । इसके सिवाय सबके कंठ प्यास से सूख रहे थे, अतः वे [illegible] जब तक इस वन क्षेत्र की सीमा से बाहर नहीं निकल जायेंगे तब तक जल की प्राप्ति भी दुर्लभ दिखाई दे रही थी । सिंह-व्याघ्र की जानकारी हो जाने के बाद सरोवर का जल पीने का तो किसी का साहस ही नहीं रहा । इस कारण प्यास से तो किसी के भी प्राण संकट में गिर सकते थे—यह सभी ने आशंका व्यक्त की । सेठ ने विनयपूर्वक यह बात फक्कड़ बाबा को बताया तो वे भी सहमत हो गये कि इन परिस्थितियों में

ग्राप सबको यहाँ से प्रस्थान कर ही देना चाहिये। सूर्यास्त से पहले सुरक्षित हो जाना ग्रावश्यक है। तब फक्कड़ बाबा ने ही सुझाव दिया—"यह युवक बच अवश्य जायेगा किन्तु मेरी प्रक्रिया में अभी समय लगेगा अत: ऐसा करें कि एक रथ में इस युवक के शरीर को भी रख देते हैं और काफिले को रवाना कर देते हैं। मैं रथ में इसके साथ रहकर अपनी प्रक्रिया चलाता रहूँगा।"

इस सुझाव पर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। सावधानीपूर्वक तदनुसार उसने सारी व्यवस्था कर दी और काफिले को तुरन्त चल देने की आज्ञा दे दी। काफिला उस वन क्षेत्र की सीमा से शीघ्रातिशीघ्र बाहर निकल जाने की दृष्टि से त्वरित गति के साथ चलने लगा और फक्कड़ बाबा अपने रथ में विष उतारने की अपनी मंत्र-प्रक्रिया चलाते रहे। सायंकाल तक बाबा की प्रक्रिया की सफलता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। अभय ने अपनी आंखें खोलीं और सामने अपरिचित चेहरों को देखकर दुर्बल स्वर से कहा—"मैं इस समय कहाँ हूँ? आप लोग कौन हैं? मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?"

एक साथ कई प्रश्नों को सुनकर फक्कड़ बाबा ठहाका लगाकर हँस पड़े—मस्त जो थे। वे कहने लगे—"बच्चा, जहाँ भी तुम हो, खतरे से बाहर हो। यों समझो कि प्रकृति ने तुम्हें स्वस्थ बनाने का काम हम लोगों को सौंपा है और हम तुम्हें वहीं ले जा रहे हैं जहाँ तुम पूर्ण स्वस्थ हो सकोगे। इस समय तुम बहुत ही शक्तिहीन हो रहे हो अत: अभी निश्चित होकर आराम करो।"

अभय में उस समय ज्यादा बोल पाने की शक्ति भी नहीं थी, अत: वह चुप हो गया और आभारपूर्वक सभी को देखने लगा। अपनी तबियत की महसूसगिरी से उसको इतनी बेफिक्री तो आ गई थी कि इन सदाशयी पुरुषों ने नागिन के विष से तो उसे मुक्त करा दिया है और अब उसका जीवन बच गया है। अशक्ति तो उसमें इतनी थी कि वह न कुछ बोल पा रहा था और न इधर-उधर हिलडुल ही पा रहा था। यदि जीवन की ज्योति बुझी नहीं है तो वह प्रखर भी हो जायगी—यह विश्वास उसके मन-मस्तिष्क में सजीव हो उठा।

फक्कड़ बाबा दो-तीन दिन तक तो काफिले के साथ रहे और अभय का उपचार करते रहे। जब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अब इस युवा-जीवन का बाल भी बांका नहीं हो सकेगा तो वे सेठ को आगे का उपचार तथा दुर्बलता दूर करने की विधि समझाकर अपनी राह अलग चले गये। वे यह भी बता गये कि डसने वाला कोई जबरदस्त विषधर था और उसके विष का इस युवक के शरीर पर बहुत ही घातक असर पड़ा है, इस कारण इसको पूर्ण स्वस्थ होने में कई माह लग जायेंगे। इस दृष्टि से उन्होंने सेठजी को सलामण दी कि वे उसकी परिचर्या का पूरा ध्यान रखें तथा कम से कम छ: माह तक तो अपने यहाँ से इसको विदा न होने दें।

अभय का व्यक्तित्व ही ऐसा प्रभावी और आकर्षक था कि एक बार साथ रह जाने

पर उसे अपने से कौन विलग करना चाहता ? सेठ ने बाबा को आश्वस्त किया कि उनकी मन्तव्य का पूरी-पूरी तरह से पालन किया जायगा, किन्तु मदनमंजरी ने आगे बढ़कर हर्षावेश में बाबा से निवेदन किया—"आप कतई चिन्ता न करें। इनकी मैं प्राणपण से सेवा करूंगी और मुझे विश्वास है कि ये जल्दी से जल्दी स्वस्थ होने लगेंगे। छः माह पहले इनको हम अपने घर से कतई रवाना नहीं होने देंगे।

सार्थवाह ने अपनी सुपुत्री की बात सुनी जो उसके मन को छू गई। कल्पना में उसने अनुभव किया कि यदि ऐसा तेजस्वी युवक उसका जामाता बन जाता है तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात उसके और उसके परिवार के लिये और क्या हो सकती है ? वह भी हर्षावेश में झूम उठा।

काफिला कई दिनों तक लगातार चलता रहा और रथ के खटोले में सबकी सेवा का लाभ लेते हुए अभय भी शनैः-शनैः स्वास्थ्य लाभ करता रहा। एक लम्बी यात्रा के बाद काफिला मंजिल पर पहुँचा। एक अति सम्माननीय अतिथि के रूप में अभय के निवास व परिचर्या की सेठ की हवेली में सुन्दर व्यवस्था की गई। सुख सम्पदा की कोई कमी भी नहीं, किन्तु सार्थवाह का सारा परिवार अभय पर इतना स्नेह बरसा रहा था कि वह जैसे आनन्द सागर में अवगाहन करने लगा।

× × ×

अभय का यह वृत्तान्त जान लेने के बाद अब शुरू में अंकित दोनों कहावतों—'करे धरम सो फूटे करम तथा करे पाप तो खावे धाप' का सीधा अर्थ भी समझ लेना चाहिये। 'करे धरम सो फूटे करम' का सही अर्थ यह समझें कि जो धर्म करेगा, अर्थात् परोपकारी कार्यों में प्रवृत्त होगा, उसके करम (कर्म) जरूर फूटेंगे—नष्ट होंगे। धर्म करने से कर्मों का क्षय होगा। दूसरी उक्ति 'करे पाप सो खावे धाप' का अर्थ भी यह होगा कि पाप करने वाले को उसका दंड धाप कर (भर पेट) मिलेगा। पापी के कर्म फल भुगतान में कोई रियायत नहीं होगी।

छः माह देखते-देखते व्यतीत हो गये। अब अभय अपने आपको पूर्णतया स्वस्थ अनुभव कर रहा था। मदनमंजरी ने जिस श्रम और निष्ठा से उसकी परिचर्या की थी उसके कारण उसके मन में मदनमंजरी के प्रति सम्मान ही नहीं, अपितु अनुराग भी उत्पन्न हो गया था। मदनमंजरी तो प्रारम्भ से ही उसके प्रति विमुग्ध ही बनी रही। इतना ही नहीं, उसने तो हृदय में मीठे-मीठे सपने संजो लिये थे कि वे दोनों जल्दी ही 'दो शरीर एक प्राण' हो जायेंगे। उसका परिवार भी लालायित था कि यदि ऐसा शिष्ट, सुसंस्कृत और सुन्दर युवक उनकी रूपसी पुत्री का हाथ थाम लेता है तो यह अति सुखकर ही होगा।

अभय भी मदनमंजरी के प्रति आकृष्ट न हो—ऐसी बात नहीं थी। वह रूपवती ही नहीं, गुणवती भी थी और उसे इस लम्बे समागम से यह विश्वास हो चला था कि वह उसके लिये सुयोग्य सहधर्मिणी सिद्ध होगी। सार्थवाह का पूरा परिवार उसे बहुत ही

भा गया था । वह मानता था कि उसे पुनः नया जीवन देने वाला यह परिवार ही है, वरना उस जंगल में अन्ततोगत्वा उसका शरीर किसी न किसी जंगली जन्तु का खाद्य ही बन जाता । इस प्रकार दोनों तरफ प्रेम भी था और जीवन को परस्पर बांध लेने की चाह भी ।

किन्तु एक बाधा उठ रही थी अभय के मानस में । वह व्याकुल होने लगा अपने ज्येष्ठ भ्राता को ख़ोज कर उनसे मिलने के लिये । उसका वह भ्रातृ प्रेम तो आदर्श था । जिसने भाई साहब को सुखी बनाने के लिए अपने सर्वस्व और जीवन तक का एक प्रकार से बलिदान दे दिया, वह भला बिना भाई साहब के दर्शन किये कैसे चैन पा सकता था ? उसके लिए उसका स्वयं का विवाह और स्वयं का सुख कोई बड़ी बात नहीं थी । इसलिये अब वह जिद् करने लगा वहाँ से बिदा लेने के लिये । एक दिन तो उसने निश्चय कर ही लिया कि अब वह हर हालत में सेठ की हवेली को छोड़कर भाई साहब की खोज में निकल पड़ेगा । वह भाई साहब के दर्शन किये बिना और उनके साथ रहे बिना सुख से रह ही नहीं सकता । यह भी उसने सोच लिया कि वह अपने इन उपकारी लोगों को भी नाराज नहीं करेगा—इन्हें सन्तोष देकर ही विदा लेगा ।

एक दिन भोजनोपरान्त सारा सार्थवाह परिवार बैठा हुआ विनोद कर रहा था और साथ ही अभय भी था । अवसर देखकर सार्थवाह ने बात छेड़ी—"अभय जी, अब अपना स्वास्थ्य आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?"

"जी, अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ । आप सबने मुझ पर कितना उपकार किया है" —बड़ी ही कृतज्ञता के साथ अभय ने उत्तर दिया ।

"अरे, यह हमें लज्जित करने वाली आपने कैसी बात कह दी ? हम तो आभारी हैं कि आपने हमारा आतिथ्य ग्रहण किया । क्या आप हमारा एक निवेदन और स्वीकर करेंगे ?"

"क्या आपका कोई कथन मैं टाल सकता हूँ ?"

"आपकी शालीनता से हम भलीभाँति परिचित हो चुके हैं । हमारी मंजरी आपको कैसी लगी ?"—सेठ ने साँकेतिक बात कह दी ।

"आपकी सुपुत्री ने जिस लगन से मेरी परिचर्या की है, उसका ऋण मैं कभी भी नहीं चुका सकूंगा ।"

सेठ ने विनोद के स्वर में कहा—"हम चाहते हैं कि यह 'ऋण' आप नकद ही चुका दें । जीवन भर के लिये उसका हाथ आप अपने हाथ में थाम लें ।"

यह सीधी बात सुनकर अभय लजा सा गया और मदनमंजरी के मुख पर ललाई घूम गई । अभय ने सिर नीचा किये ही उत्तर दिया—

"इस विषय में मैं आपको क्या उत्तर दूं ? सुयोग्य सहधर्मिणी के बिना जीवन अपूर्ण ही माना जाता है और सुयोग्य सहधर्मिणी का संयोग भी सरलता से नहीं मिलता। मैं इस दृष्टि से अपने को भाग्यशाली समझता हूं।" यह कहकर अभय चुप हो गया।

सार्थवाह ने अभय के मौन को स्वीकृति मान कर यह शुभ समाचार सारे सम्बन्धियों को बताया तथा विवाह समारोह की तैयारियां प्रारम्भ कर दी।

शुभ समय अभय और मदनमंजरी का परिणय प्रफुल्लतादायक वातावरण में सम्पन्न हुआ।

किन्तु अभय का मन तो अपने ज्येष्ठ भ्राता में लगा हुआ था। वह उनकी खोज करके शीघ्रातिशीघ्र उनकी सेवा में पहुंच जाना चाहता था। अतः अवसर देखकर उसने मदनमंजरी को यह बात बताई और कार्यपूर्ण हो जाने पर उनको अपने पास बुला लेने का आश्वासन दिया। मदनमंजरी अपने पति से विलग होने को तैयार नहीं थी। उसने महारानी सीता एवं महारानी तारामती आदि के उदाहरण भी प्रस्तुत किए, किन्तु पतिदेव के भ्रातृप्रेम से प्रभावित होकर उसने उनकी बात मान ली।

अभय तब अपने लक्ष्य को पूर्ण करने की दृष्टि से वहां से चल पड़ा।

१६

सुखों का प्राप्त संसार एक बार और छोड़कर निकल पड़ा, कष्टों की कांटों भरी डगर पर बड़े भाई का दीवाना छोटा भाई। निकल तो पड़ा किन्तु कहाँ जाना है—इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। गन्तव्य ज्ञात नहीं था। शिलालेख और सरोवर वाले बियावान जंगल से सार्थवाह का काफिला उसे कहाँ-कहाँ से घुमाता हुआ सार्थवाह के घर ले गया—उसे कुछ भी पता नहीं। वह कहाँ और किधर भाई साहब की खोज करे—इसका उसके पास कोई आधार नहीं।

बस अभयसिंह के मन में समा गया कि वह अपने ज्येष्ठ भ्राता मानसिंह की खोज करके उनसे मिल कर ही रहेगा। जहाँ चाह, वहाँ राह। संकल्प शक्ति जिसकी दृढ़ होती है, वह उसकी पूर्ति भी कर ही लेता है, क्योंकि वह उसके लिये असह्य कष्टों तथा अनुलंघनीय बाधाओं की भी परवाह नहीं करता। अभय केवल ऐसी ही संकल्प शक्ति की भूमिका पर निकल पड़ा था और चल पड़ा था। वह तो अपने बड़े भाई से मिलने के लिये आतुर ही क्या—एक तरह से पागल हो रहा था।

सार्थवाह की हवेली से निकल कर वह नगर के बाहर आया और एक चट्टान पर बैठ कर निश्चय करने लगा कि उसे किस दिशा के किस मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिये? उसके सामने वहाँ से कई दिशाओं में कई मार्ग निकल रहे थे। उसने कुछ क्षणों तक ध्यानस्थ होकर महामन्त्र का पाठ किया और फिर मन ही मन कुछ निश्चय करके वह एक मार्ग पर आगे बढ़ गया।

अभय अब एक नगर से दूसरे नगर तक यात्रा करने लगा, क्योंकि वह सोचता था कि बड़े भाई नागमणि के प्रभाव से निश्चय ही राजा हुए होंगे और वैसी अवस्था में उनका निवास किसी न किसी नगर में ही हो सकता है। नगर से नगर चलते हुए भी बीच के कठिन भूभाग उसे पार करने पड़ते थे जहाँ दुरुह पर्वत भी आते थे और कंटकाकीर्ण वन भी। एक निश्चल और अडिग पथिक की तरह वह सभी बाधाओं को अपनी संकल्प शक्ति से रौंदता हुआ चलता ही जा रहा था। संकल्प शक्ति टूट सकती है किन्तु झुक नहीं सकती। फिर हजार बाधाएँ और आपदाएँ क्यों न आती रहें, अभय का फौलादी मन अपने संकल्प से मुड़ कैसे सकता था? वह तो निरन्तर चलता जा रहा था अथवा यों कहिये कि भटकता जा रहा था, किन्तु उसका मन अपने निश्चय से तनिक भी नहीं भटका था।

इस तरह घूमते हुए बहुत दिन बीत गये। उसका मन शुद्ध था, उसका आत्म-स्वरूप उज्ज्वल था, किन्तु देह दुर्बल होने लगी और बाह्य स्वरूप दयनीय सा बनने लगा। बाल और दाढ़ी बढ़ गई, पैरों की बिवाइयाँ फट गईं तथा कपड़े जीर्ण-शीर्ण हो गये। कोई भी उसे उस दशा में देखकर नहीं सोच सकता था कि यह दीन, हीन और दुःखी कौन है ?

एक दिन अभय को चलते-चलते शाम हो गई, मगर रात्रि विश्राम के योग्य कोई निरापद स्थान नहीं मिला। वह बुरी तरह थक गया था। तभी सामने से उसे एक दूसरा पथिक आता हुआ दिखाई दिया। उसने उससे पूछा—"क्यों भाई, तुम किधर जा रहे हो ?"

"मैं तो वसन्तपुर जा रहा हूँ। आप किधर जा रहे हैं ?"—वह पथिक उसकी दीन-हीन दशा देख कर 'तुम' ही कहना चाहता था किन्तु उसकी मुखाकृति से वह कुछ ऐसा प्रभावित हुआ कि मुंह से 'आप' ही निकला।

"क्या वसन्तपुर समीप ही है ?" अपने गन्तव्य को अभय क्या बताता ? इस कारण उसने यह प्रश्न पूछ लिया।

"नहीं, वसन्तपुर काफी दूर है। कल सायंकाल तक वहाँ पहुंचना हो सकेगा।"

"फिर रात्रि विश्राम कहाँ पर करना होगा ?"

"आपका पहले कभी इधर आने का काम नहीं पड़ा दीखता है। आइये, मेरे साथ चलिये। यहाँ से करीब एक कोस के फासले पर एक धर्मशाला है, वहाँ रात भर ठहर सकेंगे। वह धर्मशाला भी एकाकी ही है, आस-पास कोई बस्ती नहीं है। किन्तु किसी प्रकार का भय नहीं है।"

"भय की कोई बात नहीं, विश्राम की आवश्यकता है"—कहता हुआ अभय अब एक दूसरे ही मार्ग पर उस पथिक के साथ-साथ चल पड़ा।

दोनों ने धर्मशाला पहुंच कर भोजन भी प्राप्त किया और विश्राम भी। प्रातः नित्य कर्म से निवृत्त होकर जब वह पथिक अपने नगर वसन्तपुर के लिये प्रस्थान करने लगा तो उसने अभय से पूछ लिया—"आपका क्या कार्यक्रम है बन्धु ?"

अभय असमंजस में ही था कि वह किधर जावे ? यकायक उसके मन में यह विचार कौंधा कि वह इस पथिक के साथ वसन्तपुर ही क्यों न चला जावे ? सभी नगरों में खोज तो करनी ही है, इसके साथ वसन्तपुर में भी खोज हो जायगी। वहाँ से आवश्यकता हुई तो फिर आगे जाना हो जायगा। उसने उत्तर दिया—"आपको कोई आपत्ति न हो तो आपके साथ ही चल पड़ूं। आपके साथ वसन्तपुर नगर के दर्शन हो जावेंगे ?"

"क्यों नहीं ? अवश्य चलिये। मुझे तो बहुत खुशी होगी। वसन्तपुर नगर दर्शनीय है।"

फिर दोनों बसन्तपुर के मार्ग पर साथ-साथ आगे बढ़ने लगे। चलते भी जा रहे थे और बातें भी करते जा रहे थे।

"भाई, तुम बसन्तपुर में क्या करते हो ?"

"मैं तो एक कुम्हार हूँ मिट्टी के बर्तन बना कर बेचता हूँ। मेरा नाम पन्ना है।"

"क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे यहाँ के राजा का क्या नाम है ?"

"उनका नाम मानसिंह है"—सुनते ही अभय के हृदय में एक खुशी की लहर दौड़ गई, किन्तु तत्काल विचार आया कि मानसिंह नाम के कई व्यक्ति हो सकते हैं। आवश्यक नहीं कि वे बड़े भाई साहब ही हों। किन्तु उसकी उत्सुकता भड़क उठी थी। उसने आगे पूछा—"मानसिंह से पहले जो आप के नरेश थे, उनके देहावसान को कितना समय बीत गया है ?"

"यही कोई वर्ष भर होने आया होगा ?"

"पहले वाले नरेश कैसे थे ?"

"वे भी बहुत ही प्रजावत्सल थे और ये नये नरेश भी बहुत जनप्रिय हैं। राज्य में सुख, शान्ति का प्रवाह दोनों शासकों के समय से एकसा ही चल रहा है।"

"क्या ये मानसिंह उन्हीं दिवंगत नरेश के राजकुमार हैं ?"

"ऐसा नहीं है।" इस उत्तर से अभय की आगे और जानने की उत्सुकता बहुत ज्यादा बढ़ गई क्योंकि उसे विश्वास होने लगा कि फिर बसन्तपुर के नरेश उसके ज्येष्ठ भ्राता हो सकते हैं। उसने जिज्ञासा प्रकट की—"तो फिर ये मानसिंह कौन हैं ?"

"यह तो हम भी नहीं जानते। वे कहाँ के निवासी हैं या उनके माता-पिता कौन हैं अथवा अन्यथा उनका परिचय क्या है ?"

"तो फिर ऐसा व्यक्ति आपका महाराजा कैसे बन गया ?"

"हमारे पूर्व नरेश को कोई सन्तान नहीं थी अतः जब उनका अन्तिम समय समीप आया तो उन्होंने सुझाव दिया था कि उनकी श्वेता हथिनी जिस किसी व्यक्ति के गले में पुष्प-माला डाल दे, उसी को उनके बाद सिंहासन पर बिठा देना और श्वेता हथिनी ने इन्हीं मानसिंह के गले में पुष्प-माला डाली थी।"

"सच ? ऐसा हुआ था ?"—अभय को अब तो कोई शंका नहीं रही कि बसन्तपुर के नरेश उसके बड़े भाई नहीं हो सकते। उसका मन अब प्रसन्नता से उछलने लगा कि उसका संकल्प सफल होने वाला है। उसके बड़े भाई का पता चल गया है—अब तो उनसे मिलन होने ही वाला है। उसके पांवों में इस विचार के साथ ही जैसे नई शक्ति फूट पड़ी और उनकी चाल तेज हो गई।

जब रत्नपुर नगर सामने दिखाई देने लगा तो उस कुम्हार पथिक ने अभय से आग्रह किया कि वह उसका ही मेहमान बने, लेकिन उसे अभय टाल गया, क्योंकि उसे भाई साहब सम्बन्धी जानकारी तो अन्य लोगों से भी पुष्ट करनी थी और पक्का विश्वास हो जाय तो उनसे मिलने की चेष्टा भी करनी थी। अतः कुम्हार उसे एक धर्मशाला में ठहरा कर खुद अपने घर चला गया।

धर्मशाला में रात भर विश्राम करके अभय प्रातःकाल इधर-उधर घूमने लगा। मार्गों-चौराहों पर उसे अपने महाराजा की प्रशंसा करते हुए नागरिक मिले, किन्तु जो जानकारी कुम्हार ने दी थी, उससे अधिक विवरण वह प्राप्त नहीं कर सका। इधर-उधर घूम कर वह एक उद्यान में बैठ गया। वहीं उसके सामने कुछ दूरी पर दो-तीन सैनिक भी बैठे हुए बातें कर रहे थे। वह उन्हीं की बातों को कान लगा कर सुनने लगा।

एक सैनिक बोला—"क्यों भाई, अपने महाराजा के छोटे भाई का कुछ पता लगा ?"

दूसरे ने उत्तर दिया—"वह तो पुरानी बात होगई भाई। जब इनका सिंहासना-रोहण हुआ ही था, तब कुछ दिनों के बाद छोटे भाई की तलाश में महाराजा ने सैनिकों का एक दल भेजा था, उसमें मैं भी था।"

"तब क्या तुम्हें कोई अता-पता लगा था ?"

"महाराजा ने अपने छोटे भाई का नाम अभयसिंह बताया था और शिलाशिखर व सरोवर वाले जंगल का विवरण भी दिया था। हम यथास्थान पहुँच भी गये किन्तु उनके भाई का कहीं पता नहीं चला।"

"उसके बाद क्या कहीं अन्यत्र भी खोज की गई ?"

"नहीं, बाद में तो कुछ नहीं किया गया। एक तो महाराजा निराश हो गये और दूसरे राज्य कार्यों में पूरी तरह से व्यस्त भी हो गये।"

"लेकिन एक बात है भाई, इनकी तारीफ की, कि वे अपने आमोद-प्रमोद की चिन्ता बाद में करते हैं, पहले तो प्रजाहित की चिन्ता ही करते हैं और यही कारण है कि आसपास के राजा लोग इनके राज्य की सुव्यवस्था से भयंकर ईर्ष्या करते हैं।"

"ईर्ष्या ! तुम्हें मालूम नहीं है क्या ? किन्हीं राज्यों ने तोड़-फोड़ करने व व्यवस्था बिगाड़ने की नीयत से यहाँ जासूस भेज रखे हैं जिनके लिये हमें बड़ी सावधानी बरती जा रही है।"

इन सैनिकों का वार्तालाप सुनकर अभय को पक्का विश्वास हो गया कि वसन्तपुर के नरेश उसके ज्येष्ठ भ्राता के अलावा अन्य कोई नहीं है। जैसे अथाह समुद्र पार करके किनारा पकड़ लेने पर एक डूबते हुए व्यक्ति को अपार हर्ष होता है, वैसे ही अपार हर्ष से अभय का हृदय ओत-प्रोत हो गया। अब तो वह अनिश्चय के समुद्र से पार उतर कर किनारे पर पहुंच ही गया था। जल्दी-जल्दी वहाँ से उठा और राजमहल की ओर चल दिया। मार्ग में सैनिकों व अनुचरों की कई शकभरी निगाहें उसे देख रही थीं किन्तु उसने किसी को नहीं देखा। वह तो शीघ्रातिशीघ्र अपने बड़े भाई से मिल लेना चाहता था।

राजमहल के मुख्य प्रवेश द्वार पर वह रोक दिया गया। उसकी दुर्दशा पर एक तिरछी सी नजर फेंक कर द्वारपाल ने पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं भीतर जाना चाहता हूँ।"

"क्या काम है ?"

"महाराजा से मिलना है।"

"सीधा महाराजा से ही काम है, पहले और किसी से नहीं मिलना है"—इस कथन से अभय ने महसूस किया कि द्वारपाल सन्देहवश ऐसी बात कर रहा है, क्योंकि सैनिकों के मुंह से जासूस वाली बात वह अभी-अभी ही सुन चुका था।

"हाँ, काम तो महाराजा से ही है"—कहने को तो अभय ने कह दिया किन्तु इस उत्तर से द्वारपाल का सन्देह और अधिक बढ़ गया—इसे अभय नहीं जान सका।

"कहाँ से आये हो और क्या नाम है ?"

इस प्रश्न का अभय से तुरन्त ही कोई उत्तर देते नहीं बना। नाम बताकर वह परिचय भी देदे तो क्या द्वारपाल उस पर विश्वास करेगा ? बाहर का हूलिया देखते हुए वह कटाक्ष अलग से करेगा। एक नाम बताने से ही काम नहीं चलेगा और स्थान, पिता आदि का सारा विवरण बताना उचित भी नहीं है। वह हिचकिचाहट में गिर गया। उत्तर न देना भी उचित नहीं था, अतः बोला—"वैसे ही घूमता हुआ आ गया हूँ। महाराजा के दर्शन करने की अभिलाषा थी।"

द्वारपाल भीतर गया और थोड़ी देर बाद वापिस लौट कर आया। उसने अभय से कहा—

"मैं सुरक्षा अधिकारी जी से पूछ कर आया हूँ, उन्होंने तुम्हारी मांग अस्वीकार कर दी है, इस कारण महाराजा से नहीं मिल सकोगे।"

अभय पर जैसे घड़ों पानी गिर गया। क्या अरमान लेकर वह सार्थवाह की हवेली से निकला, इस लम्बी यात्रा में कितने-कितने कष्ट सहे और अब यह हालत हो रही है ?

इन सैनिकों का वार्तालाप सुनकर अभय को पक्का विश्वास हो गया कि वसन्तपुर के नरेश उसके ज्येष्ठ भ्राता के अलावा अन्य कोई नहीं है। जैसे अथाह समुद्र पार करके किनारा पकड़ लेने पर एक डूबते हुए व्यक्ति को अपार हर्ष होता है, वैसे ही अपार हर्ष से अभय का हृदय ओत-प्रोत हो गया। अब तो वह अनिश्चय के समुद्र से पार उतर कर किनारे पर पहुंच ही गया था। जल्दी-जल्दी वहाँ से उठा और राजमहल की ओर चल दिया। मार्ग में सैनिकों व अनुचरों की कई शकभरी निगाहें उसे देख रही थीं किन्तु उसने किसी को नहीं देखा। वह तो शीघ्रातिशीघ्र अपने बड़े भाई से मिल लेना चाहता था।

राजमहल के मुख्य प्रवेश द्वार पर वह रोक दिया गया। उसकी दुर्दशा पर एक तिरछी सी नजर फेंक कर द्वारपाल ने पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं भीतर जाना चाहता हूँ।"

"क्या काम है ?"

"महाराजा से मिलना है।"

"सीधा महाराजा से ही काम है, पहले और किसी से नहीं मिलना है"—इस कथन से अभय ने महसूस किया कि द्वारपाल सन्देहवश ऐसी बात कर रहा है, क्योंकि सैनिकों के मुंह से जासूस वाली बात वह अभी-अभी ही सुन चुका था।

"हाँ, काम तो महाराजा से ही है"—कहने को तो अभय ने कह दिया किन्तु इस उत्तर से द्वारपाल का सन्देह और अधिक बढ़ गया—इसे अभय नहीं जान सका।

"कहाँ से आये हो और क्या नाम है ?"

इस प्रश्न का अभय से तुरन्त ही कोई उत्तर देते नहीं बना। नाम बताकर वह परिचय भी देदे तो क्या द्वारपाल उस पर विश्वास करेगा ? बाहर का हुलिया देखते हुए वह कटाक्ष अलग से करेगा। एक नाम बताने से ही काम नहीं चलेगा और स्थान, पिता आदि का सारा विवरण बताना उचित भी नहीं है। वह हिचकिचाहट में गिर गया। उत्तर न देना भी उचित नहीं था, अतः बोला—"वैसे ही घूमता हुआ आ गया हूँ। महाराजा के दर्शन करने की अभिलाषा थी।"

द्वारपाल भीतर गया और थोड़ी देर बाद वापिस लौट कर आया। उसने अभय से कहा—

"मैं सुरक्षा अधिकारी जी से पूछ कर आया हूँ, उन्होंने तुम्हारी मांग अस्वीकार कर दी है, इस कारण महाराजा से नहीं मिल सकोगे।"

अभय पर जैसे घड़ों पानी गिर गया। क्या अरमान लेकर वह सार्थवाह की हवेली से निकला, इस लम्बी यात्रा में कितने-कितने कष्ट सहे और अब यह हालत हो रही है ?

इन सैनिकों का वार्तालाप सुनकर अभय को पक्का विश्वास हो गया कि बसन्तपुर के नरेश उसके ज्येष्ठ भ्राता के अलावा अन्य कोई नहीं है। जैसे अथाह समुद्र पार करके किनारा पकड़ लेने पर एक डूबते हुए व्यक्ति को अपार हर्ष होता है, वैसे ही अपार हर्ष से अभय का हृदय ओत-प्रोत हो गया। अब तो वह अनिश्चय के समुद्र से पार उतर कर किनारे पर पहुंच ही गया था। जल्दी-जल्दी वहाँ से उठा और राजमहल की ओर चल दिया। मार्ग में सैनिकों व अनुचरों की कई शकभरी निगाहें उसे देख रही थीं किन्तु उसने किसी को नहीं देखा। वह तो शीघ्रातिशीघ्र अपने बड़े भाई से मिल लेना चाहता था।

राजमहल के मुख्य प्रवेश द्वार पर वह रोक दिया गया। उसकी दुर्दशा पर एक तिरछी सी नजर फेंक कर द्वारपाल ने पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं भीतर जाना चाहता हूँ।"

"क्या काम है ?"

"महाराजा से मिलना है।"

"सीधा महाराजा से ही काम है, पहले और किसी से नहीं मिलना है"—इस कथन से अभय ने महसूस किया कि द्वारपाल सन्देहवश ऐसी बात कर रहा है, क्योंकि सैनिकों के मुंह से जासूस वाली बात वह अभी-अभी ही सुन चुका था।

"हाँ, काम तो महाराजा से ही है"—कहने को तो अभय ने कह दिया किन्तु इस उत्तर से द्वारपाल का सन्देह और अधिक बढ़ गया—इसे अभय नहीं जान सका।

"कहाँ से आये हो और क्या नाम है ?"

इस प्रश्न का अभय से तुरन्त ही कोई उत्तर देते नहीं बना। नाम बताकर वह परिचय भी देदे तो क्या द्वारपाल उस पर विश्वास करेगा ? बाहर का हुलिया देखते हुए वह कटाक्ष अलग से करेगा। एक नाम बताने से ही काम नहीं चलेगा और स्थान, पिता आदि का सारा विवरण बताना उचित भी नहीं है। वह हिचकिचाहट में गिर गया। उत्तर न देना भी उचित नहीं था, अतः बोला—"वैसे ही घूमता हुआ आ गया हूँ। महाराजा के दर्शन करने की अभिलाषा थी।"

द्वारपाल भीतर गया और थोड़ी देर बाद वापिस लौट कर आया। उसने अभय से कहा—

"मैं सुरक्षा अधिकारी जी से पूछ कर आया हूँ, उन्होंने तुम्हारी मांग अस्वीकार कर दी है, इस कारण महाराजा से नहीं मिल सकोगे।"

अभय पर जैसे घड़ों पानी गिर गया। क्या अरमान लेकर वह सार्थवाह की हवेली से निकला, इस लम्बी यात्रा में कितने-कितने कष्ट सहे और अब यह हालत हो रही है ?

मुंह तक आया हुआ कौर झपट कर छीना जा रहा है। अब क्या होगा? उसकी दशा सांप-छछून्दर जैसी हो गई है कि न तो उसकी असलियत खोलने की हालत है और न इस हालत में मिल पाने की उम्मीद है। बड़े भाई के सिवाय अब संसार में उसका है ही कौन? कैसी हृदय-विदारक विडम्बना है कि उन्हीं बड़े भाई से वह मिल भी नहीं पायगा? वह कुछ पलों के लिये जड़वत् सा हो गया। आखरी प्रयास के रूप में उसने द्वारपाल से पुनः कहा—"भाई, मुझे आपके सुरक्षा अधिकारी जी से तो मिलवा दो। मैं उन्हें ही निवेदन करूंगा कि वे मुझे महाराजा से मिला दें।"

द्वारपाल ने कोई बहस नहीं की और उसे सुरक्षा अधिकारी जी के पास ले गया। अभय ने उनके सामने अपने निवेदन को दोहराया। सुरक्षा अधिकारी ने भौहें चढ़ा कर तीखे स्वर में कहा—"अपनी हालत तो देखो और महाराजा से मिलने चले हैं? क्या महाराजा के विरुद्ध कोई षड्यंत्र रच कर तो नहीं आये हो? सच-सच बता दो, किस राज्य ने तुम्हें जासूस बनाकर भेजा है? हमें मूर्ख बनाना चाहते हो।"

सुरक्षा अधिकारी के आरोप का अभय क्या उत्तर देता और उत्तर देता भी तो क्या उससे मामला सुलझ जाता? वह सरलता से ही बोला—"मैं तो सीधा-सादा मनुष्य हूँ। महाराजा की प्रशंसा सुनी थी अतः उनके पुण्य दर्शन करना चाहता था। आप यदि मेरी इच्छा पूरी नहीं कर सकते हैं तो कोई बात नहीं, मैं वापिस लौट जाऊंगा।"

"ठीक है, चले जाओ।" हृदयहीन सुरक्षा अधिकारी ने कहा और अभय के सामने वापिस लौट पड़ने के सिवाय कोई चारा नहीं रहा।

जब अभय बाहर चला गया तो सुरक्षा अधिकारी ने अपने एक सैनिक को बुलाया और आदेश दिया—"अभी जो आदमी आया था उसकी स्थिति सन्देहात्मक प्रतीत होती है। तुम उसका पीछा करो और जरूरत पड़े तो उसे सही सबक भी सिखाओ।"

"जो आज्ञा"—कह कर सैनिक बिना उसे जताए अभय का पीछा करने लगा।"

घोर निराशा में डूबा हुआ अभय अपने लड़खड़ाते हुए कदमों से गिरता-पड़ता धर्मशाला में पहुंचा। आज पूरा दिन कितना अशुभ था? सुबह भाई साहब से मिलने की उमंग में दिल की खुशी का ठिकाना नहीं था तो अब शाम पड़ते-पड़ते खुशी की जगह घोर निराशा का असह्य दुःख पल्ले पड़ गया है। दुःख भी ऐसा जो कब मिटेगा अथवा मिटेगा भी या नहीं—कुछ कहा नहीं जा सकता। वह मुंह लटका कर धर्मशाला की चबूतरी पर बैठ गया तो बैठा ही रहा। रात का एक पहर बीत गया तब भी उसी तरह बैठा रहा। उसे जैसे कुछ सुध-बुध ही नहीं थी।

अभय अपनी निराशा में खोया हुआ था किन्तु पीछा कर रहे सैनिक नें उसका विपरीत अर्थ लगाया। उसने सन्देह किया कि यह व्यक्ति हकीकत में जासूस लगता है जो अपने षड्यंत्र के सफल न होने से निराश हो गया है और इतना निराश कि अपना भान ही भुला बैठा है। हो सकता है कि अपने राज्य में जाने पर इसको कठिन दण्ड मिलने का भय

हो और उसी की चिन्ता में यह डूबा हुआ है। उसने अपना कर्त्तव्य पूरा करने की ठान ली।

वह सैनिक अभय के पास गया और बोला—"आप मेरे साथ चलिये। आप पर हमें सन्देह है। मैं सुरक्षा सैनिक हूँ और आपसे जरूरी पूछताछ करना चाहता हूँ।"

"मैं सीधा सादा परदेशी हूँ, मेरे से भला क्या पूछताछ करेंगे ?"

"बहस करने की जरूरत नहीं, सीधे से मेरे साथ चले चलो।"

अभय बड़ी विपदा में फंस गया। निराशा के दुःख के ऊपर यह और क्या मुसीबत ? जले पर नमक क्यों ? लेकिन क्या करे ? उसके आराध्य के समान बड़े भाई इस नगर के महाराजा और वह उनका अत्यन्त प्यारा, छोटा भाई उन्हीं की आज्ञाधारियों से पीड़ित हो रहा है, पर कोई उपाय नहीं है। यह किस तरह की मजबूरी है ? अभय कुछ न कर सका, सैनिक के साथ हो लिया।

सैनिक उसे नगर के प्रवेश-द्वार पर ले गया और वहाँ के दो सैनिकों को बुलाकर पूछताछ करने लगा—"सच-सच बतादो, तुम किस राज्य के जासूस हो ?"

अभय को तैश आ गया, फिर भी वह गुस्से को दबा कर बोला—"क्या बात कहते हैं कि मैं किसी राज्य का जासूस हूं ? मैंने तो महाराजा की प्रशंसा सुनी तो मिलने के लिये चला आया। आप व्यर्थ में ही मुझ पर सन्देह कर रहे हैं।"

सैनिकों का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि वे उल्टा ही सोचते हैं। अभय ने सफाई दी तो उनका सन्देह और बढ़ गया। वे क्रूरता पर उतारू हो गये। तीनों सैनिकों ने अभय को उठाया और नगर के बाहर पटक कर फिर धमकाना शुरू कर दिया कि वह अपनी असलियत का राज खोलता है या नहीं ? कोई राज होता तो वह खोलता और सैनिक सही बात मानने को तैयार नहीं। अभय की इनकारी पर तीनों ने उसकी पिटाई शुरू कर दी और पीटते-पीटते इतने नृशंस हो गये कि भान ही भूल गये। वे तब तक पीटते रहे जब तक कि अभय अचेत न हो गया।

अचेत होते ही सैनिक घबराये कि उनके हाथ से 'अति' हो गई है और इसके लिये उन्हें दंड मिल सकता है। तब उन्होंने सोचा—यह तो परदेशी है, इसे कौन जानता है ? यह सोचकर उन्होंने अभय की गठरी बना कर पास के बड़े गढ्ढे में उसे फेंक दिया और नगर के भीतर चले गये।

बड़े भाई के राज्य में बड़े भाई का दीवाना छोटा भाई गढ्ढे में अचेत पड़ा रहा असहाय सा मृत्यु मुख में समाया हुआ।

१७

हमेशा की तरह पन्ना कुम्हार रात्रि के पिछले पहर में उठा और नगर के बाहर मिट्टी खोदने के लिये पहुँचा। उसने यह कल्पना में भी नहीं सोचा था कि जिस पथिक के साथ वह कल ही एक रात व एक दिन बिता चुका है तथा जिसकी सज्जनता, मधुरता तथा शालीनता से जो परिचित ही नहीं, अतिशय रूप से प्रभावित हो चुका है, वही गौरवशाली पुरुष उसे मिट्टी खोदने वाले गढ्ढे में यों अचेत-अवस्था में पड़ा हुआ मिलेगा। वह तो हक्का-बक्का रह गया और 'क्या करे'— यह भी उसकी समझ में नहीं आया। छोटा आदमी होने के कारण भयभीत भी हो गया कि ऐसे अच्छे आदमी के साथ इतना बुरा वर्ताव किसने और क्यों किया ?

पन्ना कुम्हार के मन में यह बात भी उठी कि अगर उसके आमन्त्रण पर यह पथिक उसके यहाँ ही मेहमान हो जाता तो यह दुर्घटना बच जाती। एक दिन रात के सत्सम्पर्क से ही उसका हृदय पिघल गया और उसमें हिम्मत आ गई कि जो होगा, देखा जायगा किन्तु वह इस श्रेष्ठ पुरुष की सेवा अवश्य करेगा। ऐसे पुण्य कार्य की वह किसी भी दशा में अनदेखी नहीं कर सकता। वह इसके लिये कैसा भी परिणाम भुगतने के लिये तैयार हो गया।

वह जल्दी-जल्दी उस गहरे गड्ढे में उतरा और उसने उस पथिक को जब समीप से देखा तो उसका दिल दहल उठा। ऐसे सुन्दर और सुकोमल शरीर पर गहरी चोटों के निशान, अंग-अंग सूजे हुए और खून से लथपथ—हिलने डुलने तक का सामर्थ्य भी नहीं रहा। उसने उस क्षत-विक्षत शरीर पर अपना स्नेहिल हाथ फेरते हुए मीठे स्वर में पूछा— "भाई साहब, आपके साथ ऐसा व्यवहार किस दुष्ट ने किया है ?"

रात की ठंडक से अभय की चेतना कुछ-कुछ लौटी थी। हाथ के स्पर्श से वह चौंका और उसने आंखें खोलकर देखा तो वह पुलक उठा—ज्येष्ठ भ्राता के इस राज्य में एक सहृदय व्यक्ति तो मिला जो उसे अपने तरल स्नेह से भिगो रहा है। वह बोला—"पन्ना भाई, कोई दुष्ट नहीं होता। यह सब कर्मों का खेल है। जो पहले किया जा चुका है, उसका फल भोगना ही पड़ता है।"

"ये सब बातें बाद में करेंगे। पहले तो मैं अभी ही आपको अपने घर ले चलता हूँ ताकि आपकी परिचर्या और सेवा करूं। आपके बदन में बहुत दर्द उठ रहा होगा।"

"यही बात ठीक है, भाई। मैं तुम्हारे कंधे का सहारा लेकर धीरे-धीर चल सकूंगा। अभी अंधेरे-अंधेरे ही घर पहुँच जावें"—अभय ने धीरे से कहा और आगे बोला—"घर चल कर मैं तुम्हें अपने साथ बीती सारी बात बताऊंगा।"

अभय कठिनाई से खड़ा हुआ और पन्ना कुम्हार के कंधे पर अपना एक हाथ टिका कर धीरे-धीरे चलने लगा। एक-एक कदम पर उसके मुंह से कराह फूट पड़ती थी। सैनिकों ने इतनी निर्ममतापूर्वक पिटाई की थी कि उसकी याद आते ही शान्तचित्ती अभय की आंखों में भी ललाई उभर आती थी। एक ओर तो बड़े भाई के सुशासन की सराहना और दूसरी ओर उनके ही सैनिकों की एक परदेशी के साथ ऐसी प्रताड़ना—सोच-सोचकर उसका मन रो उठता था। फिर सोचता—इसमें बड़े भाई का क्या दोष? उसे खबर हो जाती तब तो कोई बात भी थी। गहरे उतर कर फिर सोचता—वास्तव में तो इसमें सैनिकों का भी क्या दोष? उनके महाराजा और राज्य की सुरक्षा को जब दूसरे राज्यों के जासूसों से खतरा हो और वह भी जब ऐसा जासूस समझा गया हो तो जासूस के प्रति कोई भी दया दिखलाने का राज्य-धर्म नहीं है। उसे वह अपने ही पूर्वकृत कर्मों का फल समझे और समझे क्या? कर्मों का फल ही होता है जो भांति-भांति के रूपों में प्रकट होता है। उसने अपने अशान्त हृदय में शान्ति का संचार किया और उसी शान्ति से शरीर की पीड़ा को सहने लगा।

घर पर पहुंचकर पन्ना ने अपनी गृह-स्थिति के अनुसार अभय के लिए सोने की व्यवस्था कर दी। पन्ना जल्दी-जल्दी एक जानकार को बुला लाया और उसके कहे अनुसार लेप व सेक करने लगा। सारे घर वाले अभय के एक या दूसरे काम में जुट गये। उनकी हार्दिकता से अभय का रोम-रोम सिहर उठा।

अभय मन ही मन सोचने लगा—यह मनुष्य भी क्या है जो अपनी समाज का सही वर्गीकरण नहीं कर पाता है। उसने अपनी ही समाज के किन्हीं चन्द लोगों को बड़े आदमी मान रखा है और श्रम शक्ति की पूजा करके न्याय और नीति की रोटी खाने वाले बहुसंख्यक लोगों को वही मनुष्य छोटे आदमी मानकर चलता है। यह मनुष्य का भ्रम है जो उसे और उसकी समाज को रात-दिन छलता रहता है। गुणों और कार्यों के अनुसार वर्ग बनाने की शिक्षाओं के बावजूद वह पुनः पुनः अर्थ को ही वर्गीकरण का आधार बनाता रहता है। जो सत्ता और सम्पत्ति के स्वामी होते हैं या उन्हें प्राप्त करने का सामर्थ्य रखते हैं, वे अपनी अनीति से बड़े आदमी कहला कर शेष लोगों का दमन करते रहते हैं। उनके उस शक्ति प्रयोग से जो सत्ता और सम्पत्ति से अभावग्रस्त होते हैं, भयभीत हो जाते हैं तथा अपने आपको छोटे आदमी मानकर इन 'बड़ों' के अत्याचार सहने की मजबूरी में डूब जाते हैं। उन 'बड़ों' के दंभी आचरण के सामने इस छोटे आदमी पन्ना कुम्हार का आचरण

कितना सहज, स्नेहिल और सुखद है ? सारे घर वाले कितने सीधे और सुस्वभावी हैं ? मेरे जैसे परदेशी से उनका क्या स्वार्थ जो मेरी ऐसी सेवा करें ? किन्तु स्वार्थ तो ये बड़े आदमी देखते हैं जो अपना स्वार्थ देखे बिना प्रायः एक पग भी आगे नहीं धरते। छोटा आदमी स्वार्थ नहीं, अधिकांश परमार्थ देखने का प्रयास करता है चाहे उसके पास साधनों का अभाव हो या एकदम सीमित साधन हों। वह हृदय से परार्थ की ओर झुका रहता है।

उसके मन में यह विचार भी उठा कि अभी तक पन्ना को यह रहस्य ज्ञात नहीं है कि उसने जिस व्यक्ति को अपने घर में शरण दे रखी है, वह नगर के अधिकारियों की नजर में एक सन्देहास्पद व्यक्ति है। इस तथ्य से उसको सावधान करना जरूरी है, नहीं तो उसके साथ वह भी खतरे में पड़ सकता है।

"भाई साहब, अब आपकी तबियत कैसी है ?"—बाहर से आते ही पन्ना ने अभय से उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा।

"भाई पन्ना, तुम्हारी सहृदयता से मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ। अब तो मैं तुम्हें यहां घर पर बैठ कर तुम्हारे काम में मदद भी कर सकता हूँ।"—हँसते हुए अभय ने उत्तर दिया।

"खूब कहा भाई साहब आपने कि आप कुम्हारी करेंगे ? इसे तो हमसे मत छीनिये। आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष की सेवा करने को हम हमारा सौभाग्य मानते हैं। आपका स्वास्थ्य ठीक लगता हो तो आप बाहर उद्यान आदि में घूमने जाया कीजिये।" उसने सुझाव दिया।

अपनी बात को कहने का ठीक अवसर देख कर अभय ने कहा—"भाई, मैं तुम्हें एक बात बताना चाहता हूँ। अपन दोनों जब बसन्तपुर साथ-साथ पहुँचे थे तब तुम तो अपने घर चले आये किन्तु यहाँ के अधिकारियों ने मुझे किसी दूसरे राज्य का जासूस समझ लिया। मेरे साथ यह दुर्व्यवहार इसी गलत-समझ के कारण किया गया था। इस कारण मेरा अभी बाहर जाना ठीक नहीं रहेगा लेकिन तुम भी इस स्थिति का खयाल रखना।"

"अच्छा तो ऐसी बात थी। आप चिन्ता न करें, मैं पूरी सावधानी रखूंगा। लेकिन आप किसी तरह का संकोच न करें और मेरे घर पर सुखपूर्वक बिराजें। मैं आपको ऐसी स्थिति में नगर छोड़कर भी जाने नहीं दूंगा।" चिन्तापूर्वक पन्ना ने कहा।

अभय ने गहरा आभार दिखाते हुए कहा—"भाई, जब तक तुम्हारे अन्न-जल का संयोग है, तब तक ले ही रहा हूँ।"

फिर दोनों बहुत देर तक बैठे-बैठे तरह-तरह की बातें करते रहे। अभय की विशिष्टता से सभी प्रभावित थे और पन्ना की व सारे घरवालों की सहज स्नेहशीलता से अभय अभिभूत था। छोटे आदमियों की सहानुभूति उसे बड़े आदमियों से भी बहुत बड़ी समझ में आ रही थी।

× × ×

बसन्तपुर में ही धनदत्त नाम का एक बहुत बड़ा व्यवसायी था। बसन्तपुर नगर समुद्र तट पर बसा हुआ था अतः उसका व्यापार दूर-दूर के देशों तक फैला हुआ था। वह वहाँ से जहाज में तरह-तरह का माल भर कर ले जाता था और उसे दूर देशों में बेचकर लाभ उठाता था तथा लौटते हुए उन देशों का बिक्री योग्य माल भर कर इधर ले आता था और उसे बेच कर दोहरा लाभ कमाता था। इस भरे पूरे व्यापार के कारण वह बहुत ही समृद्धिशाली था। उसके पास बड़ी संख्या में अनुचर और कार्यकर्त्ता थे जो उसके व्यापार-कार्य में लगे हुए थे। अपने धन बल के कारण उसका राज्याधिकारियों तथा कर्मचारियों में बड़ा दबदबा था। इससे उसके कई अच्छे-बुरे काम आसानी से निकल जाते थे। उसको इस बात का कोई विचार नहीं था कि वह धनार्जन नीतिपूर्वक ही करे। वह तो अधिक से अधिक धन संगृहीत करके अपने बड़प्पन को बढ़ाते रहने की फिक्र में लगा रहता था। इस कारण उसके अधिकतर कार्य अनैतिकता से ही पूरे होते थे। उसके दिल में नैतिकता का खयाल नहीं था और दया भी नहीं थी। किसी भी रीति से कमाया जाय और कमाने के लिये कैसी भी अनीति की जाय—वह हमेशा तैयार रहता था। उसका एक ही ध्येय था—धन, अधिक धन और अधिक से अधिक धन। धन ही उसका आराध्य देव था। धन ही में उसका मन लगा रहता था और धन कमाने में ही वह रमता रहता था।

कुछ दिनों तक अपने नगर में रहकर वह जहाज लेकर परदेश के लिये प्रस्थान करने की तैयारियाँ करने लगा। जहाज पर ले जाया जाने वाला माल लादा जा रहा था और अनुचर वगैरा वहाँ की व्यवस्थाएँ जमाने में लगे हुए थे। जब सारी तैयारियाँ पूरी हो गईं तो धनदत्त सेठ भी जहाज पर पहुँच गया और जहाज को रवाना कर देने का उसने आदेश दे दिया।

लेकिन यह क्या ? जहाज अपनी जगह से टस से मस नहीं हो रहा था। जहाज के पाल फिर से ठीक किये गये और चक्र को तेजी से घुमाया गया परन्तु कोई असर नहीं। अन्य सारे प्रयत्न कर लिये गये लेकिन जहाज जरा भी नहीं सरका। प्रस्थान की खुशियों के बीच एक अजीब सी मायूसी छा गई। ऐसा पहले कभी भी नहीं हुआ था और इस कारण घबराहट बहुत ज्यादा फैल गई।

धनदत्त ने ज्योतिषियों को बुलाया और ग्रहोपचार कराया, कोई लाभ नहीं हुआ। तब उसने नगर के एक प्रसिद्ध तांत्रिक को बुलाया। उसने जहाज पर अपना मंत्र प्रयोग करके नई सूचना दी—"सेठ साहब, जहाज को प्रेत बाधा लग गई है। अब प्रेत को तुष्ट

किये बिना जहाज अपनी जगह से तनिक भी नहीं हिल सकेगा।" सेठ ने घबरा कर पूछा—"फिर अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? हम प्रेत बाधा दूर करेंगे। हम जानते हैं कि धन खर्च करने में तो आप किसी तरह नहीं हिचकोगे, लेकिन एक हिचकिचाहट बड़ी जबरदस्त है, वह मैं आपको बतादूं।"

"बाबा, आप फिक्र न करें। धनदत्त सेठ को किसी बात की कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती। उसकी ताकत बहुत ज्यादा है और उसके हाथ बहुत लम्बे हैं। आप तो अपनी जरूरत बताइये।"

"तो सुनो सेठ. इस तंत्र प्रयोग के लिये 'बत्तीस लक्षणों वाला पुरुष चाहिये' जिसकी बलि देने पर ही प्रेत बाधा दूर हो सकेगी।'

सेठ यह सुनकर सकपका गया। पुरुष की बलि और वह भी बत्तीस लक्षणों वाला होना चाहिये ? यह पूर्ति कैसे और कहाँ से हो सकेगी ?

सारे जहाज पर यह बात फैल गई। सभी चिन्तित हो गये कि अब बिना यह तंत्र किये यह जहाज चल नहीं सकेगा। सभी लोग सेठ के सामने उपस्थित हुए यह जानने के लिये कि अब सेठ क्या उपाय सोच रहे हैं ? सेठ ने वैसे ही कह दिया कि तंत्र की इस बलि वाली बात कोई कहीं प्रकट न करे क्योंकि यह अपराध था। उसने यह भी संकेत दिया कि अगर किसी को ऐसे बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष की जानकारी मिले तो वह उसे बतावे। सेठ ने कहा कि वह स्वयं भी प्रयत्न करने के लिए जा रहा है।

जब सारे अनुचर व कर्मचारी इधर-उधर चले गये और सेठ भी उठकर जाने ही वाले थे कि उनका एक अनुचर एकदम सेठ के पास में आ गया और धीरे से बोला—"सेठ साहब, ऐसा बत्तीस लक्षणों वाला विलक्षण पुरुष मेरी जानकारी में है लेकिन मैं बताऊं तो मुझे क्या मिलेगा ?"

"मूर्ख, जल्दी बता। मुंहमांगा धन मिलेगा। लेकिन एक बात है कि ऐसा पुरुष यहाँ का निवासी न हो तो बहुत अच्छा ताकि बलि की घटना बाहर नहीं फूटे। वैसे जो भी हो, तू बतादे। यहाँ का ही होगा तो वह बोलेगा जिस भाव खरीद लूंगा और तब भी नहीं मानेगा तो राज्य के सारे अधिकारी अपने ही हैं, उनकी जेबें भर कर उसको जबरदस्ती पकड़ लाऊंगा। तुम जल्दी बताओ।" यह कहते हुए धनदत्त सेठ ने तुरन्त मुद्राओं से भरी हुई एक थैली उस अनुचर के सामने पटक दी।

अनुचर तो थैली को देखते ही बाग-बाग हो उठा। वह सेठ के और नजदीक आ गया और कान में मुंह डाल कर कहने लगा—"सेठ साहब, मेरे पड़ोस में एक पन्ना कुम्हार रहता है. उसके घर में मैंने एक राजकुमार जैसे पुरुष को देखा है जो भीतर ही भीतर

रहता है—बाहर कतई नहीं निकलता। वहाँ उसे काफी दिन हो गये हैं। कोई परदेशी लगता है लेकिन है बत्तीस लक्षणों वाला पुरुष। परदेशी है सो या तो पट जायगा या आप पन्ना कुम्हार को पटा लें अथवा अधिकारियों के जोर से पकड़वा लें। आपका काम हो जायगा।" सेठ को उसकी बात जम गई। वह उसी समय इस कोशिश के लिये निकल पड़ा।

पैसा पानी में भी रास्ता बना लेता है—इस उक्ति के मर्म को धनदत्त भलीभांति जानता था। यह मर्म उसके प्रतिदिन के अनुभव का वस्तु-विषय भी था। बहुमूल्य भेंट लेकर महाराजा से मिलने जाता तो वे तुरन्त बुला लेते थे। द्वारपाल को मुद्राएँ दे दो तो वह खुश। और मुद्राएँ देने से भला कौन खुश नहीं होता और काम नहीं करता? वह समझता था कि यह दुनिया पैसे की गुलाम होती है। अतः वह भरपूर मुद्राएँ साथ में लेकर चला।

धनदत्त सेठ सीधा पन्ना कुम्हार के घर अकेला ही पहुंचा। आवाज देने पर पन्ना बाहर निकल कर आया और सेठ को देखते ही नम्रता से बोला —

"आपने यहाँ पधारने का कष्ट कैसे किया? मुझे ही बुला लिया होता—मैं सेवा में उपस्थित हो जाता।"

सेठ ने खुशामदी लहजे में कहा—"एक ही बात है पन्ना भाई। मुझे मिलना था, मैं ही चला आया।"

"मुझे सेवा फरमाइये।"

"मैंने सुना है, तुम्हारे यहाँ कोई श्रेष्ठ पुरुष मेहमान की तरह रह रहा है, क्या यह सही है?"

"होगा सेठ साहब, उनसे आपको क्या? आपकी सेवा के लिये तो मैं हाजिर हूँ।"

"मुझे उनसे मिला तो दो—मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"—सेठ ने ऐसे भोलेपन का नाटक करके कहा कि भोला पन्ना राजी हो गया। वह सेठ को भीतर ले गया। सेठ को उसने अभय से मिला दिया। अभय को देखते ही सेठ भीतर ही भीतर खुश हो गया कि जैसा पुरुष उसे चाहिये था बत्तीस लक्षणों वाला—वह उसे मिल गया है। अभय को देखकर उसने अनुमान लगा लिया कि ऐसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति से इस तरह की सीधी बात करनी ठीक नहीं रहेगी। यह काम तो छल-बल से ही किया जाना चाहिये। अतः वह पन्ना को साथ लेकर उसके घर से अपने घर पहुंच गया।

"पन्ना भाई, आपको मेरा एक काम करना होगा।"

"आप हुकुम दीजिये, जरूर करूंगा।"

सेठ ने तब एक लाख मुद्राओं की थैली पन्ना कुम्हार के सामने रखी और आजीजी करते हुए कहा—"ये एक लाख मुद्राएँ ले लो और बाद में मैं तुम्हें एक लाख मुद्राएँ और दे दूंगा। काम यह है कि तुम्हारे यहां जो वह मेहमान है, उसे तुम मुझे सौंप दो।"

"क्यों साहब, मेरे मेहमान से आपको क्या काम है? आपके काम के लिये मैं तैयार हूँ न!"

"तुम्हारा काम नहीं है, उससे ही काम है।"

"काम तो बताइये। हो सकता है कि मैं ही कर सकूं, क्योंकि मैं अपने मान्य मेहमान को कोई तकलीफ नहीं देना चाहता हूँ।"

"तकलीफ का काम ही नहीं है पन्ना भाई, बलि देने का काम है। मेरा जहाज फंस गया है और उसको चलाने के लिये तांत्रिक को बलि देने के लिये बत्तीस लक्षणों वाला श्रेष्ठ पुरुष चाहिये जैसा कि तुम्हारा मेहमान है।"

वह पन्ना कुम्हार यह सुनते ही एक बार तो हक्का बक्का हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण क्रोध से लाल पीला हो गया। उसी आवेश में वह बोल पड़ा—"यह कहते हुए आपको लज्जा नहीं आई, सेठ साहब कि मैं अपने मान्य मेहमान को बलि चढ़ाने के लिये आपको सौंप दूं और वह भी पैसों के मोल? क्या आपने मुझे इतना नीच समझा? बड़े आदमी चाहें जो कर सकते हैं, हम छोटे आदमी इतने गिरे हुए नहीं होते"—यह कह कर उसने मुद्राओं की थैली झटके से सेठ की तरफ सरका दी और खुद चले जाने के लिये उठ खड़ा हुआ।

सेठ ने भी तैश खाया और चिल्लाते हुए कहा—"एक बार फिर सोच ले कुम्हार कि तेरी किस्मत जाग रही है, वरना मैं तो डंडे के जोर पर उसे तेरे घर से उठवा ही लूंगा और उसमें तू भी पिट जायगा। यह मौका है—या तो अपने को बना ले वरना मैं तुझे मिटा दूंगा।"

"सेठजी, आपके मन में आवे सो कर लेना। गरीब न लोभ से और न ही भय से अपना धर्म छोड़ता है। मैं अपने प्राण रहते तक अपने मान्य मेहमान को घर से ले जाने नहीं दूंगा—यह आप अपने मन में लिख लें"—पन्ना ने गौरव के साथ यह कहा और सेठ की हवेली से जल्दी-जल्दी बाहर निकल गया।

धनदत्त ने सोचा कि अब अधिकारियों की मदद ही लेनी पड़ेगी। वह सुरक्षा अधिकारी के पास पहुंचा जो उसका खास दोस्त था। जाकर उसने उसे अपनी समस्या बताई। समस्या बता कर उसने उसके सामने मुद्राओं की भारी थैली भी रखी। इसके लिये ही तो वह अधिकारी के घर पहुंचा था। पूरी बात सुनकर उसने सेठ का काम पूरा करने की हामी भर ली। सेठ से उसने जान ही लिया था कि कोई परदेशी है इसलिए कोई जोखिम

भी नहीं है। बिना जोखिम के लाखों मिल रहे थे—फिर क्या हिचक थी ? अधिकारी ने अपने उसी सैनिक को बुलाया, जिसे उसने पहले अभय का पीछा करने के लिये भेजा था और जिसने अभय को क्रूरतापूर्वक पीट कर उसके संज्ञाहीन शरीर को गहरे गढ्ढे में फेंक दिया था।

सैनिक के आने पर सुरक्षा अधिकारी ने उसे मामला समझाते हुए कहा—"देखो, तुम अभी ही सेठ साहब के साथ जाओ। ये तुमको पन्ना कुम्हार के घर पर ले जायेंगे। वहाँ कोई परदेशी पुरुष है जिसकी इनको वलि चढ़ाने के लिये आवश्यकता है। तुम बलपूर्वक उस पुरुष को वहाँ से निकाल सेठ साहब के जहाज पर पहुंचा देना। यह काम शाम के बाद जरा अंधेरा हो जाय तब करना। अगर पन्ना कुम्हार तुम्हारे काम में कोई रुकावट डाले तो उससे भी निपट लेना। अपने साथ एक सैनिक और ले जाना।" धनदत्त सेठ तब उस सैनिक को अपने साथ लेकर अपनी हवेली पर चला गया ताकि शाम ढलने पर काम करने के लिये जावे। इस बीच उसने उन सैनिकों को उनकी आशा से बहुत अधिक देकर खूब खुश कर लिया।

दिया-बत्ती का वक्त हुआ ही था कि पन्ना का दरवाजा खटखटाया गया। दो सैनिकों के साथ सेठ को देखकर वह सारा माजरा समझ गया, इस कारण उसने तड़ाक् से दरवाजा वापिस भीतर से बंद कर लिया। क्या सैनिक अपना ऐसा अपमान सहन कर सकते थे ? और वह भी एक छोटे आदमी के हाथों। उन्होंने चिल्लाकर पन्ना को पुकारा। वह नहीं बोला तो उन्होंने अपने भालों से किवाड़ चूल पर से उतार लिये और घर के भीतर घुस गये।

सैनिकों ने उसी व्यक्ति को देखा तो वे दंग रह गये। यह तो वही है जो जासूस समझा गया था और जिसकी उन्होंने जी भर कर पिटाई की थी। इसी को ले जाना है तो फिर क्या खतरा है ? उस सैनिक ने कहा—"सीधे-सीधे मेरे साथ चले चलो, वरना वैसी ही दुर्गत फिर बना दूंगा। वैसे भी तुम जासूस हो, तुम्हारी बात कोई सुनेगा भी नहीं। सीधे-सीधे नहीं चलोगे तो यह पन्ना भी तुम्हारे नाम पर बरबाद कर दिया जायगा।" अन्तिम बात सुनते ही अभय उठ खड़ा हुआ और बोला—"चलिये, मैं आपके साथ चल रहा हूं—आप मेरे उपकारी मेजवान को किसी तरह न सतावें।"

इस पर पन्ना अपने पैर मजबूती से जमा कर सैनिक और अभय के बीच में खड़ा हो गया तथा कहने लगा—"आप मेरे मान्य मेहमान को मेरी लाश पर से ही ले जा सकेंगे। मेरे प्राण रहते मैं इनको अपने घर से नहीं जाने दूंगा। आप ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को अपने स्वार्थ के लिये बलि दे देना चाहते हैं—ऐसा अधर्म मैं कतई नहीं होने दूंगा।"

पन्ना की बात सुनकर अभय चौंका। यह बलि का क्या मामला है ? सैनिक उसकी वलि दिलाने के लिये उसे ले जा रहे हैं तो क्या इस राज्य में धन और छल का बल भी चलता है ? उसने अपरिचित सेठ की ओर देख कर पूछा—"यह क्या मामला है ? मुझे बता तो दीजिये।"

"अरे भाई, मेरा जहाज समुद्र तट पर फंसा पड़ा है। तांत्रिक कहता है कि बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष की बलि देने से ही वह चलेगा और तुम बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष मुझे मिल गये हो"—सेठ ने सोचा कि असल बात खोलकर रख ही देनी चाहिये।

अभय तो सत्साहसी था, बोला—"सेठजी, मेरी बलि चढ़ाने से आपको लाभ होता हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु आपको अपना जहाज ही चलाना है या बलि ही देनी है?"

"नहीं भाई, जहाजं ही चलाना है। मुझे आप से कोई शत्रुता थोड़े ही है? मगर जहाज तो चलेगा ही बलि चढ़ाने का बाद—सो वह तो देनी ही होगी।"

कुछ देर सोच कर अभय ने प्रेमपूर्वक पन्ना को हटा कर कहा—"पन्ना भाई, आप मेरे परम उपकारी हो। मेरे लिये आपका कोई अनिष्ट हो—यह मैं कतई सहन नहीं कर सकूंगा। इसलिये आप मुझे जाने दीजिये। मेरा आयुष्य बल लम्बा हुआ तो कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।"

फिर पन्ना को गले लगा कर अभय सैनिकों और सेठ के साथ मानों कि फिर मृत्यु-मुख में चला गया।

१८
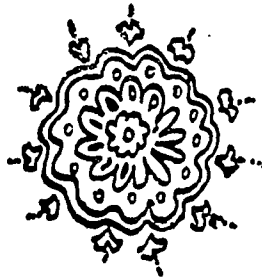
"ह्रीं स्रीं माकाला पाकाला समुद्र प्रेतः निवारणः स्वाहा....स्वाहा....स्वाहा"

जहाज के खुले भाग पर तांत्रिक का अनुष्ठान चल रहा था। हजारों रुपयों की सामग्री पड़ी हुई थी। तांत्रिक ने अपने सामने ही बलि-पुरुष अभय को भी बिठा रखा था। स्नान कराकर अभय को लाल वस्त्र पहिना रखे थे तथा मस्तक पर लाल टीका कर रखा था। तांत्रिक मंत्र पढ़ता जाता था और सामग्री अभय के हाथ से छुआ-छुआ कर अग्नि-अर्पण करता जाता था।

सामने ही धनदत्त सेठ और उसके जहाज के अनुचर-कर्मचारी बैठे हुए थे—तांत्रिक की तरफ नजर गड़ाए कि कब तंत्र का असर हो और यह जहाज चल पड़े। आखिर सेठ को इस तंत्र प्रयोग के लिये बहुत धन और श्रम का व्यय करना पड़ा था।

अभय 'बलि-पुरुष' के रूप में सामने अवश्य बैठा हुआ था किन्तु उसकी मानसिकता और आत्मा महामंत्र के पाठ और चिन्तन में गहराई तक तल्लीन थी। वह तो एक सधा हुआ साधक था। मृत्यु ने अब तक उसको कई बार डराना चाहा था, किन्तु वह क्या कभी भी डरा है? उसने तो साहसपूर्वक मृत्यु का वरण करने के लिए हर वक्त अपना कदम आगे बढ़ाया है लेकिन हर वक्त मृत्यु ही उस शूरवीर से डरकर वापिस लौट कर भागती रही है। उसका आत्म-बल सदा ही अजय रहा है। आज भी वह निर्भय, निःशंक होकर आन्तरिक साधना में निमग्न है—बाहर की बाधाएँ उसके लिए नगण्य हैं। समभावी अभय को न जीवन के प्रति मोह है और न मृत्यु के प्रति भय। न जीवन का हर्ष और न मृत्यु का विषाद। जीवन जब तक जीना है—एक शूरवीर की तरह सभी बाधाओं पर विजय पाते हुए जीना है और मरने का समय है तब भी उसी शूरवीरता से मोह के समग्र बंधनों को हटाकर मरना है। ऐसा होता है एक शूरवीर का जीवन और मरण। अभय की ऐसी शूरवीरता तो एकाधिक बार प्रकट हो चुकी है अतः आज की उसकी दृढ़ता में सन्देह का कोई स्थान ही नहीं माना जा सकता। वह उस अनुष्ठान को एक तमाशे के रूप में देख रहा था।

"सावधान, सावधान—समुद्र प्रेत अपने वलि पुरुष के शरीर में प्रविष्ठ हो रहा है और इसके साथ ही यह वलि पुरुष अभी तांडव करेगा। सब सावधान हो जायं"—यह कह

कर तांत्रिक ने भरपूर सामग्री स्वाहा की और स्वयं भी उठ कर खड़ा हो गया। सभी लोग काफी दूर-दूर तक सरक गये। लेकिन अभय को तो कुछ भी नहीं हुआ—वह तो उसी मुद्रा में मन्द-मन्द हास्य के साथ बैठा रहा।

तांत्रिक उसे आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। उसके पसीने छूट गये। यह क्या ? उसे तो अपने तंत्र पर पूरा भरोसा है। हमेशा उसका तंत्र सफल होता आया है। आज यह क्या हो गया है ? उसने एक बार और जोर-जोर से मंत्रोच्चारण किया और इस बार सामग्री का स्वाहा समुद्र में फेंक कर किया। फिर भी कुछ नहीं हुआ। उसका खोखलापन सब पर जाहिर होने लगा। उसकी घबराहट शुरू हुई। अपनी झेंप मिटाने के लिये तब वही जोर-जोर से कूदने-फांदने लगा और जैसे प्रेत उसी के सिर पर चढ़ गया हो, जोर-जोर से बोलने लगा—

"धनदत्त, मैं समुद्र का प्रेत हूँ। अब तूने मुझे सन्तुष्ट कर दिया है तो तेरा जहाज चल पड़ेगा। ज्यों ही यह बलि पुरुष मेरा भोग बनेगा, तुझे सर्व सुख हो जायगा। अब इस बलि पुरुष को उठा कर समुद्र में फेंक दो ताकि यह मेरे मुख का ग्रास बन जाय........"

और तांत्रिक उसी तरह कूदता-फांदता रहा। इसलिये कि उसका पसीना देखने वाले यह न समझें कि यह उसकी असफलता व घबराहट का पसीना है।

धनदत्त के इशारे पर उसके अनुचरों ने बलपूर्वक अभय को पकड़ कर धम्म से समुद्र में फेंक दिया। फेंक तो दिया लेकिन हुआ कुछ नहीं। न तो जहाज अपने स्थान से सरका और न ही अभय समुद्र में डूब कर उस प्रेत के मुख का ग्रास बना। थोड़ी ही देर में बिना किसी शारीरिक क्षति के अभय पुनः पानी की सतह पर उठ आया।

यह तो तांत्रिक का घोर अपमान था। सबके सामने उसके मुंह पर थप्पड़ लगा था—वह उसे चुपचाप कैसे सह लेता ? वह फिर चिल्लाया—"देखते क्या हो ? बलि पुरुष को पकड़ कर फिर से जहाज पर लाओ और उसी तरह फिर से समुद्र में पटक दो। यह किसी तरह प्रेत-मुख से छिटक आया लगता है। बलि सम्पूर्ण हुए बिना कार्य नहीं बनेगा।"

फिर से सेठ के अनुचरों ने अभय को निकाल कर समुद्र में फेंक दिया। फेंकने में इस बार उन्होंने अधिक बल का प्रयोग किया ताकि बलि पुरुष ठेठ समुद्र के तले तक पहुंच जाय। किन्तु फिर वही हुआ जो पहले हुआ था। पुनः अभय यथावत् स्थिति में पानी की सतह पर लौट आया।

इधर अभय की आकृति फिर से पानी पर दिखाई दी और उधर तांत्रिक अपने पैर सिर पर रख कर भागा। गनीमत थी कि वह लड़खड़ाकर गिर नहीं पड़ा।

अब धनदत्त सहित सभी लोग चौंके। उन्हें समझ में आने लगा कि यह बलि पुरुष कोई साधारण पुरुष नहीं है। लगता है कि इसके पास ऊँची सिद्धियाँ हैं। तभी तो हर बार

समुद्र प्रेत को परास्त कर यह ऊपर उठता रहा है। धनदत्त ने तब भावभीने स्वर में आज्ञा दी—

"अनुचरो ! इस विशिष्ट पुरुष को बहुत ही सावधानी और सम्मान के साथ समुद्र में से निकाल कर तुरन्त जहाज पर लाओ—"

अभय जब जहाज पर लाया गया तो धनदत्त उसके पांवों पर लौट गया और सिर रगड़-रगड़ कर क्षमा मांगने लगा—"ओ सिद्ध पुरुष, मैंने आपका घोर अपमान किया है। अपने स्वार्थ में डूबा हुआ मैं नीच आपकी श्रेष्ठता को पहिचान नहीं पाया। आप मुझे क्षमा करदें। आप मेरे लिये 'पूजनीय' पुरुष हैं।" अभय मन ही मन हँसते हुए संसार के इस नाटक को देख रहा था और महामंत्र की महिमा को आत्मस्थ कर रहा था। कैसे-कैसे होते हैं संसार के ये बदलते हुए दृश्य ? अभय ने धनदत्त को हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया और समभावपूर्वक समझाया—

"सेठ साहब, मेरे हृदय में आपके प्रति कोई द्वेष या प्रतिशोध नहीं है इसलिये क्षमा करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। किन्तु मनुष्यता का यह छोटे से छोटा अनुभाव तो प्रत्येक के मन में रहना चाहिये कि अपना स्वार्थ अपने ही साथी मनुष्य का प्राणघातक तो न बन जाय। दूसरों की रक्षा न कर सकें तो न सही, किन्तु दूसरों के जीवन को तो न लूटें। 'जीएं और जीने दें' की भावना और प्रवृत्ति तो रखें। कोई जब परोपकार और रक्षा की भावना रखता है तो ध्यान रखिये कि उसका कभी भी अहित नहीं होता है। अहिंसा में आस्था बनावें तो आपका जहाज भी चल पड़ेगा—हिंसा से कभी भला नहीं होता है सेठजी !"—कहकर अभय चुप हो गया।

अभय की शक्ति का यह एक और परिचय पाकर तो धनदत्त पश्चात्ताप और प्रायश्चित की आग में जलने लगा। उसने कैसी मूर्खता की कि ऐसे भव्य पुरुष के प्राण-हरण की कुचेष्टा उसने की ? और इनकी भव्यता ऐसी कि मेरे कुकृत्य का कुछ भी बुरा ही नहीं मान रहे हैं, बल्कि मेरे जहाज को चलाने का विश्वास भी दे रहे हैं। वह तो पानी-पानी हुआ जा रहा था। हाथ जोड़कर उसने निवेदन किया—

"आप कृपा करके मेरे जहाज को अवश्य चला दीजिये। आपकी शक्ति अपार है। मैं भविष्य में आपकी शिक्षाओं पर ही चलूंगा।"

"अच्छा—" कह कर अभय एक स्वच्छ स्थान पर आलथी-पालथी मार कर बैठ गया और दिखाने व सत्प्रभाव डालने की इच्छा से ध्यानस्थ हो गया। अभय को जब समुद्र में फेंका गया था तो पहली बार उसका सामान्य सा ध्यान गया था कि जहाज उत्तर दिशा की तरफ कुछ गहरी झाड़ियों में फंसा हुआ था। दूसरी बार उसने बारीकी से देखा कि जहाज का एक लोहे का खूंटा उन झाड़ियों की जड़ों में अटका हुआ है और उसमें बल की नहीं, कल की जरूरत थी कि जरा सा जहाज को दक्षिण की ओर खिसका कर आगे धक्का दिया जाय तो वह चल पड़ेगा। किन्तु अभय ने सोचा कि यह बात सीधे तौर पर बता देने

से महत्त्वहीन समझी जायगी। अतः इसकी बजाय वह उसे कुछ और विधि से प्रकट करे तो धनदत्त के मन-मानस पर धार्मिकता का कुछ विशेष प्रभाव पड़ सकेगा। हो सकता है कि उसके इस घृणित स्वार्थी जीवन में उससे कोई शुभ परिवर्तन भी आ जाय। साधक सभी तरह के लोगों के सर्व सुख की ही कामना करते हैं, किसी के अहित का तो विचार भी उनके मन में कभी नहीं उपजता।

गहरी ध्यान साधना से जैसे निवृत्त होकर अभय ने अपनी आंखें खोलीं और धनदत्त की तरफ मुड़कर बोला—"सेठ साहब, अपने अनुचरों से कहिये कि वे जहाज को थोड़ा सा दक्षिण दिशा की ओर धकेलें एक हल्के से धक्के से और फिर उत्तर दिशा में थोड़ा सा लम्बा धक्का लगावें—आपका जहाज तुरन्त चल पड़ेगा।"

सेठ और सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि हकीकत में जहाज चल पड़ा। सबको पक्का विश्वास हो गया कि ये वास्तव में कोई सिद्ध पुरुष ही हैं, वरना कितने प्रयत्न किये गये कि कुछ भी नहीं हुआ।

अब धनदत्त के मतलबखोर मन ने भीतर ही भीतर जोर पकड़ा और वह सोचने लगा कि ऐसे सिद्ध पुरुष को तो अपने साथ ही रख लेना चाहिये ताकि बाधाएँ नहीं सतायेंगी और उसके कारण धनार्जन में भी कमी नहीं आयेगी। यह तो अपने लाभ का मामला है। घोर स्वार्थी व्यक्ति पर धार्मिकता का कितना ही पानी उंड़ेलो, मगर वह चिकने घड़े पर से जिस तरह बिना उसे भिगोये रिस जाता है, उसी तरह स्वार्थी का मन भी धार्मिकता के शीतल जल से आसानी से नहीं भींजता है। उसका बाहर का दिखावा भी अधिकतर अपने स्वार्थों की पूर्ति के ओछे उद्देश्य से ही किया जाता है। जिस पश्चात्ताप और प्रायश्चित का अभिनय धनदत्त सेठ कर रहा था, वह भी वास्तव में उतना वास्तविक नहीं था और अब तो अभय को साथ लेने के उसके निश्चय में आस्था या निष्ठा से कहीं बढ़कर उसका अपना स्वार्थ ही उभर कर ऊपर उठ आया था। उसने अभय के समक्ष अपना निवेदन प्रस्तुत किया—

"ओ भव्य पुरुष ! मैं आपसे यह प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप जहाज पर हमारे साथ ही चलें।" कहने के साथ ही सेठ ने सोचा कि आश्रयहीन परदेशी है सो अपनी बात मान ही लेगा। आखिर जायगा कहाँ ? यह भी उसने सोच लिया कि स्वागत-सत्कार में कभी कसर नहीं रखी जाय और बाहर का आडम्बर भी वह बनाये रखे तो इसे हमेशा के लिये अपने साथ रख सकता है। ऐसे शक्ति-सम्पन्न पुरुष के साथ से लक्ष्मी का अपने यहाँ आगमन निराबाध रूप से निरन्तर होता रहेगा।

अभय ने भाव विह्वल होते हुए सेठ के प्रस्ताव का उत्तर दिया—

"सेठ साहब, समझिये कि मैं आपका छोटा भाई हूँ और उसी स्नेह से साथ रखने का आपका निश्चय बनता हो तो अवश्य आपके साथ में रह सकूंगा और यथासाध्य आपकी सेवा कर सकूंगा।"

अब सेठ ने अभिनय का दूसरा दौर चला दिया और अभय को गले लगाकर बड़े ही मिठास से बोला—"आप मेरे छोटे भाई बन जायेंगे तब तो मैं और भी अधिक धन्य

हो जाऊंगा। ऐसा श्रेष्ठ पुरुष मेरा छोटा भाई कहलावे तो मुझे अपूर्व गौरव का अनुभव होगा और हकीकत में मेरे छोटा भाई है भी नहीं"—कहकर सेठ ने फिर से अभय को छाती से लगा लिया।

और इस तरह अभय बनाये हुए अपने बड़े भाई के साथ जहाज से व्यवसाय-यात्रा पर चल पड़ा इस आशा में कि शायद कभी इस बड़े भाई के माध्यम से असली बड़े भाई से मिलाप हो सके।

× × ×

स्त्रियों के चरित्र की ही तरह पुरुषों के भाग्य को भी इतना अज्ञात माना गया है कि उसे स्वयं पुरुष क्या, देवता भी नहीं जान सकते हैं। अभयसिंह के ही भाग्य को देखिये कि वह कितने नये-नये रूप पलटता रहा है? राजा के घर जन्मा था सो छोटा होने से राज्य नहीं मिलता तब भी उसके सुख सौभाग्य में तो किसी कमी की आशंका थी ही नहीं। इसके साथ ही उसके आचार-विचार में शुद्धता के संस्कार थे सो उसका जीवन बाह्य सुख-साधनों में भी सम्पन्न रहता और आन्तरिकता की दृष्टि से भी गुण सम्पन्न बनता। फिर ऐसे जीवन में दुःखों और कष्टों की कहाँ संभावना थी।

लेकिन इन सारी अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद उसका जीवन अब तक केवल दुःखों और कष्टों से ही जूझता हुआ नहीं आया है, बल्कि बार-बार मृत्यु से टकराता हुआ चल रहा है। जहाज के खुले भाग में बैठा हुआ वह विचारमग्न था कि क्या भाग्य का खेल अब भी इसी तरह चलता रहेगा? क्या इस क्रम में परिवर्तन नहीं आयगा? वह सोचने लगा कि परिवर्तन लाया जा सकता है। उसके मन की एक ही साध है कि वह अपने ज्येष्ठ भ्राता से मिले और उनकी सेवा करे। यह इस सेठ के माध्यम से कभी न कभी पूरी हो सकती है। इस कारण इसके साथ रहने में अपने लिए भी ठीक ही है। कहीं न कहीं तो भटकना ही है जब तक कि मन की साध पूरी न हो तो शान्तिपूर्वक इसके साथ ही रहें। उसने सन्तोष की साँस ली और समुद्र के प्राकृतिक दृश्यों का वह आनन्दपूर्वक अवलोकन करने लगा।

सुज्ञ पुरुष वही होता है जो कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ पुरुषार्थ करता हुआ चलता है। उसके चाहे विपरीत परिणाम भी उसके सामने प्रकट होते रहें तब भी वह समभाव रखता है और यही सोचता है कि जो कुछ घटित होता है, वह हमेशा अच्छे के लिये ही होता है। वह अपनी आन्तरिक भावनाओं में आनन्द मनाता रहता है कि धर्म की मांगलिक शक्ति सदैव उसकी सुरक्षा ही नहीं करेगी वरन् उसके उद्धार का भी प्रतिक्षण उपाय करती रहेगी। वैसा पुरुष वास्तविक शौर्य को समझता है और सदैव कर्त्तव्यपरायणता से सबके साथ सम्यक् व्यवहार करता है। मन, वचन, काया से वह ऐसे सम्यक् व्यवहार को अपना धर्म मान लेता है। अभय के व्यवहार में भी ऐसी ही शुभता तथा सदाशयता कूट-कूट कर भरी हुई थी क्योंकि उसकी भावना सबके प्रति सदा शुभ रहती थी। शुभ भावना और शुभ पुरुषार्थ—फिर ऐसे शूरवीर की शुभता सर्वत्र व्याप्त क्यों न हो?

समुद्र यात्रा में दुर्योग ऐसा बना कि अचानक भीषण तूफान चलने लगा। वह जहाज एक कटोरे की तरह बुरी तरह से हिलने-डुलने और डोलने लगा। जहाज पर सवार सभी लोगों का भय बढ़ने लगा कि अब जीवन का अन्त निकट है। सेठ और सब लोग घबरा कर अभय के सामने उपस्थित हुए कि वह भव्य पुरुष ही सबकी जीवन-रक्षा करे।

सबको भयग्रस्त देखकर अभय ने परम करुणा से अपने हृदय को ओत-प्रोत करते हुए ध्यानस्थ होकर महामंत्र का पाठ करना आरम्भ कर दिया। शुभता का प्रभाव शुभता में अवश्य प्रस्फुटित होता है और धीरे-धीरे तूफान शान्त होने लगा। तूफान के थम जाने पर जब फिर से जहाज चलने लगा तो धनदत्त सेठ व अन्य कर्मचारी कहने लगे कि उन्हें भी साधना करने की रीति सिखलाई जावे। अभय को इससे प्रसन्नता हुई और उसने सबको महामंत्र याद कराया तथा उसके पाठ की विधि बताई। सभी इस साधना का अभ्यास करने लगे।

जहाज अपने गंतव्य की ओर आगे बढ़ रहा था और अभय रंग-बदरंग संसार के रंग देख रहा था।

१९
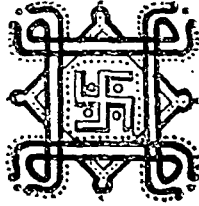
जब जहाज ने लंगर डाला तो अभयसिंह को मालूम हुआ कि कोई मुकाम आ गया है। तभी धनदत्त सेठ उसके पास आया और बोला—

"बन्धु अभय, यहाँ रत्नद्वीप में अपना लम्बे समय तक ठहरने का कार्यक्रम है। एक तो यहाँ के महाराजा की अपने ऊपर बहुत कृपा है और दूसरे यहाँ पर अपना व्यापार बहुत फैला हुआ है। अपना काफी माल यहाँ खपाना है, उसके बाद यहाँ से वैसा माल खरीदना भी है जो आगे के मुकामों पर खपता है, इसलिए अपन जहाज छोड़कर नगर में निवास करेंगे।"

"तो भाई साहब, क्या यहाँ साल छः माह तक का मुकाम रहेगा"—अभय ने पूछा।

"हो सकता है कि हमें इतने या इससे भी अधिक लम्बे अर्से तक यहाँ रुकना पड़े। यहाँ बड़ा लाभप्रद व्यापार होता है।"

"यहाँ से क्या अभी ही चल रहे हैं ?"

"और क्या ? ताकि निवास की व्यवस्था जम जाने पर महाराजा से भेंटों के साथ भेंट करनी होगी। खयाल रखना, तुम्हें भी साथ चलना है। तुम्हारा उनसे जब परिचय कराऊंगा तो वे बहुत प्रसन्न होंगे। श्रेष्ठ पुरुषों के साथ उनका प्रगाढ़ अनुराग हो जाता है।"

"आप ले जायेंगे तो अवश्य चलूंगा। मुझे भी श्रेष्ठ पुरुषों से मिलने में बड़ा आनंद आता है।"

"अवश्य चलेंगे। अभी तो जहाज पर से चलने की तैयारी करलो।"—कह कर धनदत्त अपने कक्ष में चला गया। वह अभय को इतने मान-सम्मान और इतनी परवाह से रख रहा था कि जैसे कि हथेलियों पर थुकवा रहा हो। उसकी प्रत्येक आवश्यकता वह स्वयं अपने ध्यान में रखता था और यह भी ध्यान में रखता था कि उसकी यथासमय पूर्ति

हुई है या नहीं। जहाज पर वह अपना अधिकांश समय अभय के कक्ष में ही बिताया करता था और उसे हर तरह से प्रसन्न रखने का यत्न किया करता था।

अभय तो सरल स्वभावी था। वह यही अनुभव करता था कि जहाज चलाने की प्रक्रिया के बाद धनदत्त का उसके प्रति विश्वास जम गया है तथा उसी अनुराग-भाव से वह उसकी परवाह रखता है। वह कभी यह कल्पना नहीं करता था कि उसकी सार-सम्हाल रखने में धनदत्त की स्वाभाविकता कम और स्वार्थ भावना अधिक है। वह तो धनदत्त के साथ बड़े भाई का सा सम्मान ही रखता था और प्रयासरत रहता था कि उसकी यथोचित सेवा करे। जो भी हो, उस समय दोनों के मध्य व्यावहारिक घनिष्ठता प्रगाढ़ थी।

जहाज पर से अभय और धनदत्त उस रत्नद्वीप के नगर में निवास करने के लिये चले गये। वह नगर धनदत्त का जाना-पहिचाना था अतः निवास की व्यवस्था सुखद एवं सुरुचिकर स्थान पर हुई थी।

एक दो दिन बाद धनदत्त ने अपने परिचित अधिकारियों के माध्यम से महाराजा के साथ भेंट करने का निवेदन कराया। महाराजा भी परिचित ही थे अतः भेंट का समय जल्दी ही निर्धारित हो गया।

यथासमय धनदत्त सेठ अभयसिंह को साथ लेकर रत्नद्वीप के महाराजा से भेंट करने के लिये पहुंचा। बसन्तपुर से उनके लिये लाई हुई उनकी कई प्रिय भेंटें भी साथ में थीं ही। सेठ जानता था कि महाराजा को वहाँ की कौन-कौन सी वस्तुएँ बहुत पसन्द आती हैं। वे भेंटें कई थालों में सजी हुई थीं और उसके अनुचर उन थालों को अपने सिर पर उठा कर चले। वे सब थाल महाराजा के निजी कक्ष में खोल कर जमा दिये गये, जहाँ वे सेठ से भेंट करने वाले थे। वे दोनों भी दो पीठिकाओं पर आसीन करा दिये गये।

थोड़ी सी प्रतीक्षा के बाद ही महाराजा उस कक्ष में पधारे तो दोनों उनके सम्मान में खड़े हो गये। दोनों ने उनका झुककर अभिवादन किया। महाराजा ने दोनों को बैठने का संकेत करते हुए स्वयं भी अपना आसन ग्रहण किया। फिर अभय की ओर देखते हुए महाराजा ने ही प्रश्न कर लिया—

"इस बार अपने साथ ऐसे भव्य व्यक्तित्व वाले पुरुष को कहाँ से ले आये हो?" और भेंट भरे थालों की ओर एक दृष्टि घुमाते हुए विनोद भरे स्वर में बोले—"क्या यह विशिष्ट भेंट भी मेरे ही लिये हैं?"

धनदत्त जोरों से हँस पड़ा और अभय भी मुस्कराया। बोला धनदत्त ही—"आप तो सभी के स्वामी हैं महाराजा। इन्हें भी भेंट में समझिये और मुझे भी भेंट में समझ लीजिये ताकि मेरा देश-देश भटकना तो बन्द हो जाय।"

महाराजा भी मन्द-मन्द मुस्कराने लगे—"भाई, बड़े-बड़े हाथियों को रख सकता हूँ, सेठों को पालना बहुत मुश्किल है क्योंकि उनकी अपार धन लालसा की पूर्ति मैं हमेशा कैसे करता रहूँ?" इस पर तीनों साथ-साथ हँसने लगे।

तब धनदत्त सेठ ने अभय का परिचय कराया—"महाराज, इनका नाम अभयसिंह है और ये मेरे छोटे धर्म भाई हैं। इनका ज्ञान इतना गहरा, भावनाएँ इतनी ऊँची तथा साधना इतनी उत्कृष्ट है कि इन्हें मैं तो सिद्ध पुरुष ही मानता हूँ।" महाराजा ने यह सुनकर अभय को अपने पास बुला कर समीप में बिठाया और वे पूछने लगे—"इतनी छोटी आयु में जीवन की ऐसी परिपक्वता आपने कैसे प्राप्त करली है? मैं तो आपको देखते ही प्रभावित हो गया था।"

अभय ने नम्रतापूर्वक कहा—"महाराज, यह तो भाई साहब का मुझ पर अत्यधिक स्नेह है, इस कारण उन्होंने मेरी ऐसी बड़ाई करदी है। वैसे मैं सामान्य व्यक्ति हूँ। हाँ, यह जरूर है कि मुझे प्रारम्भ से सत्संस्कार, शुभ कार्यों की प्रेरणा एवं नीति का प्रशिक्षण मिला है और तदनुसार ही मेरा जीवन-व्यवहार ढला है, अतः नैतिकता और न्याय में मेरी पूरी-पूरी निष्ठा है।"

"आपका सेठ से सम्बन्ध कैसे जुड़ गया?"

"बस इतना ही समझिये राजन् कि यह सम्बन्ध जुड़ गया और हम दोनों के बीच अब तक गहरी घनिष्ठता स्थापित हो गई है।"

"क्या आपको राजकीय कार्य विधियों का भी अनुभव है?"

"मेरा विश्वास है कि मुझे ऐसा अनुभव है और कम से कम न्याय की कार्य विधि में तो मुझे बहुत ही रुचि रही है।"

"खूब याद दिलाई आपने भी। इन दिनों मैं एक बहुत ही टेढ़े मामले में फंसा हुआ हूँ और उसमें सम्यक् न्याय कर पाने का उपाय नहीं बैठ रहा है। मैं उलझन में पड़ा हुआ हूँ।"

"यदि आप वह मामला मुझ अकिंचन को बतावें तो हो सकता है कि मैं अपनी सामान्य बुद्धि से आपको उस बारे में कोई उपाय सुझा सकूं।"

"क्यों नहीं? मुझे उस गुत्थी की सही सुलझन जरूर और जल्दी चाहिये। तो सुनिये। एक सज्जन नागरिक को तीर्थ यात्रा पर जाना था। उसके पास चार रत्न थे, उसने यह सोचकर कि यह जोखिम घर में सूनी नहीं रखी जाय, उन रत्नों को वह तीर्थ-यात्रा से लौटे तब तक सम्हाल कर रखने के लिये उसने एक व्यापारी को सौंप दिये। व्यापारी धूर्त था। जब वापिस लौट कर उसने अपनी अमानत मांगी तो वह इनकार हो गया। उसने विवाद हमारे सामने प्रस्तुत किया तो व्यापारी ने पाँच साक्ष्य प्रस्तुत कर दिये जो साफ-साफ बोलते हैं कि चारों रत्न व्यापारी ने हमारे सामने उनके स्वामी को लौटा दिये। उन्होंने स्वयं रत्न देखे हैं और उन्हें लौटाते भी देखा है। किन्तु इस साक्ष्य से मेरे मन को सन्तोष नहीं है। मैं इसी उलझन में हूँ कि व्यापारी की धूर्तता को कैसे प्रकट करूं और कैसे उस सज्जन नागरिक को चारों रत्न तथा न्याय प्राप्त हो?" रत्नद्वीप के राजा ने पूरा मामला सुनाकर अभयसिंह की तरफ इस आतुरता से देखा कि वह उन्हें उलझन से बाहर निकालने का कोई मार्ग सुझावे।

कुछ देर तक अभय ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और कहा—"महाराज, यदि वह व्यापारी धूर्त है तो उसने हकीकत में वे चारों रत्न उन साक्षियों को नहीं दिखाये होंगे ? मात्र धन देकर उनका साक्ष्य खरीद लिया होगा । अतः उनकी पोल खोलने के लिये यह उपाय आजमाइये । एक-एक साक्षी को अलग-अलग भीतर बुलवाइये । आप अपने पास कुछ गीली मिट्टी रखवा दीजिये । फिर पहले साक्षी को उस गीली मिट्टी से जैसे रत्न देखे हैं उतने बड़े गोले बनाने के लिये कहिये । उससे गोले बनवा कर उसको भीतर दूसरे कक्ष में बिठा दीजिये ताकि वह अन्य साक्षियों से न मिल सके । ऐसा ही दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवे साक्षी के साथ अलग-अलग कीजिये । यदि पांचों साक्षी एक ही आकार के गोले बना लेते हैं तो मानिये कि उन्होंने रत्न देखे हैं और वे सही कह रहे हैं । किन्तु यदि पांचों के गोलों के आकार भिन्न-भिन्न हैं तो निश्चय ही वे झूठे साक्षी हैं । फिर उनके साथ तथा सेठ के साथ कठोर व्यवहार से असलियत खुल जायगी और आपका सफल न्याय प्रकट हो जायगा ।"

राजा ने उस सुझाव की गहराई तुरन्त भांप ली और अभयसिंह की न्यायिक बुद्धि-मत्ता पर वे हर्षित हो उठे । यह एकदम सही सुझाव था और तत्काल मामले की सच्चाई सामने लाने वाला था । कुछ सोच कर महाराजा ने सेठ से पूछा—

"क्यों धनदत्तजी, हमारे इस नगर में आपका मुकाम कब तक रहेगा ?"

"मुझे प्रत्येक भ्रमण में यहाँ चार छः माह तो ठहरना पड़ता ही है । इस बार व्यापार का विस्तार कुछ अधिक लगता है अतः वर्ष छः माह तक भी रुकना हो सकता है, महाराज ।"

"तब तो ठीक हैं—" फिर अभय की ओर मुड़कर महाराजा बोले—"अभयसिंहजी, आपके नैतिक जीवन, न्यायपूर्ण विचारों तथा अन्यायभेदी बुद्धि की एक झलक मुझे मिली है और उससे मैंने आपके व्यक्तित्व का आकलन किया है जो मेरे लिये बहुत उत्साहपूर्ण है । क्या मैं आपको कोई इस प्रकार का उत्तरदायित्व सम्हला सकता हूँ जिससे आपकी प्रतिभा का लाभ इस नगर के निवासियों को मिले ?"

अभय कुछ समझा नहीं कि महाराजा उसे कौनसा उत्तरदायित्व सम्हलाने का विचार कर रहे हैं ? फिर भी वह बोला—"आप कोई भी आदेश प्रदान करें और मैं उसका पालन न करूं—क्या ऐसा कभी हो सकता है ?"

"तो सुनो अभयसिंहजी, सेठजी तो अपना व्यापार करेंगे और मेरा खयाल है कि व्यापार में आपकी रुचि नहीं होगी तो खाली बैठकर आपका जी भी नहीं लगेगा । फिर कोई आपकी रुचि का राजकीय कार्य मैं आपको देना चाहूँ तो आप अस्वीकार तो न करेंगे ?"

"मुझे आपके राज्य की सेवा करके अति प्रसन्नता का ही अनुभव होगा ।"

"मुझे आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष से यही आशा थी । आप आज से न्यायाधीश नियुक्त किये जाते हैं । राजकीय मुद्रा के साथ आदेश अभी प्रसारित कर दिये जायेंगे । आपकी

न्यायनिष्ठा से हमारे नागरिकों को पूर्ण न्याय मिलेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। और हाँ, आपको आज से ही कार्य आरम्भ कर देना है और जो मामला मैंने आपको अभी-अभी बताया है, उसमें भी आज आप ही निर्णय सुनावें।"—कहकर महाराजा ने जैसे बहुत ही सन्तोष की सांस ली।

"जो आज्ञा महाराजा की। वास्तव में मुझे मेरी रुचि का कार्य देकर आपने मुझे आभारी बनाया है। भाई साहब अपने व्यापार में लगे रहेंगे और मैं इधर व्यस्त हो जाऊंगा। इस तरह समय पूरी सक्रियता के साथ व्यतीत हो जायगा। मुझे आशा है कि मेरे कार्य से जनता और आपको दोनों को सन्तोष होगा। मैं अपनी सम्पूर्ण योग्यता, निष्ठा तथा निष्पक्षता से कार्य करूंगा।"

अभय ने उसी दिन रत्नद्वीप का जो न्याय कार्य सम्हाला, उसे वह तत्परतापूर्वक करता रहा। पहले दिन से ही उसके न्याय ने जो प्रतिष्ठा पाई, वह प्रतिदिन अधिकाधिक प्रतिष्ठित होता गया। वह धूर्त व्यापारी भी अभय के न्याय का लोहा मान गया। उसने तत्काल चारों रत्न अभय के सामने प्रस्तुत कर दिये और अभय ने वे रत्न उसके वास्तविक स्वामी को सौंप दिये। प्रतिदिन ऐसे निर्णय होने लगे, जिनकी चर्चा न केवल उस नगर में बल्कि पूरे द्वीप में होने लगी। सभी मुक्तकंठ से नये न्यायाधीश की न्याय प्रणाली की सराहना करने लगे। लोग जा जाकर महाराजा के सामने अभय के न्याय-नीतियुक्त निर्णयों की प्रशंसा करते और महाराजा का मन फूला नहीं समाता। वे सोचते थे कि अभय कोई सामान्य पुरुष नहीं है, बल्कि विशिष्ट से भी ऊपर है—एक नररत्न है।

महाराजा के एक ही पुत्री थी—राजकुमारी रत्नावली। जब भी राजकुमारी उनसे मिलती, वे अनायास अभय की प्रशंसा उसके सामने कर दिया करते। एक दिन तो वे उससे भी कुछ अधिक कह उठे—"रत्ना, मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ। इसी कारण मैंने तुम्हें एक राजकुमार के समान सभी प्रकार का प्रशिक्षण दिया है और तुम भी इतनी बुद्धि-शालिनी हो कि प्रत्येक प्रशिक्षण में तुमने पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। अब मेरा विचार है कि तुम अभय से न्याय कार्य की चतुराई को भी पकड़ लो। फिर ऐसा कोई राजकीय कार्य शेष नहीं बचेगा जिसे तुम योग्यतापूर्वक न कर सको।"

राजकुमारी रत्नावली भी बराबर अभय की प्रशंसा सुनती आ रही थी और उसकी भी अभय के गुणों का परिचय पाने की उत्सुकता जाग रही थी। अतः पिताजी का प्रस्ताव उसे एकदम भा गया। वह एक दो बार दूर से अभय के व्यक्तित्व की झलक भी पा चुकी थी। उसने उत्तर दिया—

"पूज्य पिताजी, मैंने आपकी कोई बात कभी भी टाली है क्या ? और न्याय पद्धति के प्रशिक्षण में तो मेरी गहरी रुचि भी है।"

"बस तो आज ही अभय की शिष्या बना देता हूँ मैं तुझे।"

न्याय पद्धति का प्रशिक्षण लेते हुए राजकुमारी रत्नावली को अभय का जो सर्वतो-मुखी परिचय मिला, उसने उसे अनूठे आल्हाद से भर दिया। कितना शालीन, कितना

सहज फिर भी कितना स्नेहपूर्ण व्यवहार होता है अभय का ? वह सोचती रहती और जितना अधिक सोचती, उतना ही उसे अभय का व्यक्तित्व अधिक प्राभाविक लगता रहता। वह उसे पूर्ण पुरुष के रूप में प्रतीत होता। कितनी मनुष्यता कूट-कूट कर भरी हुई है उसके मन, वाणी और कर्म में ? ऐसी मनुष्यता जिसके भीतर से देवत्व की झाँकियाँ प्रकट होती हों। अभय का व्यक्तित्व राजकुमारी रत्नावली के सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क पर छा गया। उसके साथ ही अभय की न्याय-कीर्ति सम्पूर्ण रत्नद्वीप में छाती रही।

× × ×

देखते-देखते धनदत्त सेठ और अभयसिंह को रत्नद्वीप में एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसका न धनदत्त को पता चला और न अभय को। दोनों अपने-अपने कार्यों में इतने व्यस्त रहे कि समय पंख लगाकर उड़ता रहा। सेठ जब अपने व्यापार कार्यों से निवृत्त हो गया तो उसने अपनी जहाज यात्रा को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। उसने अपना निश्चय अभय को बताया तो उसने हँसते हुए कहा—"जहाँ बड़ा भाई, वहाँ छोटा भाई। जब तक आप व्यस्त थे, अच्छा किया महाराजा ने कि मुझे भी व्यस्त बना दिया। अब आप निवृत्त तो मैं भी निवृत्त। रहेंगे तो दोनों साथ ही।" अभय की आत्मीयता से धनदत्त का मन हर्षावेग में झूम उठा, वह बोला—"यह धर्मबन्धुत्व कोई अस्थायी सम्बन्ध थोड़े ही है ?"

फिर दोनों बिदाई लेने के अभिप्राय से महाराजा से भेंट करने राजमहल की ओर चल दिये।

"सेठजी, अभी तो आपको करीब माह भर और रुकना पड़ेगा"—महाराजा ने आदेशात्मक स्वर में कहा।

नम्रतापूर्वक धनदत्त बोला—"राजन्, इस बार तो पूरा एक वर्ष हो गया है और अब यहाँ का सारा काम भी निबट गया है, इसलिए और ठहर कर करेंगे क्या ? वैसे आपका आदेश होगा तो ठहरूंगा ही।"

"व्यापारी को विना लाभ की कोई बात शायद पसन्द ही नहीं पड़ती है, मगर सेठ घबराओ मत, आपके लाभ की गुंजाइश भी मैंने रखी है"—विनोद करते हुए महाराजा ने कहा। धनदत्त हँसने लगा, बोला कुछ नहीं। तब महाराजा ने अभय की तरफ मुड़कर पूछा—"अभयसिंहजी, आपको तो अब यहीं रहना है। हम अपने लोकप्रिय न्यायाधीश को अब यहाँ से जाने नहीं देंगे।"

दोनों मौन रहे तो फिर महाराजा ही बोले—"आगामी माह ही राजकुमारी रत्नावली का स्वयंवर आयोजित किया गया है और ऐसे अवसर पर आप लोगों का रहना क्या आप आवश्यक नहीं मानते ? इस विवाह में वस्तुओं की आपूर्ति का काम आपको करना है सेठजी—फिर तो आपका यहाँ माह भर ठहरना व्यर्थ नहीं होगा न ?"

धनदत्त ने इतना ही कहा—"राजन्, क्या ऐसे खुशी के मौके पर मैं वैसे ही नहीं ठहर सकता ? आपकी सेवा करने में अपना सौभाग्य ही मानता हूँ।"

तब महाराजा ने कहा—"अभयसिंहजी, आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।"

अभय बोला—"भाई साहब ठहरेंगे तो मैं भी ठहरूंगा ही लेकिन हमेशा के लिये नहीं। मैं इनके साथ ही रहूँगा।"

"अच्छा, फिर देखा जायगा—" कहकर महाराजा ने उस दिन से उन दोनों को राजकीय अतिथि बनने का न्यौता दिया।

यथासमय स्वयंवर का आयोजन किया गया। दूर-समीप से राजकुमार उस हेतु आये। धनदत्त सेठ और अभयसिंह भी सभागार में योग्य आसनों पर बिठाये गये। चारों ओर अनोखी साज सजावट हो रही थी और प्रसन्नता का वातावरण छा रहा था। सभी नगर जन यह जानने के लिये उत्सुक हो रहे थे कि सुन्दर, सर्वप्रिय एवं चतुर राजकुमारी रत्नावली किसके गले में वरमाला डालकर उसे अपना जीवन साथी बनाती है? स्वयंवर पद्धति की यही विशेषता थी कि राजकुमारी स्वयं अपना वर चुनती थी, वह उस हेतु अपने माता-पिता या अन्य किसी पर भी निर्भर नहीं रहती थी। इसका यह भी अभिप्राय था कि एक वयस्क कन्या अपने भले बुरे को खुद समझे और अपने भावी जीवन का उत्तर-दायित्व के साथ निर्णय ले।

रत्नावली जब वरमाला हाथ में लेकर सभागार में प्रविष्ठ हुई तो उसने देखा कि उच्चासन पर उसके पिता विराजमान हैं तथा चारों ओर योग्य आसनों पर उसका हाथ थामने के प्रत्याशी बैठे हुए हैं। वह एक-एक प्रत्याशी के सामने कुछ देर रुकती, उसका परिचय सुनती तथा मन ही मन उसके बारे में अपनी राय बनाती और आगे बढ़ जाती। जब वह पूरे सभागार में घूम गई तो गहराई से विचार करने लगी कि उसकी वरमाला किस गले के लिये बनी है? कौन उसका योग्यतम जीवन साथी हो सकेगा?

उसके मन-मस्तिष्क में सभागार के भिन्न-भिन्न चेहरे आने और जाने लगे। यह सही है कि अभयसिंह की समीपता से वह उसकी ओर अत्यधिक आकृष्ट थी, फिर भी दूसरे प्रत्याशियों की स्थिति पर गौर करना भी जरूरी था। कई बड़े-बड़े राजकुमार थे जो भविष्य में राज्य के स्वामी बनने वाले थे। कई समृद्ध और ऐश्वर्यशाली थे। लेकिन अभयसिंह? वह न तो राज्य का स्वामी होने वाला था और न ही ऐश्वर्यशाली था—उसके मन ने कहा—फिर भी उसमें जो कुछ था वह शायद किसी में नहीं था।

राजकुमारी तब निःसंकोच आगे बढ़ी और धीरे-धीरे चलती हुई अभयसिंह के सामने पहुँच गई। उसने उसकी आँखों में एक बार गहराई से झांका और देखा कि उनमें उसके लिये श्रेष्ठतम स्थान है, उसके हाथ ऊपर उठे और उसने वह वरमाला अभयसिंह के गले में डाल दी।

२०

विवाह को नैतिकता का बन्धन माना गया है, क्योंकि इस पद्धति के द्वारा काम और मोह पर अंकुश लगाया जाता है। यह अंकुश दुतरफा भी होता है। व्यक्ति अपने विवाह के बाद अपने काम और मोह के क्षेत्र को अपनी परिणीता अथवा परिणीत तक ही सीमित मानकर अंधे काम और अंधे मोह से अपने को बचा लेता/लेती है तो दूसरी ओर समाज के विशाल क्षेत्र में भी काम और मोह का अंधापन अराजक स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाता है। विवाह पद्धति इस प्रकार से काम और मोह की उद्दंडता पर अनुशासन की एक शैली है। विवाह पद्धति को नैतिकता का स्वरूप इसी सदुद्देश्य से दिया गया है।

शारीरिक सम्बन्ध से बहुत आगे बढ़कर यह विवाह पद्धति आत्मिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनावे—इस दृष्टि से इसे दो आत्माओं का मिलन भी कहा गया है। दो आत्माओं के मिलन का तात्पर्य होगा दो गुण घटकों का मिलन। एक दूसरी आत्मा के सद्गुण परस्पर प्रभाव डालें और दोनों साथ-साथ विकास के पथ पर अग्रसर हों—यह विवाह का आदर्श लक्ष्य माना गया है। इसमें अधिक सांस्कृतिक महत्त्व नारी पक्ष को दिया गया है। पति को तो स्वामी माना है किन्तु पत्नी वह जो पति को भी अपने साथ उत्थान के मार्ग पर आगे बढ़ाती है—पति सद्गुणोन्मुखं नयतीति पत्नि:।

आज तो लोगों ने अपने हल्के चरित्र से विवाह को महत्त्वहीन सा बना दिया है—उसे शरीर की हद में ही बांध दिया है। इस कारण स्वभाव का ओछापन फूटता रहता है। पुरुष ने नारी के सम्मान को भी कुंठित किया है जिससे दोनों के बीच समानता का सूत्र कच्चा पड़ने लगा है। विचारणीय तो यह है कि विवाह को उसके समारोह के साथ आडम्बरों से पोत कर आत्म-भाव से शून्य बना दिया जाता है। कई लोगों ने तो विवाह समारोह को अपनी धन-सम्पदा के थोथे प्रदर्शन का अवसर बनाकर रख दिया है। जब श्रीगणेश ही बाह्य पदार्थो के प्रति घोर मोह के साथ होता है तो वैसे विवाह में आन्तरिक-जागरण की आशा कैसे रखी जा सकती है?

रत्नद्वीप के महाराजा तो सम्राट थे। वे अपनी पुत्री राजकुमारी रत्नावली के विवाह का ऐसा आडम्बर रच सकते थे कि दूर-दूर तक चारों ओर जोरदार धूम मच जाती। किन्तु पिता सरल स्वभावी थे तो पुत्री भी विचारवती थी और अभय का विवेक

तो ग्रादर्श की लीक पर चलने वाला था। ग्रतः यह विवाह-समारोह शालीन वातावरण में सादगी के साथ ग्रायोजित किया गया।

यह विवाह वास्तव में दो समुन्नत ग्रात्माग्रों का मिलन ही था, फिर उसमें महाराजा ग्रपने राजकीय ग्राडम्बर से कालिख क्यों पोतते? ग्रभय ऐसा दूल्हा, जो कष्टों की ग्राग में तप कर निखर चुका था ग्रौर ग्रपनी ग्रात्म ज्योति को जागृत बनाकर समभावी बन गया था ग्रौर रत्नावली दुल्हिन भी मात्र रूप की ही देवी नहीं थी ग्रपितु ग्रान्तरिक सुन्दरता से भी जगमगा रही थी। ऐसे दूल्हा-दुल्हिन का विवाह दहेजस्वरूप सौदा करने वालों के लिए बड़ा प्रेरणा प्रदायक रहा। सारे द्वीपवासी ग्रानन्द से ग्राह्लादित हो रहे थे। महाराजा ग्रौर महारानी के ग्रानन्द का तो पूछना ही क्या? उन्हें जंवाई क्या मिला था? प्रत्येक दृष्टिकोण से ग्रभय एक देवता था। सुयोग्य पुत्री को सुयोग्य हाथों में सौंप कर उन्होंने निश्चिन्तता का अनुभव किया था। राज्याधिकारियों, कर्मचारियों तथा सामान्य नागरिकों में ग्रपने सहृदय शासक की राजकुमारी के विवाह में जो उत्साह देखा गया, वह ग्रद्वितीय था। उसमें एक शासक की धवल कीर्ति के दर्शन होते थे। चारों ग्रोर प्रसन्नता का ग्रनूठा वातावरण छा गया था।

प्रसन्नता ग्रौर प्रफुल्लता के ऐसे उमड़ते हुए वातावरण में एक दिल कुढ़ रहा था, कुटिलता के ताने बाने बुन रहा था ग्रौर काली कल्पनाएँ करके भीतर ही भीतर काला पड़ रहा था। वह ग्रोछा ग्रौर कपटी दिल था सेठ धनदत्त का। ईर्ष्या की ग्राग में सुलग उठा था वह ग्रौर ग्रपनी ही नीच स्वार्थी कामनाग्रों में जल रहा था। जिस पल राजकुमारी रत्नावली ने ग्रपनी वरमाला ग्रभय के गले में डाली थी, उसी पल उसका कुटिल कामी मन भड़क उठा था। उसने इतनी दुराशा नहीं बांधी हो कि राजकुमारी उसके गले में ग्रपनी वरमाला डालती, किन्तु उसने एक ग्रज्ञात युवक ग्रभय के गले में वरमाला डाल दी—यह तो उसे ग्रसह्य लगा। ग्राखिर ग्रभय क्या था? उसकी हस्ती क्या थी? उसने अपने मतलब के खातिर भले उसे ग्रपना भाई बता दिया हो मगर था तो उसके नौकर के समान ही—जो उसके टुकड़ों पर पल रहा था। ऐसा उसमें क्या दीखा राजकुमारी को जो यों ग्राँखें बंद करके उस लावारिस पर रीझ गई? इस तरह तो वही कौनसा बुरा था जो ग्रपार धन सम्पदा का स्वामी ग्रौर कृपालु महाराजा का कृपापात्र था। ग्रनेकों बार उसने राजकुमारी को भी तो बहुमूल्य भेंटें दी थीं ग्रौर वह इस समय सब भूल गई।

धनदत्त की दुष्टता मन ही मन घनघोर तांडव मचाने लगी। ग्रभय जैसे सम्पदाहीन पुरुष को रत्नद्वीप की राजकुमारी मिल गई है—यह उसको ग्राँख की किरकिरी की तरह बुरी तरह से खटक रहा था। ग्रौर इस खटक के साथ उसकी दुर्भावना ने बल पकड़ना शुरू कर दिया। उसने भरपूर नजर से देखा था—राजकुमारी रत्नावली का रूप चम-चम चमक रहा था जो ज्वाला बनकर उसकी ग्राँखों में समा गया था। वह उस ज्वाला में जलता रहेगा जब तक कि उस रूप राशि को स्वयं प्राप्त न करले। वह ग्रभय की पत्नी बन गई है सो ठीक, लेकिन ग्रभय उसके चंगुल में जो फंसा हुग्रा है। वह ग्रब ग्रभय को छोड़ेगा

नहीं। उसे अपने साथ ही ले जायगा और जब भी मौका मिलेगा, उसे ठिकाने लगा कर रत्नावली को हस्तगत कर लेगा............वह उसे आज नहीं तो कल 'अपनी' बना कर ही रहेगा।

तब दुष्टता ने ताना-बाना बुनना शुरू किया। वह इस समय मन की इस बात को सतह पर कतई नहीं झलकने दे। ऊपर का व्यवहार अभय के साथ जैसा अब तक बना हुआ है, उसे उससे भी अधिक मधुर दिखावे। यदि कहीं महाराजा बहुत ज्यादा आग्रह करें और अभय कहीं यहीं पर रुक जाने का मानस बनावे तो उसको अपनी इसी दिखाऊ मधुरता के जोर पर ऐसा न करने देना होगा और उसे अपने साथ जहाज पर ले ही जाना होगा। अब तक वह एक गुनी मधुरता ही रख रहा था किन्तु अब से वह दोगुनी मधुरता का प्रयोग करेगा—दगाबाज दूनो नमे। एक पूरे षड्यंत्र की रूपरेखा बनाली सेठ धनदत्त ने इस तरह अपने मन में और सारा व्यवहार उसी के अनुरूप वह करने लगा।

विवाह समारोह के सानन्द सम्पन्न हो जाने के बाद महाराजा अपने परिवार के साथ भीतरी कक्ष में बैठे, जहाँ महारानी के अलावा नव परिणीत वर-वधू अभय और रत्नावली भी थे। धनदत्त सेठ को भी महाराजा ने बुलाया था क्योंकि उनकी दृष्टि में एक प्रकार से अभय का अभिभावक वही था। महाराजा ने ही वार्तालाप आरम्भ किया—"महारानी और मैं आज परम प्रफुल्ल हैं कि हमें सुयोग्य जामाता मिले हैं। अभयसिंहजी का जीवन एक ऐसे आदर्श का जीवन्त स्वरूप है कि जिसका अनुसरण करके हमारी प्राणों से भी अधिक प्यारी पुत्री सुखद दाम्पत्य जीवन की सहधर्मिणी बन सकेगी। दो आत्माओं का यह मिलन दो प्रकाशमान ज्योतियों का मिलन सिद्ध हो—यह हमारा शुभाशीर्वाद है............।"

यह कहने के साथ ही अभय एवं रत्नावली ने उठ कर महाराजा और महारानी के चरण स्पर्श किये। सजल नेत्रों से दोनों ने अपने वरदहस्त उनके मस्तक पर रखे। फिर दोनों ने धनदत्त सेठ के भी चरण छुए, पर उसके हाथ ऊपर नहीं उठ पाये और भला उन अपवित्र हाथों को उठना भी क्यों चाहिये था? वे किस काले मन का आशीर्वाद उन उज्ज्वल चरित्रधारियों को प्रदान करते?

महाराजा ने फिर अनुनय के साथ अभय को कहा—"कुंवर साहब, आपको याद होगा कि मैंने आपको अब यहीं पर निवास कर लेने का पहले निवेदन किया था। तब तो एक सफल न्यायाधीश को ही मैंने ऐसा आग्रह किया था किन्तु अब तो यह आग्रह आत्मज-रूप जामाता को है। आपने इस विषय पर अपना क्या विचार बनाया है अथवा बना रहे हैं?"

उस समय तो अभय ने अपने विचार का संकेत बिना किसी संकोच के दे दिया था, लेकिन अब भी क्या वह वही बात निःसंकोच होकर कह सकता है? अब तो यह माता-पिता का आग्रह हो गया था जिसके लिये रत्नावली के विचार की जानकारी भी जरूरी

थी। उसने रत्नावली की ओर देखा और आँखों ही आँखों जानना चाहा कि इस बारे में उसका क्या विचार है ? रत्नावली ने जैसे आँखों ही आँखों में जता दिया कि वह तो अब मात्र उसकी अनुगामिनी है। जहाँ वह, वहाँ वह—निर्णय उसे ही करना चाहिये। तब अभय ने अपनी नजर सेठ धनदत्त की ओर घुमाई और पूछा—"भाई साहब, इस विषय में आपकी क्या आज्ञा है ?"

धनदत्त तो ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। उसने सोचा कि इस काम को बड़ी कारीगरी से करना चाहिये ताकि किसी के भी मन में उसके लिए किसी भी तरह का कोई सन्देह न उपजे। मन में धूर्तता और बाहर मधुरता का नाटक करते हुए उसने महाराजा को हाथ जोड़कर निवेदन किया—"राजन्, अब तो जैसे आप मेरे लिए पूज्य हैं, उसी तरह अभयसिंहजी भी मेरे लिये पूज्य हो गये हैं क्योंकि वे आपके जामाता हो गये हैं। मैं तो अब आप दोनों की बात को आदेश मानकर ही चलना चाहता हूँ। अतः आप दोनों जो भी निर्णय लें, उसे मैं मान लूंगा। हाँ, एक बात जरूर है कि मेरे कोई सगा छोटा भाई नहीं है, इस कारण जब अभय ने मुझे बड़ा भाई मानकर वैसा प्रेम और मान दिया तो मेरा मन इसके लिए स्नेहिल बन गया। अब तो वह स्नेह मेरे अपने विचार से सगे भाइयों से भी बढ़कर हो गया है। ऐसा लगता है कि मैं बिना अभय के किस तरह रह पाऊंगा—यह सोचने में भी मुझे बहुत पीड़ा का अनुभव हो रहा है"—यह कहकर सेठ ने अभय की आँखों में झांका।

अभय को ऐसा अनुभव हुआ कि धनदत्त का स्नेह उसे यहाँ नहीं रुकने देगा और उसे यहाँ रुकना भी तो नहीं चाहिये क्योंकि उसका उद्देश्य ज्येष्ठ भ्राता से मिलना और उनकी सेवा में रहना ही तो है। वह अपने जीवन में मानसिंह को कभी नहीं भुला सकता है और मानसिंह से मिलना है तो धनदत्त के साथ ही रहना होगा, क्योंकि अपनी व्यापार-यात्रा पूर्ण करके वह पुनः बसन्तपुर ही जायगा। उसके साथ बसन्तपुर लौटने से ही वह अपने भाई साहब के दर्शन कर सकेगा। और फिर ससुराल में ही रह जाने पर जंवाई का सम्मान थोड़े ही बना रहता है ? सभी तरह से सेठ के साथ ही जाने को श्रेयस्कर समझ कर अभय ने विनीत स्वर में उत्तर दिया—

"मैं धन्य हूँ कि मुझे माता-पिता का स्नेह और आशीर्वाद मिला है। श्रेष्ठ माता-पिता की श्रेष्ठ सन्तति ने मेरी अर्धांगिनी बन कर जो मुझे पूर्णता प्रदान की है, वह मेरा परम सौभाग्य है।

कुछ रुक कर अभय आगे बोला—"महाराज, मुझे यहाँ रुकने का जो आपका आमन्त्रण है, वह आपकी सहज हार्दिकता का ही प्रमाण है—मैं इसके लिये अतीव आभारी हूँ। दूसरी ओर भाई साहब का भी मुझ पर बहुत स्नेह है और राजकुमारी भी एक बार तो अपना पीहर छोड़कर ससुराल में जावे—यह शोभनीय होगा। अतः मैं अभी तो भाई साहब के साथ ही जहाज पर जाने का निश्चय करूं तो क्या आप मुझे क्षमा कर देंगे ?" इतना कह कर अभय ने कृतज्ञतापूर्वक महाराजा और महारानी की ओर देखा।

अब महाराजा क्या कहते ? जामाता ने अपने नम्र शब्दों में सब कुछ कह दिया था। उन्होंने पुत्री के ममत्व को जामाता की इच्छा और लोकरीति से ऊपर नहीं उठने दिया। उन्होंने स्नेह-विगलित स्वर में कहा—"अभयसिंहजी, जैसी आपकी इच्छा। आपकी हर खुशी हमारी खुशी है। जहाँ आप दोनों जावें, हर वक्त सुखी रहें—यही हमारी कामना है। मैं अपनी पुत्री के साथ इसकी प्रिय दासी या सहेली कान्ता को भी भेज रहा हूँ ताकि इसका मन लगता रहे।

अभयसिंह तो प्रसन्न हुआ ही, किन्तु मन ही मन धनदत्त की खुशी का पार नहीं था। उसकी योजना का सही नतीजा निकला था। अब अकेला अभय नहीं, रत्नावली भी उसके ही पंजे के नीचे रहेगी। तब उसकी सारी योजना के विफल होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। माता-पिता से विलग होने के खेद के साथ रत्नावली भी एक पतिव्रता स्त्री के रूप में प्रसन्न ही थी कि वह अपने प्राणनाथ के साथ जा रही है जिस अवस्था में दो खिलते हुए पुष्प एक होकर जियेंगे और एक होकर अपनी सुगन्ध से सारे संसार को सुख पहुंचायेंगे। प्रसन्न तो महाराजा और महारानी भी थे कि उन्होंने अपने गृहस्थ धर्म का समुचित रूप से निर्वाह करते हुए अपनी आत्मजा को सुयोग्य हाथों में सौंप दी है किन्तु उसके विछोह के क्षणों में उनका हृदय विगलित हो रहा था और उनकी आंखें स्नेहाश्रु बरसा रही थीं। बड़ी ही भाव विह्वलता से सभी ने विदाई दी और ली। जब तक जहाज आंखों से ओझल नहीं हुआ, दोनों ओर हाथ हिलते रहे और आंसू बहते रहे।

किन्तु धनदत्त का वह जहाज रत्नद्वीप से जो चला तो चला एक षड्यंत्र लेकर और उसे अपने गर्भ में छिपा कर।

२१
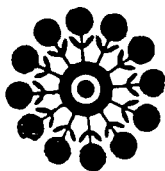
रत्नद्वीप से रवाना होकर जहाज उस समुद्र के नीलाभ जल पर मंथर गति से चल रहा था। अभय और रत्नावली अपने कक्ष में थे और धनदत्त सेठ अपने कक्ष में। किन्तु दोनों कक्षों में भावनात्मक भूमिकाएँ एकदम भिन्न-भिन्न थीं। यों दोनों कक्ष अपने एकान्त के कारण बाकी जहाज से कटे हुए थे और अपने-अपने मन की विचारणाओं से भी अलग-थलग थे। मन की विचारणाओं की गति से दोनों कक्ष पूरब-पश्चिम हो रहे थे। पूरब वाला नहीं जानता था कि पश्चिम वाला उसके विरोध में कुछ प्रपंच रच रहा है, लेकिन पश्चिम तो अपने कुविचार में डूबा हुआ ही था।

अभय और रत्नावली के जीवन में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ था। गृहस्थ धर्म की देहरी पर उन्होंने अपना पांव रखा ही था फिर भी वे मोहविष्ट नहीं थे। विशुद्ध प्रेम के सूत्र से वे बंधे थे और विशुद्ध आचरण के भी वे पक्षधर थे। विवाह के बाद वे अपने जीवन को एकरूपता के ढांचे में ढालने का यत्न कर रहे थे। दो श्रेष्ठ जीवन जब एक होते हैं तो वे एक और एक से ग्यारह बनते हैं। अपने कक्ष में बैठे हुए वे जीवन विकास की ही चर्चा कर रहे थे। अभय कह रहा था कि धनदत्त सेठ ने उन पर उपकार किया है जिसके कारण वे विवाह सूत्र में बंध सके हैं। रत्नावली कुछ नहीं बोली।

लेकिन धनदत्त सेठ अपने कक्ष में बैठा-बैठा एकदम पूरब से पश्चिम की ओर बह रहा था। रत्नावली उसे कैसे मिले—यह काली बात ही उसके काले दिमाग में उमड़-घुमड़ रही थी। उसका चित्त इतना अस्थिर हो रहा था इस विचार को लेकर कि अपनी शैया पर बार-बार करवटें बदल रहा था और कभी अपने कक्ष में ही इधर से उधर तीव्र गति से टहल रहा था। उसको चैन नहीं था, पर चैन आवे कैसे ? रत्नावली के बिना उसे चैन आ नहीं सकता और वह उसे कैसे मिले—यही सवाल तो तूफान के वेग की तरह उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था।

रत्नावली कैसे मिले ? और हकीकत में वह मिलेगी कैसे—जब तक अभयसिंह मौजूद है ? वह तो मात्र शरीर से ही नहीं, आत्मा से भी बली है और वह उसके ऐसे बल को देख भी चुका है। अभय से सफलतापूर्वक लड़ने की शक्ति उसके पास नहीं है। और अभय के रहते रत्नावली की तरफ आंख उठाने की भी शक्ति उसके पास नहीं है। तो…तो

अभय का ही काम तमाम पहले कर देना चाहिये छल से। छल के बिना और कोई उपाय कामयाब नहीं हो सकेगा।

और छल ? क्या छल किया जाय अभय की जीवन-लीला समाप्त कर देने के लिये ? कई उपाय हो सकते हैं, क्योंकि अभय को उस पर पूरा-पूरा विश्वास है। इसलिये वह हमेशा असावधान रहता है और मैं अपनी सावधानी से उसे किसी भी उपाय से खत्म कर सकता हूँ। तब वह किसी कारगर उपाय के बारे में विचार करने में व्यस्त हो गया।

जिस मनुष्य के मन में काम का पिशाच प्रवेश कर जाता है तो वह मनुष्य तब अपने मन, वचन तथा शरीर से वास्तव में ही पिशाच बन जाता है। चाहे वह अन्यथा कितनी ही ऊँची प्रतिष्ठा वाला क्यों न हो ? चाहे कोई पदाधिकारी, किसी राज्य का अधिपति अथवा तीन खंड का स्वामी ही क्यों न हो ? काम उसके मन को कलंकित कर देता है। जब मन बिगड़ता है तो उसकी वाणी बिगड़ती है और उसके बाद उसे अपनी काया को शुद्ध रखना भी आसान नहीं रहता। तब उसका पद, राज्य या तीन खंड का स्वामित्व भी उसके लिये किसी तरह हितकर नहीं रहता। रावण के पास कितना वैभव था—पूरी सोने की लंका थी, किन्तु जब उसने काम के वशीभूत होकर सीताजी का हरण किया तो उसकी सोने की लंका का क्या हुआ ? उसका स्वयं का क्या हुआ ? और आज भी दुनिया उसे किस रूप में देखती है और उसके पुतलों तक के साथ किस रूप में व्यवहार करती है ? इसी बुराई के कारण वह मनुष्य होकर भी राक्षस या पिशाच कहलाता है। वास्तव में मनुष्य पिशाच नहीं होता, काम पिशाच होता है। मनुष्य तो अपना नियंत्रण खोकर जब काम के वश में हो जाता है, तब वह पिशाच बन जाता है। ऐसा पिशाच न अपना हित सोच सकता है, न दूसरों का हित। वह तो हिताहित के भान से ही शून्य होता है। हिताहित के भान से इसी तरह शून्य हुआ जा रहा था धनदत्त सेठ, जो अपने कक्ष में काम-पीड़ा से तड़प रहा था और अभय के जीवन के विरुद्ध नीच उपायों पर नीचता के विचार कर रहा था।

जब उसने एक उपाय निश्चित कर लिया तो वह अपने वस्त्र-परिधान ठीक करके अपने कक्ष से बाहर निकला और अभय के कक्ष के बाहर पहुँच कर उसको पुकारा—"बन्धु अभय, क्या कर रहे हो ? क्या खुली हवा में बाहर घूमोगे नहीं ? भिन्न-भिन्न रूपों में इस समुद्र को देखना भी बड़ा मोहक सा लगता है।"

पुकार सुनी अभय ने और चौंकी रत्नावली। अभय द्वारा अपने 'इन' बड़े भाई की भरपूर प्रशंसा सुनते रहने के बावजूद रत्नावली को सेठ कुछ अच्छा आदमी नहीं लगा था। कुछ दिनों के सामान्य सम्पर्क से ही वह उसे निश्चित रूप से 'बुरा' आदमी मानने लगी थी। उसने इस समय 'इन्हें' क्यों पुकारा है, उसका मन अनायास ही सन्देह से भर उठा। वह बहुत चतुर थी और मनोवृत्तियों की सूक्ष्म पारखी भी थी। उसे उस समय सेठ की पुकार में न जाने क्यों—किसी अनिष्ट की आशंका सी होने लगी। ऐसी आशंका उस समय यदि वह अभय के सामने प्रकट करती तो वह अस्वाभाविक लगती—इस कारण वह चुप

ही रही, किन्तु अपने कक्ष में बैठी रहकर भी पूरी सावधानी से बाहर के वातावरण को भांपती रही।

अभय तुरन्त बाहर आ गया और बोला—"वैसे ही बैठा था भाई साहब ! हकीकत में बाहर का दृश्य बहुत ही सुन्दर है।" और वे दोनों कक्ष के बाहर खुली जगह पर घूमते हुए बतियाने लगे। बातें करते-करते सेठ ने कहा—"कक्ष के ऊपर की छत पर चले चलते हैं, वहाँ से समुद्र के दृश्य और अधिक सुन्दर दिखाई देंगे।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं ?" कहते हुए अभय भी धनदत्त के साथ अपने कक्ष के ऊपर की छत पर चढ़ गया। वहाँ से समुद्र की उछलती हुई लहरें वाकई बड़ी आकर्षक लग रही थीं।

"कैसा चल रहा है तुम्हारा नया जीवन ? मेरे बन्धु !"—सेठ ने उसके मन की टोह लेने की गरज से पूछा।

अभय ने शालीनता से उत्तर दिया—"आपका आशीर्वाद है भाई साहब ! धीर, वीर, गम्भीर और शीलवती सहधर्मिणी का मिलना पुण्योदय की बात ही होती है।"

"बिल्कुल ठीक कहते हो। तुम्हारी जोड़ी ऐसी ही है। तुम वास्तव में भाग्यशाली हो।" कहने को तो सेठ ने कह दिया किन्तु अभय के भाग्य को नष्ट करके अपने भाग्य को संवारने की सेठ की कुचाल का अभय को क्या ज्ञान ? वह तो किनारे की पाटी पर पैर रखकर मस्ती से लहरों के नृत्य को देखने लगा।

कक्ष की खिड़की के पास ही 'छपाक्' की तेज आवाज सुनकर रत्नावली बुरी तरह से चौंक उठी। उसका मन आशंकित था ही और अपनी आशंका के अनुसार उसने तैयारी भी कर रखी थी। अतः तुरन्त उसने खिड़की में से बंधी हुई रस्सी नीचे फेंक दी।

निर्दोष बने रहने के उद्देश्य से धनदत्त सेठ चिल्लाता हुआ दो-दो तीन-तीन सीढ़ियाँ फलांगता हुआ नीचे की खुली जगह पर आया—"दौड़ो-दौड़ो, अभयजी पैर खिसक जाने से समुद्र में गिर गये हैं। जल्दी रस्से लेकर आओ, दौड़ो, भागो" और एक-एक अनुचर का नाम लेकर वह पुकारने लगा उस दिशा से पीठ फेर कर जिस दिशा में उसने अभय को धक्का देकर नीचे गिरा दिया था। वह बाहरी तत्परता दिखा रहा था और भीतर में सोच रहा था कि जब तक अनुचर जहाज के दूरस्थ भागों से रस्से आदि लेकर इधर आवेंगे तब तक अभय समुद्र के अतल जल में डूब कर अपने प्राण दे चुका होगा। तत्परता दिखाने का भी कारण था। रत्नावली उसकी चीख पुकार सुनकर उसे एकदम निर्दोष समझे और यही समझे कि अभय ही असावधानीवश गिर गया होगा।

वह काले मन का सेठ उजले दिल वाली रत्नावली की बुद्धिमत्ता को भला क्या समझता ? सेठ की तत्परता नें रत्नावली की तत्परता के आगे पानी ही भरा। दो पल बाद ही जब अभय पुनः पानी की सतह पर आया तो रस्सी उसके हाथों में आगई। क्षण

भर में ही वह खिड़की के रास्ते अपने कक्ष में पहुंच गया। तब तक शायद अपनी हड़बड़ाहट में धनदत्त पूरी सीढ़ियाँ उतर कर नीचे भी नहीं पहुंचा होगा।

कुटिलाई से सरलता धोखा खाती रहती है, लेकिन अगर कुटिलाई का मुकाबिला चतुराई से किया जाता है तो कुटिलाई को नीचा ही नहीं देखना पड़ता है बल्कि कुटिल व्यक्ति को अपने किये का नतीजा भी भोगना पड़ता है। रत्नावली की तीक्ष्ण बुद्धि ने तुरतफुरत काम किया। उसने अपने पतिदेव से तुरन्त छिप जाने को कहा—स्थान उसने पहले ही सोच समझ कर निर्धारित कर लिया था। बाकी बात बाद में करने की भलामण देकर धनदत्त की चीख पुकार उठते ही रत्नावली भी कक्ष से बाहर निकल कर खुली जगह पर आ गई और रोते हुए उसने पूछा—"भाई साहब, क्या हो गया है ?"

धनदत्त सेठ तो बुरी तरह चिल्लाने और आंसू बहाने लगा—"हाय, यह क्या हो गया ? ऐसा जानता तो मैं मेरे प्यारे छोटे भाई को ऊपर ही नहीं ले जाता। पाटी पर पैर रखकर मेरा प्यारा भाई समुद्र की लहरें देखने में ऐसा मस्त हो गया कि पैर खिसकने का उसे कुछ भी खयाल ही नहीं रहा। मैं भी लहरों की तरफ ही देख रहा था जिस कारण अभय के गिरने की 'छपाक्' आवाज सुनकर ही मुझे भी होश आया"—कहकर सेठ फिर अपने अनुचरों के नाम ले-लेकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा। रत्नावली भी बुद्धिशालिनी थी सो सेठ की कुटिलाई का अपनी चतुराई से सामना करती हुई नाटकीय ढंग से अपने पति के लिए विलाप करने लगी।

अनुचर रस्से वगैरा लेकर पहुँचे तो सेठ ने उन्हें तुरन्त अभय के गिरने की जगह पर डुबकियां लगाकर उसे तुरन्त बाहर निकालने का आदेश दिया। सेठ ने तब तक कनखियों से देख लिया था कि एक बार पानी में गहरे घुसने के बाद अभय का शरीर दुबारा बाहर नहीं आया था। उसका धक्का जोरदार ही रहा। उसका मन भीतर ही भीतर तुष्ट हो गया था कि अभय का काम तमाम हो चुका। अब राह का कांटा साफ—लेकिन नाटक तो पूरा होना ही चाहिये।

उसने अनुचरों से बार-बार डुबकियाँ लगवाईं, ताकि रत्नावली उस पर किसी तरह का सन्देह न करे। बहुत-बहुत कोशिशों के बाद भी जब कोई नतीजा नहीं निकला तो सेठ ने मुंह लटका दिया। नतीजे के बारे में रत्नावली और धनदत्त दोनों ही पहले से निश्चिन्त थे किन्तु दोनों ही अपना-अपना नाटक बखूबी कर रहे थे। धनदत्त ने रुंधे हुए गले से कहा—"बहू, मेरा भाग्य ही फूटा हुआ है जो मेरा छोटा भाई यों चला गया। अब मैं क्या कहकर तुम्हें भी ढांढस बंधाऊं ? कर्म की गति बड़ी विचित्र होती है और उसे सहने के अलावा कोई चारा नहीं है। मैं तुम्हारी सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखूंगा और तुम भी मुझसे किसी प्रकार का संकोच मत करना। होनी की अनहोनी तो हम दोनों मिलकर भी नहीं कर सकते हैं लेकिन हम दोनों परस्पर सहायक अवश्य हो सकते हैं।"

रत्नावली कुछ नहीं बोली और आंसू भीगे चेहरे को ढांप कर तेज कदमों से अपने कक्ष के भीतर चली गई। उसकी दासी कान्ता भी तेजी से अपनी स्वामिनी के साथ हो गई। भीतर जाकर दासी ने भीतर की कुंडी चढ़ा दी।

धनदत्त ने शोक के इस अवसर पर रत्नावली को अधिक कुछ कहना उचित नहीं समझा और अनुचरों के सामने भी अपनी निर्दोषता दिखाने की गरज से शोकमग्न हो धीमी चाल से वह अपने कक्ष में लौट गया।

× × ×

"स्वामी, देख लिया न आपके भाई साहब का कारनामा ? मैं नहीं जानती कि इन बड़े भाई के साथ आप कब से रह रहे हैं, किन्तु मैंने चन्द दिनों में ही इनको पहिचान लिया और उस पहिचान के अनुसार अगर आज मैं इतनी सावधानी न वरतती तो न जाने क्या अनर्थ हो जाता ?" रत्नावली ने अपने स्वामी को उनके भोलेपन की उलाहना देते हुए कहा।

अभय तो अब तक भी विश्वास नहीं कर पा रहा था कि धनदत्त सेठ इतना स्नेह जताता और उसने ऐसा घातक कार्य कैसे कर दिया ? वह अभी तक यह भी नहीं समझ पाया था कि ऐसा घातक कार्य उसने क्यों किया ? वह अब भी सिर पर हाथ रखे सोच ही रहा था कि रत्नावली के कथन से चौंका। फिर धीरे-धीरे बोला—

"रत्ना, यह जीवन भी मेरे लिये तो अनोखे-अनोखे अनुभवों की प्रयोगशाला बना हुआ है। अब तक मैंने संसार के कितने रंग-बदरंग देख लिये हैं और नहीं जानता कि अभी कितने और देखने होंगे ?" उसने अपनी धर्मपत्नी से कहा।

रत्नावली ने सारी बात समझा कर कही—"प्राणनाथ, ऊपर से मधुर व्यवहार का नाटक करने वाले लोग असल में बड़े दुष्ट होते हैं। ये अपनी दुष्टता में कितनी गहरी नीचता तक उतर जायं—कुछ कह नहीं सकते। मैं आपको बतादूं कि सेठ ने अभी तक तो अपने षड्यंत्र का पहला चरण ही कार्यान्वित किया है। पहली चोट आपके जीवन पर थी, अब वह दूसरी चोट मेरे शील पर करना चाहेगा। वह यह समझकर कि आप नहीं रहे हैं - दूसरी चोट के लिये अधिक निश्चिन्त हो गया है किन्तु मुझ जैसी क्षत्राणी से जब उसका पाला पड़ेगा, उसे छट्टी का दूध याद आयगा। आपको तो अब गुप्त रह कर ही सेठ की दुष्टता का नाटक देखना है। मेरी जो बड़ी पेटिका है, उसमें बड़े-बड़े छिद्र भी हैं तो बड़े आकार के कारण उसके भीतर रहने में आपको कोई असुविधा नहीं होगी। इस समय तो प्राण रक्षा का यही सुरक्षित उपाय है। मैं और कान्ता उसकी चेष्टाओं का करारा जवाब देती रहेंगी। आप चिन्ता न करें। और पेटिका में केवल उसी समय रहना है जब-जब सेठ के इधर आने की सम्भावना हो। बाकी कक्ष को मैं अधिकतर तो बंद ही रखूंगी।"

□ □ □

२२

"कान्ताजी, इधर तो ग्राग्रो—"

"कहिये, सेठ साहब !"

"ग्रापको ग्रौर ग्रापकी स्वामिनी को किसी बात का कोई कष्ट तो नहीं है ?"

"ग्रापके जहाज पर ग्रापकी सुव्यवस्था में भला कोई भी कष्ट कैसे हो सकता है ?"

"मैं ग्राप दोनों की व्यवस्था के लिये बराबर सतर्क रहता हूं, ग्राखिर आप मेरे प्रिय-जन जो हैं !"

"यह ग्रापका पितृवत् स्नेह है जिसके लिए हम ग्रतीव ग्राभारी हैं।"

"ग्राभार की बात कह कर मुझे लज्जित न करो—यह तो मेरा कर्त्तव्य है। लेकिन एक बात मैं पूछना चाहता था कि क्या ग्रापकी स्वामिनी ग्रभयसिंह के लिये बहुत दुःख करती हैं ? तब से मैंने उन्हें कभी भी बाहर नहीं देखा है।"

"सेठ साहब, ऐसी दुर्घटना से तो स्त्री का जीवन ही समाप्त हो जाता है, ग्राप दुःख की बात पूछते हैं ? स्त्री के लिए उसका पति ही परमेश्वर है। फिर भी उन्हें लगातार समझाती रहती हूँ कि जिस बात का कोई उपाय न हो, उसका दुःख इतना नहीं करना चाहिये। ग्राखिर जीवन तो जीना ही पड़ेगा तो उसे संयम ग्रौर शान्ति के साथ ही जीना चाहिये। वैसे मेरी स्वामिनी बहुत ही विवेकवती महिला हैं।"

"कान्ताजी, ग्राप ग्रपनी स्वामिनी की परम हितैषिणी हैं—यह मैं साफ-साफ समझ रहा हूं। क्या ग्राप यह नहीं सोचतीं कि ग्रापकी स्वामिनी ने ग्रपने जीवन का सुख देखा ही क्या है जो उन्हें ग्राप संयम की सलाह देती हैं ? ग्रभी उनकी ग्रायु ही क्या है ? खाने, खेलने ग्रौर हँसने की ग्रायु शुरू ही तो हुई है। ग्रभी वे संयम को क्या समझेंगी ?"

"ग्रौर उनके लिये उपाय ही क्या है सेठ साहब ? ग्रायु चाहे कुछ भी हो, ग्रभय-सिहजी के चले जाने के बाद उनके खाने, खेलने ग्रौर हँसने का ग्रवसर ही कहाँ रह गया है ?"

"उपाय और अवसर तो बहुत हैं, केवल उन्हें सुलझाने की बात है और यह कार्य आप उनकी आत्मीया होने से बखूबी कर सकती हैं ?"

"क्या मतलब है आपका ?"

"आप तो बहुत तेज हैं। क्या मेरा मतलब समझी नहीं ?"

समझकर भी कान्ता दासी जैसे अबोध सी धनदत्त को देखती हुई खड़ी रही। कांता ने कोई विरोध नहीं किया जिससे सेठ का हौंसला बढ़ गया। वह थोड़ा सा पास में सरका और धीरे से कान्ता को कहने लगा—

"कान्ताजी, आप मेरी लगन से सहायता करें तो आपकी स्वामिनी सुखी ही नहीं हो सकती हैं बल्कि जीवन पर्यन्त रत्नों की सेज पर सदा-सदा आनन्द मनाती रह सकती हैं। देखो न, वह कितनी सुन्दर और कोमल—एक खिलते हुए फूल से भी बढ़कर। क्या उन्हें अपना यह यौवन यों ही गंवा देना चाहिये ?"

"मेरी स्वामिनी सुखी हो सके और मैं लगन से सहायता न करूं—क्या यह कभी भी हो सकता है ? मैं तो उनके लिये अपना सर्वस्व और प्राण भी देने को तत्पर हूँ। किन्तु आप तो पहेलियाँ बुझा रहे हैं—मैं तो आपके कहने का कोई तात्पर्य ही समझ नहीं पा रही हूँ"—कान्ता सेठ की सारी कुविचार धारा को जान और परख लेना चाहती थी।

"क्या मैं आपकी स्वामिनी को पसन्द नहीं आ सकता ? सुन्दर हूँ, युवक हूँ और वैभव तथा ऐश्वर्य की मेरे पास कोई कमी नहीं है। मैं उनके जीवन को सर्व सुखों से भर दूंगा। लेकिन यह काम आपकी सहायता के बिना होना कठिन है। आपको भी मैं मालामाल कर दूंगा।"—कुत्ते की तरह दुरदुराते हुए सेठ ने बड़ी आजीजी से यह बात कही।

कान्ता दासी अपनी स्वामिनी की छाया बन कर रहती थी और उनके गुणों तथा सुसंस्कारों की पक्की अनुगामिनी थी, किन्तु उसके साथ ही विनोदप्रिय भी थी। वह विनोद ही विनोद में यह जानना चाहती थी कि सेठ अपने दुष्ट अभिप्राय में कितनी नीचाई तक गिरने को तैयार है ताकि वह अपनी स्वामिनी को तदनुसार सतर्क रहने की भलामण दे सके। वह कटाक्ष करती हुई बोली—

"सेठ साहब, मैं तो सुन्दरता में समझती हूँ नहीं। आईने में आप ही शकल देखकर फैसला करें। युवक आप जरूर होंगे क्योंकि अभी कोई-कोई ही सफेद बाल आया है और वैभव तो आपके पास होगा ही लेकिन मेरी स्वामिनी की तो जूती की भी आप बराबरी नहीं कर सकते हैं। कभी आंख उठाकर भी उधर न देखियेगा, वरना शायद है वह आंख ही न रहे...."

"मैं समझ गया, आप ऐसी कड़वी बात मुझे क्यों कह रही हैं ? यह लीजिये थैली–स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई है। अब तो आप सन्तुष्ट हैं न ? करेंगी न मेरा काम ?" सेठ ने सोचा कि दासी है बेचारी जो बिना धन किसी काम के लिये कैसे राजी हो सकती है। तब धनदत्त ने आशाभरी निगाहों से कान्ता की ओर देखा।

कान्ता ने थैली ली और उसे सेठ के देखते-देखते समुद्र में फेंक दी। सेठ तो भौंचक्का रह गया। यह क्या किया इस दासी ने ? उसकी कमाई की ऐसी बेइज्जती ? वह आगबबूला हो उठा, डांटता हुआ सा बोला—"शर्म नहीं आई तुम्हें सो स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई थैली को तुमने इस तरह समुद्र में फेंक दी। क्या मेरा पैसा फोकट का था। मैं तुमसे सारा धन वसूल करूंगा।"

उस गुस्से के आगे खिलखिलाकर हँस पड़ी कान्ता और सेठ को चिढ़ाते हुए सी बोली—"आपका पैसा तो बड़ी गाढ़ी कमाई का है सेठ साहब, इसलिए मेरी तो सलाह है कि उसको वापिस ले आने के लिये आप भी समुद्र में डुबकी मार लीजिये। ऐसा नहीं हो सकता हो तो कम से कम एक चुल्लू पानी तो भर लीजिये जिसमें आपकी नाक डूब सके। शर्म तो आपको ही आनी चाहिये जो मेरी शालीन और शीलवती स्वामिनी के लिये आप ऐसी नीच बातें कर रहे हैं"—कहते-कहते कान्ता ने अपने तेवर बदले और वह धमकाते हुए बोली—"इतना कहा सो ठीक, अब एक भी शब्द ऐसा वैसा कहा तो उसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा—यह समझ लेना।" कान्ता फिर पैर पटकती हुई वहाँ से चल दी।

"मेरे टुकड़ों पर पलने वाली मेरे से जुबान लड़ा गई। मैं देखता हूँ कि रत्नावली कैसे मेरे हाथों से बच पाती है ? उसे मेरी बनकर ही रहना होगा वरना पति तो गया ही, वह भी रसातल में भेजदी जायगी। जा अपनी स्वामिनी से कह देना।" सेठ ने यह कहकर थूंक गटका तो कान्ता उसकी ओर थूंकती हुई आगे चली गई।

× × ×

धनदत्त कामतप्त हो उठा था। उसे अपने सोने के टुकड़ों का बड़ा गरूर था लेकिन अपने जिन सोने के टुकड़ों के बल पर वह रत्नावली को पाना चाहता था, उन टुकड़ों का तो दासी ही करारा अपमान कर गई थी। उसने तो उसका ही कौनसा कम अपमान किया था ? अब उसकी स्वामिनी न जाने कैसा बर्ताव करेगी ? जो भी होगा, वह आज सब देख लेगा। इस पार या उस पार—वह इन अबलाओं से क्यों डर रहा है ? अब कोई अभय तो है नहीं। ये औरतें क्या कर लेंगी ?

वह आज बावला और मतवाला हो उठा था। रोम-रोम में रत्नावली को बसा कर वह कण-कण में रत्नावली की मूरत देख रहा था। उसे रत्नावली ही रत्नावली दिखाई दे रही थी। वह आज उसे पाकर ही रहेगा।

सायंकाल होते-होते उसने अपने विश्वस्त अनुचर के साथ थाल उठाये कई अनुचरों को रत्नावली के कक्ष में भेजा। थालों में सुन्दर वस्त्राभूषण तथा मिष्ठान्न सजे हुए थे। उन्हें थाल कक्ष में रखकर शीघ्र लौट आने का आदेश उसने दिया था किन्तु जब काफी वक्त बीते बाद भी अनुचर नहीं लौटे तो सजा धजा वह स्वयं ही कक्ष की ओर चल पड़ा। जाकर देखा तो सभी अनुचर थाल उठाये ही बाहर खड़े थे और कक्ष का दरवाजा बंद था। तब वही आगे बढ़ा और उसने दरवाजा खटखटाया—

"बहू, दरवाजा खोलो—"

'बहू' शब्द सुनकर रत्नावली ने सोचा कि एक बार तो दरवाजा खोल ही देना चाहिये चाहे संकट सामने खड़ा हुआ है। वह संकटमर्दिनी कालिका से कौनसी कम है? और आखिर सेठ को भी अपने इस कुविचार का सबक तो देना ही है।

रत्नावली ने ही दरवाजा खोला और झुक कर एक ओर खड़ी हो गई। पागल सेठ को यही समझ में आया कि रत्नावली तो स्वयं सहमत है, उसने फालतू ही दासी की खुशामद की। सेठ तो पानी-पानी हो गया और उन्माद के स्वर में बोला—"क्या मुझसे इतनी नाराजगी है कि मेरी भेंट भी स्वीकार नहीं कर रही हैं?"

"भाई साहब, आप तो मेरे उपकारी हैं। आपसे भला नाराज क्यों होऊंगी? लेकिन मैं इन भेंटों का क्या करूं? मैं तो सादा संयमित जीवन बिता रही हूँ।"

"मैं यही कहने आया हूं कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। चार दिन की इस जिन्दगी को आनन्द से भर दो। मैं इसीलिये तुम्हारी सेवा में आया हूँ। ये भेंटें ग्रहण करो और सच तो यह है कि तुम मुझे ही ग्रहण करलो रत्नावली।"—कह कर सेठ ने अपने अनुचरों को संकेत किया सो वे थाल वहां रखकर जल्दी-जल्दी वहां से चले गये।

"क्या कहा आपने भाई साहब? आपका मस्तक तो ठीक है?"

"गुस्सा थूंक दो रत्नावली, मैं तुम्हें अपने प्रेम में बांध कर सुखों के संसार में रमण कराऊंगा। फूल से इस शरीर को मुरझाने मत दो और मेरी मानो। इस जीवन को व्यर्थ न करो।" सेठ कहता गया और पसीने से तर होता गया।

'देखती हूँ कि आप हौंस हवास खो बैठे हैं। आप अभय के बड़े भाई हैं इसलिये मैं मान रख रही थी और आप हैं कि अपनी सीमाएँ छोड़ बैठे हैं। खबरदार जो एक शब्द भी और कहा—जानते हैं कि मैं सच्ची क्षत्राणी हूँ।" रत्नावली के मुखमण्डल पर दप-दप करता हुआ तेज चमक रहा था। पेटिका में बैठा अभय भी अपने इन बड़े धर्म भाई की नीचता का वार्तालाप सुन रहा था। सोच रहा था—वह बड़े भाई का पूरा भक्त है और इसी भावना से उनकी दुष्टता का पहला दृश्य देखने के बाद भी बड़े धर्म भाई बना कर वह इनका सम्मान करता रहा जिसका इन्होंने फल दिया मुझे धोखे से समुद्र में धक्का देकर

और अब फल दे रहे हैं मेरी परिणीता का शील भंग करने की कुचेष्टा दिखा कर। धर्म भाई का ऐसा हाल सामने आया है। असली बड़े भाई से तो अभी मिलना बाकी ही है।

धनदत्त ने भी जोश खाया—"होंगी क्षत्राणी, मैं धनदत्त सेठ हूं—अपने धन के बल पर कुछ भी कर सकता हूँ, मुझे कौन रोक सकता है ? और तुम तो मेरे अन्न पर पल रही हो, मेरी शक्ति के पंजे के नीचे दबी हुई हो। अच्छा है कि अपनी इच्छा से ही मेरा कहा मानलो और सुख पाओ, वरना मैंने जो धारा है, उसे बलात् भी करके रहूंगा। तुम कुछ भी नहीं कर सकोगी।"

अभय ने भीतर बैठे-बैठे एकाग्रता से महामन्त्र का पाठ किया तो रत्नावली अपूर्व तेज से प्रदीप्त हो उठी। सेठ को ऐसा लगा जैसे उसके मुख मण्डल से प्रकाश की किरणें फूट रही हों। रत्नावली ने अपना हाथ ऊपर उठाया और तेजयुक्त वाणी में कहा—"तुम्हारी शक्ति का पंजा तुम्हारे ही मुंह को नोंच लेगा सेठ, तुम हो किस खयाल में ? रत्नावली अब तुम्हारी बहू नहीं, तुम्हारी मौत बन गई है।"—इतना कह कर रत्नावली अपना हाथ ऊपर उठाये ज्यों ही दो कदम आगे बढ़ी कि धनदत्त की हिम्मत छूट गई। वह तो उसके तेज के सामने नजर भी नहीं कर सका। वह उल्टे पांव वहां से भाग खड़ा हुआ।

अपने कक्ष में आकर सेठ धम्म से अपने पलंग पर आ गिरा। उसका भयंकर तिरस्कार किया है रत्नावली ने, बल्कि उसके लिए वह एक खतरा बन कर खड़ी हो गई है। लगता है कि अभय के समान ही यह महिला भी तेजस्वी है किन्तु इस तिरस्कार का बदला तो लेकर ही रहूंगा। ठीक है कि वह मेरे अधिकार में नहीं आ रही है और मेरा भी ऐसा करने का साहस नहीं है। तो क्या हुआ ? कोई ऐसा उपाय सोचूं कि इसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो जाय और मन की मरोड़ निकल जाय। वह चाहे मेरे हाथ न लगे मगर इसे सीधी तो करके ही छोड़ूंगा।

और फिर वह खतरनाक खयालों में डूब गया। 'दुष्ट न छोड़े दुष्टता' तो धनदत्त अपनी दुष्टता में कम कहाँ था ? उसने निश्चय किया कि अब जहाज के वसन्तपुर पहुँचते ही वह इस अभिमानिनी नारी को राजा मानसिंह की भेंट चढ़ा देगा। उस शक्तिशाली सम्राट के सामने उसकी एक न चलेगी। उसे अपने शील का समर्पण करना ही होगा और फिर मैं भी तो वसन्तपुर में ही रहता हूँ—मानसिंह की महारानी से 'राम-राम' तो जरूर करूंगा। तब देखूंगा कि रत्नावली के चेहरे का यह तेज कैसा मलिन हो जाता है।

सेठ धनदत्त का जहाज अन्ततोगत्वा अपनी विचित्र यात्रा पूरी करके वसन्तपुर पहुंच ही गया। सेठ का मूर्छाग्रस्त हिया हर्षित हो उठा—बदले की दुर्भावना तीखी बन गई।

जहाज पर ही उसने अपने अनुचरों को आदेश दे दिया कि वे वसन्तपुर के महाराजा को भेंट में देने के पचास थालों के साथ ही रत्नावली और उसका सामान जहाज से ही सीधा राजमहल पहुँचा दें। और वह 'वड़वधाऊ' बन कर खुद भी राजमहल की तरफ रवाना हो गया।

सुरक्षा अधिकारी के माध्यम से सेठ ने महाराजा से तुरन्त मुलाकात का इन्तजाम कर लिया। मानसिंह सेठ धनदत्त को पहिचानते ही थे सो मिलने पर पूछा—

"क्या अपनी व्यापार यात्रा से लौट आये हैं सेठ ?"

सेठ ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"उसका प्रमाण प्रस्तुत है, राजन्।"

"वह क्या ?"—महाराजा के कहते ही सेठ ने संकेत किया सो थाल उठाये अनुचर एक-एक करके भीतर प्रवेश करने लगे और थाल पर ढका हुआ वस्त्र हटा-हटा कर करीने से थाल जमाने लगे। महाराजा मानसिंह यह सब देखते रहे। सेठ धनदत्त की भेंटें देखने का उनका पहला ही अवसर था।

"तुम्हारी भेंटें बड़ी बहुमूल्य हैं धनदत्तजी, विविध पदार्थों का खूब संग्रह किया है।"—महाराजा ने कहा तो धनदत्त ने अधिक नम्र बनकर निवेदन किया—"स्वामी, ये भेंटें तो कुछ नहीं हैं। एक अमोल रत्न भी भेंट कर रहा हूँ मैं मेरे महाराजा की सेवा में और वह है एक नारी रत्न।"

"कहाँ है वह नारी रत्न, धनदत्तजी ?" महाराजा ने उत्सुकता के साथ पूछा।

"राजन्, नारी रत्न सामने थोड़े ही आता है ? विवाह भी किया जाता है तो वर वधू को लेने के लिये उसके स्थान पर जाता है। किन्तु आप तो राजा हैं अत: उस नारी-रत्न को यहाँ बुलाने के लिये कृपया पालकी आदि भेजिये"—धनदत्त ने सुझाव दिया।

"कहाँ भेजें पालकी ? और तुमने कहाँ से प्राप्त किया ऐसा नारीरत्न ?" महाराजा ने जानकारी चाही।

"अभी तो मैंने उस सुन्दरी को नगर के बाहर ही ठहरा रखा है जहाँ से पालकी में यहाँ भिजवा दूंगा। मुझे यह रूपसि एक ऐसे छोटे से गाँव में मिली जहाँ वह निराश्रित अवस्था में रह रही थी। न तो इसके कोई अभिभावक था, न पालक। इसकी रूपराशि देखकर मैंने विचार किया कि यह आपके लिये सुन्दर भेंट रहेगी और इसी विचार से मैं इसे अपने साथ ले आया।" सेठ ने विस्तार से जानकारी दी।

तब सेठ ने राजा के आदेश से पालकी आदि वाहन अपने साथ लिये और वहाँ पहुँचा जहाँ रत्नावली को ठहरा रखा था। वहाँ पहुँच कर वह भीतर गया और रत्नावली के सामने अपने कुत्सित प्रतिशोध को व्यक्त करते हुए कहने लगा—"तुमने मेरी बात नहीं

मानी, अब उसका नतीजा भोगना पड़ेगा । मैंने तुम्हें यहाँ के राजा को भेंट में दे दी है सो देखता हूँ कि अब तुम कैसे अपने शील की रक्षा कर पाओगी ? इसके साथ ही राजा के अत्याचारों को भी तुम्हें झेलना होगा । मैं बहुत ही आनन्दित होऊंगा यह सब देखकर"—कहते हुए धनदत्त ने अट्टहास किया ।

रत्नावली नया समाचार सुनकर चिन्तित हो उठी, किन्तु उसने चिन्ता छोड़ी और चिन्तन शुरू किया कि जो परिस्थिति सामने आ चुकी है उसका सामना तो करना ही होगा । वह उसके लिये तैयारी करने लगी ।

रत्नावली और कान्ता दासी पालकी में बैठी तो उनका सामान जिसमें वह पेटी भी थी, अन्य वाहनों में रख दिया गया और सब राजमहल पहुंच गये जहां अलग कक्ष में उन्हें ठहरा दिया गया ।

वहाँ पहुंच कर रत्नावली ने योजना बनाई कि एक कामी पुरुष का क्या विश्वास—इस कारण वह राजा मानसिंह के समक्ष नहीं जायगी, बल्कि कान्ता दासी ही दोनों भाइयों की पूर्व कथा इस रूप में सुनायगी ताकि मानसिंह के भ्रातृप्रेम की गहराई भी प्रकट हो जाय ।

फिर रत्नावली प्रतीक्षा करने लगी कि घटनाचक्र अब क्या मोड़ लेता है ?

२३

"आज जो नारी रत्न आया है उनसे निवेदन करदो कि रात्रि के प्रथम प्रहर में महाराज आपके वहाँ पधारने वाले हैं।" महाराज मानसिंह ने विश्वस्त दासी को आदेश दिया।

विश्वस्त दासी ने रत्नावली के महल में पहुँच कर महाराज का सन्देश सुनाया और लौट गयी।

"सम्भव है महाराज पर अभी काम का वेग हो। अतः अब समय आ गया है स्वामी कि आप अपने पूर्व वृत्तान्त से हमको अवगत करादें"—अभयसिंह से रत्नावली ने कहा।

"रत्ना, मानसिंह और कोई नहीं मेरा ही ज्येष्ठ भ्राता है।" अभयसिंह के मुंह से मानसिंह का परिचय सुनकर रत्नावली आश्चर्य के साथ-साथ और अधिक चिन्तित हो गयी।

तब अभय ने साश्चर्य पूछा "प्रिये ! मेरे भाई के राज्य में आने के पश्चात् तो तुम्हें खुशी होनी चाहिये थी पर तुम तो और अधिक चिन्तित हो गयी—यह क्यों ?"

"पतिदेव, आप बहुत सरल हैं इसलिए आप मानव प्रकृति को क्या जानें, पर मैं जानती हूँ कि काम के वेग में व्यक्ति भाई को भाई नहीं मानता। भाई को भी वह राह का काँटा मानने लगता है। आपने महासती मणयरहा का चरित सुन ही रखा है।"

अभयकुमार ने कहा—"प्रिये ! तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं, मैं अभी भाई साहब के पास चला जाता हूँ और सारा भण्डाफोड़ कर देता हूं। जिससे कोई समस्या नहीं रहेगी।"

"नहीं स्वामी, नहीं, अभी आप धैर्य रखें, आप अपना पूरा वृत्तान्त सुना दीजिये। आगे क्या करना है इस पर विचार करेंगे।" रत्नावली के कहने पर अभयकुमार ने अपनी पूर्ण रामकथा रत्नावली एवं कान्ता को सुनादी।

अभय की रामकथा सुनकर रत्नावली एवं कान्ता ने मिलकर एक योजना बनायी। उस योजना की जानकारी अभय को देते हुए रत्नावली ने कहा—"स्वामी, इस योजना से आपके भाई साहब का आपके प्रति कितना स्नेह है, इसकी भी परीक्षा हो जायगी तथा

उनको वस्तुत: मदन वेग होगा तो वह भी शान्त हो जायगा।" रत्नावली की योजना सुनकर अभय ने कहा—"तुम तो अर्द्धांगिनी के साथ मेरी योजना मंत्री भी बन गई हो। तुम बड़ी विलक्षण बुद्धिमती हो।"

रत्नावली ने स्मित मुस्कान बिखेरते हुए कहा—"स्वामी, मेरे अध्येता तो आप ही हैं न।"

× × ×

"आपकी स्वामिनी कहाँ है ? उनको देखने के लिए मैं आतुर हूं।" मानसिंह ने रात्रि के प्रथम प्रहर में रत्नावली के महल में पहुंचते ही प्रथम में प्रतीरक्षारत कान्ता से पूछा।

"महाराज, आप अभी तो पधारे ही हैं, थोड़ा विश्राम कीजिये फिर मैं स्वामिनी से भी आपको मिला दूंगी।" सिंहासन की ओर संकेत करते हुए कान्ता ने कहा।

महाराज मानसिंह के सिंहासनारूढ़ हो जाने पर पूर्वनियोजित योजनानुसार कान्ता ने कहा—"महाराज, अभी बहुत समय है। आप स्वामिनी से मिलें, उससे पहले मेरे द्वारा एक कथा अवश्य सुन लीजिये, यह मेरा आग्रह है।"

यद्यपि महाराज जल्दी से जल्दी रत्नावली से मिलना चाहते थे तथापि जब देखा कि यह कान्ता बिना सुनाये मिलने नहीं देगी तब मानसिंह ने कहा—"अच्छा तुम जल्दी से कथा सुनादो।"

"महाराज मैं जो कथा सुनाती हूं उसमें मेरी शर्त रहती है कि जब मैं कहानी सुनाऊं उसके बीच में हूं अथवा और के अलावा अन्य कुछ भी श्रोता बोल नहीं सकता। यदि बीच में बोल देता है तो वह कथा उस दिन वहीं अधूरी छोड़ देती हूं। वह कथा फिर दूसरे दिन ही आगे सुनाती हूं। आपको भी यह शर्त मंजूर हो तो मैं कथा प्रारम्भ करूं।"

"तुम्हारी हर शर्त मुझे मंजूर है, तुम तो जल्दी से कथा सुनाओ।" महाराज ने आग्रह किया।

"महाराज, जब मैं छोटी थी, मुझे कथा सुनने का अत्यधिक शौक था तब मेरी दादी माँ मुझे प्रतिदिन कथा सुनाया करती थी। उसके पश्चात् भी यदा कदा जब भी जहाँ संयोग मिल जाता मैं कथाएँ सुनती रहती। उन्हीं सुनी हुई कथाओं में से मैं एक कथा आपको सुनाना प्रारम्भ कर रही हूं। बात बनाते हुए कान्ता ने वार्ता प्रारम्भ की।

"राजन्, स्वर्ण नगरी के महाप्रतापी महाराजा के दो राजकुमार थे। दोनों को महाराजा ने समान रूप से सुसंस्कारी प्रशिक्षण दिया किन्तु छोटा राजकुमार अधिक न्याय-नीतिवान् निकला। एक दिन दोनों राजकुमार सरोवर के किनारे घूम रहे थे तभी वहाँ उन्हें नगर-सेठ की सुन्दर कन्या दिखाई दी। बड़ा राजकुमार उसकी रूपराशि देख कर चंचलचित्ती हो गया। उसने अपना धनुष-बाण उठाया और एक बाण उस श्रेष्ठि कन्या की जल-कलशी पर छोड़ दिया। उससे जो छेद हुआ उसमें से पानी रिसने लगा और वह कन्या भीगने लगी............।"

महाराजा का माथा ठनका। क्या यह उसी की तो कहानी नहीं है ? लेकिन उसकी कहानी यह दासी कहाँ से जान सकती है ? वह सुनता रहा।

"इस काम को छोटे राजकुमार ने उचित नहीं माना और उसने बड़े भाई को प्रबोध दिया तो बड़े भाई ने तुरन्त दूसरा लाख लगा बाण छोड़कर छेद बन्द कर दिया। फिर भी श्रेष्ठि कन्या ने अपमान का अनुभव किया और उसके पिता ने अनीति की गम्भीर घटना मानी। सेठ ने प्रयास किया कि इस ओर महाराज का ध्यान खींचा जाय, किन्तु युवराज के भय से नागरिकों का सहयोग नहीं मिला तो वे नगर छोड़कर जाने लगे। तब महाराजा को ज्ञात होने पर उन्होंने सेठ को बुलाया, सारी बात सुनी तथा अपने दोनों राजकुमारों को देश निकाले का दण्ड दिया—बड़े को बुरी हरकत के कारण तो छोटे को बड़े की बुरी हरकत की सूचना न देने के कारण............।"

"अरे यह तो मेरे जीवन से ही सम्बन्धित कहानी है।" महाराज ने कहा—

"राजन्, मैं क्या जानूं ? मैं तो सुनी हुई कहानी आपको सुना रही हूं। आप बीच में बोल गये, मेरी शर्त के अनुसार अब आगे की कथा कल कहूंगी और कथा के पूर्ण होने पर ही मेरी स्वामिनी से मिलना हो सकेगा।" मानसिंह क्या कहता ? निराशा एवं उत्सुकता के साथ वह वहाँ से अपने महल को लौट गया।

"शीघ्र ही तुम अपनी कथा प्रारम्भ करो। आज मैं बीच में न बोलने का संकल्प करके आया हूं।" दूसरी रात्रि यथा समय रत्नावली के महल में पहुंचते ही महाराजा ने कान्ता को सम्बोधित किया।

कान्ता ने कथा आगे बढ़ाते हुए कहा—

"दोनों भाई तब जंगल-जंगल भटकने लगे। छोटे भाई ने तो बड़े भाई की सेवा के लिए ही दण्ड लिया था सो जंगल में वह हर तरह से उनकी सेवा करता रहा—हर मुसीबत से उन्हें बचाता रहा। यहाँ तक कि लक्ष्मी और कालिका के संवाद से उसे नागमणि प्राप्त करने की तरकीब मालूम हुई तो उसने नागमणि प्राप्त करके भी अपने बड़े भाई के पल्ले बांध दी जिससे वह सातवें दिन राजा हो गया और खुद नागिन की जहर भरी डाढों के नीचे सो गया............।"

"कहां से सुनी है तुमने यह कहानी ?" मानसिंह लगभग चीख उठा।

"शान्ति रखिये महाराजा, मैं सब कुछ बता दूंगी। आपसे कुछ नहीं छिपाऊंगी। पर मेरी शर्त का आज भी आपने खयाल नहीं रखा। अतः अब आप पधारिये और विश्राम कीजिये।" मानसिंह भारी मन से उठे और अपने कक्ष में आकर निढाल होकर पड़ गये। महाराज अपने भूतकाल का चिन्तन करते रहे और कब उनको निद्रा आ गयी उसका ध्यान ही नहीं रहा। जब सवेरे ड्योढीदार ने मधुर विरुदावली से महाराज को नींद से जगाया तब महाराज अपने आपको कुछ हल्का महसूस कर रहे थे।

तीसरी रात्रि महाराज समय से पूर्व ही रत्नावली के महल में पहुंच गये और पहुंचते ही बड़ी आतुरता के साथ कांता को कहा—"तुम्हारी कहानी बड़ी रसदार है। देर मत करो, शीघ्र ही प्रारम्भ करो।"

कान्ता ने महाराज की उत्सुकता देखते हुए कहानी आगे बढ़ायी।

"यह तो ठीक हुआ कि उस जंगल में सहृदयों की सहायता से छोटे भाई का जहर उतरा वरना उसका जीवन समाप्त था। बड़े भाई ने तो राजा होकर भी उसकी कोई खोज खबर नहीं ली, बल्कि जब वह बड़े भाई से मिलने उसके नगर में पहुंचा तो वहाँ के अधिकारियों ने उसे बड़े भाई (राजा) से मिलाने की बजाय पीट-पीट कर मूर्छित कर दिया...........।"

"क्या उस छोटे भाई के साथ ऐसा दुर्व्यवहार मेरे राज्य में हुआ था ?" छोटे भाई के लिए अतीव स्नेह मानसिंह के दिल में उमड़ आया।

"महाराज, आप एक बार पूरी कहानी सुन लीजिये, फिर सब कुछ अपने आप ही स्पष्ट हो जायगा।" कहकर कान्ता चुप हो गयी।

"आगे क्या हुआ मेरे भ्राता को कृपया शीघ्र बतादो।" महाराज ने कहा।

"महाराज आप और मैं दोनों वचनबद्ध हैं अतः आज मैं आगे कहानी कैसे कह सकती हूं।"—आगे की कहानी चौथी रात्रि पर छोड़ते हुए कान्ता ने कहा।

महाराज अपने वचन का ध्यान आते ही वहाँ से प्रस्थान कर गये। उनके जाते ही रत्नावली एवं अभय ने कान्ता को कहा—तुम कहानी सुनाने में बड़ी माहिर हो। एक राजा को भी तुम किस प्रकार समझा रही हो कि वह सत्ता सम्पन्न होते हुए भी तुम्हारे सामने सामान्य श्रोता के रूप में रहते हैं।

"यह तो आपकी सुसंगति का सुफल है इसीलिए तो नीतिकार कहते हैं कि—

"सतसंगति कथय किं न करोति पुंसाम्।" उक्ति को विनम्रता से कहकर कान्ता चुप हो गयी।

चतुर्थ रात्रि को महाराज के आ जाने पर कान्ता ने महाराज की उत्सुकता को बढ़ाते हुए कथा आगे चलायी।

"तब एक छोटे कहे जाने वाले आदमी ने छोटे भाई की सेवा सुश्रूषा की, लेकिन उसी राज्य के एक सेठ ने अपना जहाज न चलने के कारण छोटे भाई की बलि देने की कुचेष्टा की। वही अपनी महामन्त्र की साधना से उस आपदा से बचा तो सेठ उसे अपने साथ जहाज पर ले चला। वह जहाज एक मुकाम पर ठहरा—वह रत्नद्वीप था। वहाँ के महाराजा छोटे भाई की न्याय-नीति से बहुत प्रसन्न हुए और उसे न्यायाधीश का पद दे दिया। बाद में वहीं स्वयंवर हुआ तो वहाँ की राजकुमारी ने छोटे भाई के गले में अपनी वर माला डाल दी...........।"

"तो क्या तुम्हारी यह स्वामिनी ही रत्नद्वीप की राजकुमारी है ?" मानसिंह तब तो अधीर हो उठा और लज्जा की छाया उसके चेहरे पर छा गयी।

"हाँ, महाराज ! पर आगे की कहानी आप नहीं सुन पायेंगे।"

महाराज को बीच में बोल जाने के रूप में गलती महसूस हुई। महाराज बार-बार अपनी

असावधानी हो जाने से खीझ उठे, पर उसका उपाय भी क्या करते। कान्ता का कथा कहने का तरीका ही ऐसा था कि श्रोता अपनी उत्सुकता रोकना चाहते हुए भी रोक नहीं सकते।

महाराज को कथा सुनते-सुनते चार रात्रियां व्यतीत हो गयीं। जितनी कथा महाराज ने सुनी उससे उनको अधिकांश तो यह विश्वास हो गया कि यह कथा मेरे और मेरे प्यारे भाई अभयसिंह से सम्बन्ध रखती है। पर वे अभी निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि इस दासी को यह सारा वृत्तान्त कैसे ज्ञात हुआ। इसी अधेड़बुन में महाराज प्रतिदिन चिन्तन करते पर निष्कर्ष नहीं निकाल पाये। आज पांचवां दिवस है। महाराज ने आज दिन भर सोचने के पश्चात् दृढ़ संकल्प किया कि आज वह कहानी के बीच नहीं बोलेगा और हर हालत में अपने भाई के विषय में पूरी जानकारी लेकर ही रहेगा।

संकल्प शक्ति को यदि दृढ़ बनाली जाय तो दुष्कर कार्य जिसे सत्वहीन व्यक्ति असम्भव मानकर उस कार्य को करने का साहस भी नहीं जुटा पाते, वही कार्य सुदृढ़ संकल्प शक्ति से सरलता से सम्भव हो जाता है।

पांचवें दिवस की संध्या ढलते ही मानसिंह रत्नावली के महल में पहुंचे और कान्ता से कहा—"आज बिना व्यवधान के कहानी त्वरित गति से सुनाना प्रारम्भ करो।" इतना कहकर मानसिंह अपने मन को पुनः दृढ़ संकल्पित कर कथा सुनने में लीन हो गये।

"महाराज, वह सेठ दुष्टात्मा था। उसने अपने जहाज पर से धक्का देकर छोटे भाई को समुद्र में पटक दिया...........।"

इतना सुनने पर मानसिंह एकाएक बोलने ही वाले थे कि उनको अपने दृढ़ संकल्प की स्मृति आयी। वे पुनः सावधान होकर सुनने में दत्तचित्त हो गये। पर अन्दर ही अन्दर मानो उनके प्राण सूखने लगे।

"ताकि छोटा भाई न रहे तो उसकी सुन्दर धर्मपत्नी को वह हथिया ले। और कोशिश भी उसने ऐसी ही की। जब पतिव्रता के तेज से उसकी ऐसी कुचेष्टा नहीं चल पायी तो उसने उसे आपको भेंट में दे दी। हे राजन्! ये मेरी स्वामिनी ही रत्नद्वीप की राजकुमारी हैं और छोटे भाई की सहधर्मिणी।"

कहकर महाराज की ओर देखते हुए कान्ता ने थोड़ा विराम लिया कि देखें राजन् कुछ बोलते है क्या, पर महिपति ने तो आज निश्चय कर लिया था कि वे नहीं बोलेंगे अतः निश्चिन्त बैठे थे। कान्ता को चुप देखकर हाथ के इशारे से ही कथा आगे बढ़ाने का संकेत दिया।

छोटे भाई तो इतने सरल, सुसंस्कारी तथा सुस्वभावी हैं कि किसी के प्रति कोई द्वेष रखते ही नहीं हैं। वे सबका भला चाहते हैं और भला करते हैं। दुष्ट धनदत्त के हाथों हकीकत में उसका अन्त ही हो गया होता यदि मेरी चतुर स्वामिनी कुशलतापूर्वक उन्हें बचा नहीं लेती। तब से उन्हें गुप्त ही रखा जा रहा था ताकि सेठ कहीं दूसरा आक्रमण न करदे क्योंकि जहाज पर उसका ही अधिकार चल रहा था।"

"कान्ता रहने दो तुम्हारी कहानी, अब मैं तुम्हारी कहानी सुनना नहीं चाहता।" गर्जते हुए भूपति ने कहा।

महाराज की गर्जना से एक बार तो कान्ता सहम सी गयी पर तत्काल ही सम्भलकर बोली—"राजन्, क्षमा करें, आपकी आज्ञा से ही मैंने कहानी प्रारम्भ की थी। आप नहीं सुनना चाहते तो अब नहीं कहूँगी।"

"कान्ता अब सुनना नहीं बल्कि प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ कि मेरा भाई कहाँ है? तुमको जब इतनी हकीकत ज्ञात है तो अभय कहां है यह भी तुम्हें अवगत होगा ही, अतः मुझे और कुछ नहीं चाहिये, मेरा भाई कहां है मुझे शीघ्र बताओ। मैं उसके बिना कैसे तड़प रहा हूँ यह मैं ही जानता हूं। मैं अपनी वह दुःख-दर्द की कहानी कहूँ भी तो किसे? पर राज्यरूपी खिलौने से खेलता हुआ मन को समझाने की चेष्टा करता रहा हूँ अतः अब मुझे शीघ्र बतलाओ मेरा भाई कहां है? उसके बिना मैं अब नहीं रह सकता।" हृदय के भावों को प्रस्फुट करते हुए, महाराज मानसिंह ने कहा।

२४
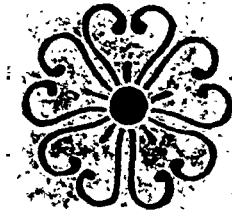
"मैं उपस्थित हूँ भाई साहब।"

पास के कक्ष से बाहर निकलते हुए अभयसिंह ने कहा और अपने बड़े भ्राता के चरणों में नमन किया। महाराज मानसिंह उसे अपनी बाहों में भरकर अश्रुपात करने लगे। उनके अश्रुपात में हृदय का पश्चात्ताप था तो भ्राता के मिलन का हर्षावेग भी था। उन्होंने बाहों को इतनी मजबूती से कस ली कि कहीं अभय उनको भी छोड़कर अन्यत्र चला न जाय।

दोनों भ्राताओं का मिलन राम और भरत मिलन की पुनःस्मृति दिलाने वाला था। इतने में रत्नावली कक्ष से बाहर आई और उसने भी अपने पति के अग्रज के चरण छुए।

महाराज मानसिंह ने आंखें नीचे रखते हुए रत्नावली से कहा—

"बहू, मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम मेरे भाई अभय की अर्धाङ्गिनी हो, इसलिए मेरे से यह अक्षम्य अपराध हो गया है। वस्तुतः मैं यदि पर-स्त्री का त्याग कर लेता तो आज यह दिन देखने को नहीं मिलता। बहू, मेरा अपराध क्षमा कर देना" महाराज ने कहा।

अभय को सम्बोधित करते हुए मानसिंह कहने लगे, "अभय, अब मेरा इस कक्ष में अधिक समय तक रहना ठीक नहीं, मैं तुमसे भी कुछ वार्ता करना चाहता हूँ अतः मेरे निजी कक्ष में चलो।"

अभय उनके साथ हो लिया।

"मेरे प्यारे अभय, मैंने तुम्हारे साथ जो अक्षम्य-अपराध किया है उसे क्षमा कर दो।"

"भैया, आप यह क्या कह रहे हैं? आपसे जो कुछ हुआ वह अज्ञानावस्था के कारण ही हुआ है। पर हाँ, परस्त्री का यदि आप भी त्याग कर लेते तो ऐसा कार्य नहीं होता जिसके लिए आपके हृदय में भी पश्चात्ताप है ही अतः क्षमा करने जैसी क्या बात है?"

"भैया, विना क्षमा किये मेरा मानसिक संतोष कम नहीं होगा।"

"ठीक है आप अपनी त्रुटियों का प्रायश्चित ही करना चाहते हैं तो कभी महात्मा का समागम मिलने से वह भी सम्भव हो सकता है। पर जब तक महात्मा के दर्शन नहीं हों तब तक आप यह तो प्रतिज्ञा अवश्य करलें कि अब परस्त्री को माता तुल्य समझेंगे एवं अन्य कोई भी अनैतिक कार्य आपकी ओर से पनप नहीं सके।" अभय ने कहा।

मानसिंह की आँखें बहुत देर तक शून्य को ताकती रहीं। यह साफ दिखाई दे रहा था कि वह भीतर में कहीं गहराई से डूबा हुआ है। फिर उसके चेहरे पर कुछ दृढ़ निश्चय की रेखाएँ उभरीं, कुछ चमक लौटने लगी और कुछ नये उत्साह का संचार दिखाई दिया। तब उसके मुँह से दृढ़ता भरे वचन निकले—

"भाई अभय, यह मेरा कठोर अटल संकल्प है कि भविष्य में मन, वाणी अथवा कर्म से किसी प्रकार की अनैतिकता मैं कतई नहीं करूंगा और मामूली सी जो रसिकता है, यों समझो कि आज मैं उसे भस्म कर चुका हूँ।"

ज्येष्ठ भ्राता को दिलासा देता हुआ अभय रुंधे हुए कंठ से बोला—"मुझे अब आपके संकल्प पर पूर्ण विश्वास है। मैं हमेशा यही सोचता रहा हूँ कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी पूज्य पिता जी के समान ही लोकप्रिय एवं यशस्वी बनें। मैं आज आश्वस्त हो गया हूँ कि मेरा यह विचार अवश्यमेव सफल होगा।"

"तुम भले मेरे छोटे भाई हो, किन्तु मैंने कभी तुम्हें छोटा नहीं माना और आज तो तुम्हारी छवि मेरे मानस में इतनी भव्य तथा दिव्य बन गई है कि मैं उसकी सदैव अर्चना ही करूंगा"—मानसिंह ने कहा और एक बार पुनः अभय को अपने गले लगा लिया। अभय ने विश्वस्त अनुचरों को भेजकर अपनी पूर्व विवाहिता मदनमंजरी को भी अपने पास बुला ली।

× × ×

वसन्तपुर की राज्य परिषद् की आवश्यक बैठक बुलाई गई थी। सभागार में सभी सदस्य उपस्थित थे। उनके सिवाय जिनके अपराधों की मीमांसा करने के लिये परिषद् की बैठक बुलाई गई थी—वे अपराधी भी कठघरे में उपस्थित थे—सेठ धनदत्त, सुरक्षा अधिकारी और उसका निजी सैनिक। एक अन्य नागरिक भी विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था, जिसका सम्मान किये जाने का प्रस्ताव था और वह था पन्ना कुम्हार।

महाराजा मानसिंह अपने सिंहासन पर आसीन हुए, पास में ही अभयसिंह मदनमंजरी व रत्नावली भी बैठे। रत्नावली के पास ही बैठी थी कान्ता दासी। महाराजा ने तब धनदत्त सेठ को सामने आने का आदेश दिया और उसके आने पर पूछना शुरू किया।

"क्यों सेठ, तुम इन्हें जानते हो?" कहकर मानसिंह ने अभय की ओर संकेत किया। अब तक धनदत्त अपने ही भयपूर्ण विचारों में उलझा हुआ था, उसकी दृष्टि अभयसिंह की ओर गई ही नहीं थी। वह तो निश्चित रूप से समझा हुआ बैठा था कि

अभयसिंह की जीवनलीला तो उसी दिन समुद्र में ही समाप्त हो चुकी थी। अब उसी अभयसिंह को अपने सामने देखकर वह रोमांचित हो उठा। वाकई यह अभयसिंह ही है या उसका भूत है ? वह तो भय से थरथरांता हुआ कुछ नहीं बोल सका। मूर्ख की तरह महाराजा को देखता हुआ ही खड़ा रहा। महाराजा ने ही उसकी ऐसी दशा देखकर फिर से पूछा—

"तुम इन अभयसिंह को पहचानते हो सेठ ?"

सेठ ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

'तुम्हारी तरफ से तो मर चुके थे ? क्यों सही है न सेठ ?"

सेठ कुछ नहीं बोला।

"ये सबसे पहले तुमको कहाँ मिले थे ?"

"पन्ना कुम्हार के घर पर, महाराज ?"

'वहाँ तुम क्यों गये थे ? तुम्हारे साथ और कौन-कौन थे ?"

"राजन्, मेरा जहाज बंदरगाह पर फंस गया था। काफी कोशिशों के बाद भी वह नहीं चला तब तांत्रिक के कहे अनुसार मैं बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष की खोज में था जिसकी बलि देने से जहाज के चल पड़ने की संभावना थी। मेरे एक अनुचर ने सूचना दी कि ऐसा पुरुप पन्ना कुम्हार के यहाँ रह रहा है, अतः मैं वहाँ सैनिक को लेकर अभयजी को बलि हेतु लाने के लिये गया था।"

"वह सैनिक तुम्हारे साथ किसके आदेश से आया था ?"

"सुरक्षा अधिकारी जी के आदेश से—"

तब सुरक्षा अधिकारी और सैनिक दोनों को सामने बुलाया गया। महाराजा ने पूछा—

"तुम सुरक्षा करने के लिये सुरक्षा अधिकारी बनाये गये हो या किसी को बलि देने जैसे कुकृत्य की असुरक्षा में डालने के लिये ?"

सुरक्षा अधिकारी मुंह नीचा किये खड़ा रहा।

"सुना नहीं तुमने, मैं उत्तर चाहता हूँ।"

"मेरा अपराध हुआ है, राजन्।"

"क्यों हुआ ऐसा जघन्य अपराध ?"

"सेठ की मुद्राओं से भरी थैली के कारण—"

"अच्छा तो तुम भ्रष्टाचारी भी हो ! राज्य का वेतन लेकर विष्टा खाते हो इस तरह ? जानते हो ऐसा करने से अपकीर्ति किसकी होती है ? प्रजा के साथ अन्याय कितना होता है ? इन सब अपराधों का दंड क्या होता है—यह भी जानते हो ?" सुरक्षा अधिकारी को काटो तो खून नहीं। उसकी जुबान तालू से सट गई थी।

महाराजा ने सैनिक से पूछा—

"क्या तुम सुरक्षा अधिकारी के आदेश से पन्ना कुम्हार के घर गये थे ?"

"हाँ महाराज !"

"तुम्हें भी सेठ ने कुछ दिया होगा ?"

"हाँ महाराज।"

"तुमने पन्ना कुम्हार के घर से क्या इन्हीं को पकड़ कर जहाज पर पहुँचाया था ?" महाराजा ने अभयसिंह की ओर संकेत किया।

"हाँ महाराज।"

"इन्हें इससे पहले भी तुमने देखा था ?"

"हाँ महाराज।"

"क्या किया था इनके साथ तुमने ?"

"मुझे सुरक्षा अधिकारी जी ने बताया था कि ये किसी अन्य राज्य के जासूस हैं और आदेश दिया था कि इनका पीछा करो तथा जरूरत पड़े तो सबक भी सिखाना। मैंने पीछा किया, ये धर्मशाला में उदास बैठे थे तो मैंने पक्का समझ लिया कि जासूस ही हैं सो फिर इनके साथ पिटाई भी की राजन्।"

"इतनी पिटाई की कि ये बेहोश हो गये और तुमने मरे समझकर गहरे गड्ढे में फेंक दिया ? क्या ऐसा ही आदेश था सुरक्षा अधिकारीजी का ?"

अब सैनिक से कोई उत्तर देते न बना। महाराज तब सुरक्षा अधिकारी की तरफ मुड़े—

"तुमने इनको जासूस कैसे समझ लिया ? कोई प्रमाण प्राप्त किया था तुमने ?"

"प्रमाण तो कुछ नहीं है, महाराज ! इन्होंने आपसे मिलाने का निवेदन किया था जिस पर मैंने सन्देह किया।"

"धूर्त कहीं के ! यह सन्देह करने का कौनसा तरीका है ? कोई प्रजाजन या परदेशी मुझ से मिलना चाहे और तुम उसे जासूस समझ कर उसे ठिकाने लगाने का आदेश दे दो। अगर तुमने जासूस ही समझा तो तलाशी लेकर मेरे सामने प्रस्तुत करना चाहिये था। राजदंड तुमने ही अपने हाथ में ले लिया ? लज्जा नहीं लगी तुम्हें ?

"मैं बहुत लज्जित हूँ महाराज ! मैंने नहीं जाना था कि ये आपके भाई साहब थे।"

"इससे क्या होता है ? किसी भी नागरिक के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार करने का तुम्हें अधिकार है क्या ?"

"नहीं है राजन्, मैं दंड का पात्र हूँ।"

"वह तो हो ही और कठोर दंड के पात्र हो।"

तब महाराज ने धनदत्त सेठ से प्रश्न किया—

"तुम ऐसे अनैतिक व्यक्ति हो जो मेरे अधिकारियों व कर्मचारियों को भ्रष्ट वि
करते हो! तुमने अपने स्वार्थ के लिये पुरुष की बलि देने का भी निश्चय कर लि
क्या तुम राक्षस नहीं हो? और राक्षसी कृत्य तुमने कौनसा एक ही किया है? सच-
बताओ, अभयसिंहजी को तुमने समुद्र में धक्का देकर गिरा दिया था।........"

"मैंने यह नीचता की थी, महाराज!"

"क्यों की थी?"

"मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी। मैं इनकी धर्मपत्नी को अपनी बनाना चाहता था

"और फिर उसे मुझे भेंट में क्यों दे दी?"

"क्योंकि मेरे दुष्कृत्य पर इस पतिव्रता ने जो तेज बताया उससे मैं भयभीत
गया किन्तु फिर भी मैं प्रतिशोध लेना चाहता था इसलिये—"

"दुष्ट कहीं के, मुझे भी पाप-पंथ में घसीटना चाहते थे। तुमने तो नीचता की
सीमा पार करली। तुम्हें तो कठोरतम दंड मिलना चाहिये।"

धनदत्त सेठ गुमसुम खड़ा रहा। उसकी टांगें थरथर कांप रही थीं। ऐसा लग
था कि वह गिरने ही वाला हो।

महाराजा ने तब परिषद् के सदस्यों के साथ मंत्रणा की। सबकी सहमति से
उन्होंने दंडादेश सुनाया—

"धनदत्त को अपने जघन्य अपराधों के लिये फांसी पर लटकाया जाय.......

"सुरक्षा अधिकारी के परिवार पर दया करते हुए दस वर्ष के कठोर कारावास
दंड सुनाया जाता है और सैनिक को पांच वर्ष के कठोर कारावास का। दोनों को तत्क
कैद कर लिया जाय।"

महाराजा ने तब पन्ना कुम्हार का अभिनन्दन किया और घोषणा की कि उ
'राज्य रत्न' की उपाधि से विभूषित किया जायगा तथा उच्च पद प्रदान किया जायग
क्योंकि उसने एक अनजाने परदेशी की बिना किसी स्वार्थ के जीवन रक्षा की थी। इ
तरह कांता दासी को दासीत्व से मुक्त करते हुए अभिनन्दन के साथ विपुल वैभव रा
भेंट की और उसे अपने घरेलू सदस्य के रूप में रखा।

तभी अभयसिंह अपने आसन से उठा, उसने पन्ना को नमस्कार किया और हा
जोड़कर महाराजा के समक्ष निवेदन करने लगा—

"महाराज, यद्यपि इन अभियुक्तों के अपराध निन्दनीय हैं जो किसी भी राज्य की प्रतिष्ठा पर कालिख पोतने वाले हैं किन्तु चूंकि इन अपराधों का सम्बन्ध मुझ से है अतः मैं इनके विषय में कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहता हूँ।"

"अवश्य, किन्तु ऐसे अपराधियों के प्रति दया भाव दर्शाने की आवश्यकता नहीं है।"

"क्षमा करें, राजन्! कैसा भी दंड हो, वह व्यक्ति के हृदय को सुधारता और बदलता नहीं है। यह भी एक प्रकार से राजकीय अपराध है जो समाज व्यवस्था के लिये आवश्यक है। किन्तु दंड की प्रतिक्रिया भी साधारणतः प्रतिशोध के रूप में ही होती है। दंड ऐसा हो जो व्यक्ति के अपराधिक जीवन को बदल दे—उसे सदाचारी बना दे। कोई अपराधी सदाचारी तभी बन सकता है जब उसका हृदय परिवर्तित हो। हृदय परिवर्तित हो सकता है मात्र क्षमा से। अतः मैं इन्हें क्षमा कर देने का निवेदन करना चाहूँगा।"

"क्षमा दैविक उपाय है अभयसिंह, इससे राज्य व्यवस्था का सुसंचालन संभव नहीं होता है। अपराध के दंड की यह भी तो प्रतिक्रिया होती है कि वह भविष्य में अपराध वृत्ति से दूर हो जाय इसी दृष्टि से सुरक्षा अधिकारी और सैनिक को मैंने अल्प-दंड दिया है। धनदत्त की दुष्टता तो ऐसी है कि उसके लिये प्राण दंड से भी अधिक कठोर दंड होना चाहिये था........"

"यह सही है महाराज, किन्तु अपने छोटे भाई के नाते ही इतना निवेदन तो स्वीकार कर लीजिये कि धनदत्त को प्राणदान देदें और शेष दोनों को दंड से सम्पूर्ण क्षमा........"

"अच्छा भाई, तुम्हारी सदयता का लाभ इन्हें दे ही देता हूँ........"

इस घोषणा के साथ ही तीनों अभियुक्त अभय के पैरों पर गिर पड़ और रो-रोकर अपराधों की क्षमा मांगने लगे। अभय ने इतना ही कहा—"आप सब भविष्य में कभी कोई अपराध न करने का संकल्प लें।"

सभी ने एक स्वर में कहा—"हम भविष्य में कोई भी अपराध न करने का संकल्प लेते हैं।"

२५

महात्माजी का सारगर्भित प्रवचन सुनने के बाद स्वर्ण नगरी के महाराजा प्रतापसिंह को संसार से वैराग्य हो आया। दो ही राजकुमार थे और दोनों न जाने कहाँ दंडादेश भुगत रहे होंगे। जब राज्य सुख भोगने की आयु वाले राजकुमार ही वनवास कर रहे हों तो वे अब इस आयु में क्या राज्य करते रहें ? उनके वैराग्य का यह एक मुख्य कारण भी था। अब अन्तिम आयु में आत्म-कल्याण की साधना में निरत होना भी मानव जीवन का सत्कार्य होना चाहिये। उनका मन छटपटाने लगा कि वे अब सांसारिकता को पूरी तरह छोड़कर संयम-पथ के पथिक बन जायं।

प्रतापसिंह को चिन्ता थी तो इसी बात की कि वे अपना उत्तराधिकारी किसे बनावें ? उत्तराधिकारी ऐसा हो जो उन्हीं की तरह न्याय और नीति का पालक तथा प्रजा वत्सल हो। उनकी प्रजा को यह अनुभव न हो कि उसके दु:ख बढ़ने लगे हैं और सुख घटने लगे हैं। बस ऐसा उत्तराधिकारी मिल जाय तो वे अविलम्ब यहाँ से निकल जायं।

वैराग्य का रंग जब अधिक गहरा होने लगा तो वे संसार-त्याग के लिये उतावले होने लगे। उत्तराधिकारी न जाने कब मिलेगा ? वे अपने आत्म-कल्याण को दूर कब तक ढकेलते जायेंगे ? वे नहीं होंगे तब भी संसार चलेगा। अब यह प्रजा के भाग्य पर ही छोड़ दिया जाय कि राज्य का आगामी शासक कैसा और कौन होगा और वे साधना की कठिन राह पर चल ही पड़ें।

आखिर एक दिन तो उन्होंने निश्चय कर ही लिया कि वे अब अपना किंचिन्मात्र समय भी संसार में व्यतीत नहीं करेंगे। अत: उन्होंने राज्य के प्रधान अधिकारियों, नगर श्रेष्ठि आदि विशिष्ट जनों तथा गण्यमान्य नागरिकों की एक बैठक बुलाई यह सोचकर कि उत्तराधिकारी का प्रश्न इन्हीं सब लोगों के जिम्मे छोड़कर वे दीक्षा ग्रहण कर लेंगे।

अपने महाप्रतापी महाराजा का आमंत्रण पाकर सभी लोग सभागार में एकत्रित

हो गये। तभी महाराजा ने भी सभागार में प्रवेश किया। सबने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। बात महाराजा ने ही छेड़ी, वे कहने लगे—

"भद्रजनो ! आप सबको मैंने एक विशेष उद्देश्य के निमित्त से बुलाया है। महाराजा मैं अवश्य हूँ, किन्तु राज्य का संचालन आप सभी के सहयोग से ही संभव होता आया है। मैंने दीर्घकाल तक प्रजा की सेवा करते हुए अपने कर्त्तव्य पालन का प्रयास किया है, अब मेरी भावना है कि मैं राज्य और संसार छोड़कर आत्म-कल्याण की साधना में निमग्न बनूं..........

"इसमें मेरे समक्ष एक बहुत बड़ी बाधा है। राज्य का कोई योग्य उत्तराधिकारी मेरे सामने नहीं है और मेरी भावना अब साधना कार्य में विलम्ब करने की भी नहीं है अत: क्या आप लोग यह उत्तरदायित्व नहीं ले सकेंगे कि सुयोग्य उत्तराधिकारी का चयन आप लोग ही करते रहें और मैं तो तुरन्त साधु-धर्म अंगीकार कर लूँ ?.......

"मुझे आप लोगों पर पूरा विश्वास है कि आपका चयन श्रेष्ठ सिद्ध होगा और भावी शासक इस राज्य की न्याय, नीति तथा प्रजा सेवा की परम्पराओं का पूरी आस्था और निष्ठा के साथ पालन करता रहेगा। प्रजा सुखी बनी रहे और राज्य उन्नति करता रहे– यही मेरी हृदयाकांक्षा है।"

महाराजा ने सभी उपस्थितों की ओर अपनी दृष्टि घुमाई कि कौन क्या सुझाव देना चाहता है ? तब नगर श्रेष्ठि खड़े हुए और निवेदन करने लगे—

"राजन्, मेरा एक नम्र निवेदन है।"

"बताइये, सेठ साहब !"

"योग्य शासन का चयन कोई सरल कार्य नहीं है और यह जोखिम भी नहीं उठाई जा सकती कि किसी अनजाने को लाकर सिंहासन पर बिठा दें क्योंकि भविष्य में वह न जाने कैसा निकले ? क्या यह नहीं हो सकता कि आप थोड़े समय तक और विराजें और तब तक राजकुमारों की खोज करके उन्हें ससम्मान यहाँ लाया जाय।"

अन्य कई लोगों ने भी नगर श्रेष्ठि के सुझाव का समर्थन किया। महाराजा विचार में पड़ गये, फिर बोले—"इसमें पहली बात तो यह है कि उनका दंडादेश वापिस लेना होगा। दूसरे, उनकी खोज करने में न जाने कितना समय लग जाय और क्या तब तक मैं संसार में बना ही रहूँ ? मेरी आयु का ही क्या भरोसा है ? सूखा हुआ पत्ता हूँ, कभी भी झड़ गया तो मेरी संसार त्याग की भावना मन की मन में ही रह जायगी।"

नगर श्रेष्ठि ने पुन: निवेदन किया—"महाराज, एक छोटी सी बात के लिये उन्हें बहुत बड़ा दंड मिला है—यह तो आपका हृदय भी कहता होगा। मुझे तो उसका खेद

अब तक भी सता रहा है कि इस कठोर दंडादेश का निमित्त मैं ही बना। फिर राजकुमार अभयसिंहजी का दंड तो कठोरतम था लेकिन मुझे ऐसा लगा था कि उन्होंने बड़े भाई की सेवा की दृष्टि से वह दंड भी जानबूझ कर लिया था। अतः इस सम्बन्ध में हम सभी लोगों के निवेदन को मान देकर आप अभी ही उस दंडादेश को वापिस लेने की घोषणा करने का अनुग्रह करें......." कहते हुए नगर श्रेष्ठि यकायक चुप रह गये तो उनका मंतव्य महाराजा भी समझ गये, बोले—"आप सब लोगों की भावना यही है तो मैं घोषणा करता हूँ कि दोनों राजकुमारों का दंडादेश वापिस ले लिया गया है। किन्तु इससे समस्या का समाधान कहाँ हो रहा है ?"

"महाराज, समस्या का समाधान भी शीघ्र हो जायगा। अब सैनिकों के दल सभी ओर उनकी खोज करने के लिये भेजे जायं जो जल्दी से जल्दी उन्हें खोज लावें। हमें विश्वास है कि राज्य का भविष्य उज्ज्वल है और राजकुमार अवश्य मिल जायेंगे तथा शीघ्र यहाँ पहुँच जावेंगे।"—सेठ ने विनती की।

"आप लोग यही चाहते हैं तो यही सही" कहते हुए महाराज आगे कुछ कहने जा ही रहे थे कि द्वारपाल कुछ निवेदन करने की दृष्टि से भीतर आया और महाराजा के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया—

"महाराजा की जय। एक सैनिक कोई आवश्यक संवाद लेकर बाहर खड़ा हुआ है।"

"उसे भीतर ले आओ—" महाराजा ने आदेश दिया और सैनिक के भीतर आ जाने पर पूछा—"कहो, क्या संवाद है ?"

"महाराज, राजकुमार मानसिंहजी और अभयसिंहजी राज्य की सीमा के बाहर आपका आदेश प्राप्त करने के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे आपके दर्शन करना चाहते हैं। उनके साथ हाथी, घोड़े, लाव लश्कर भी हैं तो कई सैनिक भी। अभयसिंहजी के साथ तो कोई दो महिलाएँ भी हैं। उन्होंने निवेदन कराया है कि दोनों भाई बीच में बिछुड़ गये थे और अभी-अभी ही दोनों का पुनर्मिलन हुआ है, इस कारण वे आपके दर्शन करने तथा सभी नगरवासियों से मिलने के प्रबल इच्छुक हैं। यदि आपकी आज्ञा होगी तो वे पुनः यहाँ से चले जावेंगे। मुझे आज्ञा दीजिये स्वामी ताकि मैं शीघ्र जाकर उन्हें सूचित करूँ।" कहकर सैनिक हाथ बांधे खड़ा रहा।

सारा विवरण सुनकर सभी विस्मित हुए कि दोनों राजकुमारों के साथ लाव-लश्कर वगैरा कैसे हैं। सभी प्रफुल्लता से भी भर उठे कि जो सोचा, वह इतना जल्दी साकार होकर सामने आ गया—इसे कहते हैं राज्य का सौभाग्य।

महाराजा ने अपने प्रधानमंत्री को आदेश दिया कि वे सबको लेकर जावें और

पूरे सम्मान सहित दोनों राजकुमारों को शीघ्र लेकर वापिस आवें। आदेशानुसार प्रधान-मंत्री गये और स्वागतपूर्वक दोनों राजकुमारों को अपने साथ ले आये। उन्होंने महाराजा ने निवेदन किया—"राजन्, मानसिंहजी इस समय वसन्तपुर के महाराजा हैं और सारा लाव-लश्कर वहीं का है। अमरसिंहजी का शुभ विवाह रत्नद्वीप की राजकुमारी से हुआ है तथा आपकी बहू रत्नावली भी इनके साथ में है। दोनों भाई अतिशीघ्र आपकी सेवा में यहीं पर पधार रहे हैं।" महाराजा का पितृ-हृदय अमित हर्षावेग से भर उठा।

तभी मानसिंह और अमरसिंह दोनों ने सभागार में प्रवेश किया। दोनों ने तुरन्त अपने पूज्य पिताजी के चरण छुए तो पिता ने दोनों को एक साथ अपनी छाती से लगा लिया। दोनों ओर हर्ष के आँसू झरने लगे। दोनों ने तब सभी उपस्थितों को नमस्कार किया। सारा सभागार हर्ष और प्रेम के आँसुओं की बरसात से भीग उठा।

प्रतापसिंह पूछ ही बैठे—"मेरे प्यारे बेटो, तुम्हारी उन्नति का विवरण हमने सुना है। हम बहुत खुश हैं और यह जानकर बहुत खुश होंगे कि सब कुछ प्राप्त करके भी तुमने अपनी नैतिकता नहीं छोड़ी है। एक सच्चे राजा का शृंगार उसका वैभव और ऐश्वर्य नहीं, उसकी न्याय और नीति हुआ करती है।"

मानसिंह ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"पूज्य पिताजी, हम जंगल-जंगल भटके हैं, जिन की कल्पना भी कभी नहीं की थी वैसे-वैसे कष्टों को सहन किया है और मुझे वसन्तपुर का राज्य भी मिला है तो इन सबका श्रेय सम्पूर्ण रूप से [illegible] को है। मैं तो आप जानते हैं सदा [illegible] रहा हूँ और इन कठिन [illegible] में भी [illegible] ने न मुझे रक्षित ही किया बल्कि न्याय और नीति में भी सुदृढ़ बना दिया है। [illegible] के न्याय की मैं क्या महिमा करूँ? [illegible] की और [illegible] किया [illegible]। मैं तो राज्य पाकर [illegible] और [illegible]-कार बहू के साथ [illegible]। हम दोनों ने [illegible] यह किया कि हम आप पूज्य चरणों के दर्शन करें अतः तुरन्त सेवा में उपस्थित हो गये हैं।"

अमरसिंह भी निवेदन करने लगा—"[illegible] का [illegible] है और पूज्य पिताजी कि वे [illegible] का [illegible] कर रहे हैं। मैंने तो सदा ही उनकी सेवा में आनन्द माना है और अब भी उन्हीं की सेवा में आनन्द मानता रहूँगा।"

तो कृपा करके यहाँ का राज सिंहासन मेरे परम सुयोग्य भाई अभय को ही सौंपिये, जो निश्चित रूप से आपकी धवल कीर्ति में भी चार चाँद लगायेगा। स्वर्ण नगरी के राज्य संचालन के साथ ही बसन्तपुर का राज्य संचालन भी वही करेगा। मैं तो बाहरी धनुष-बाण से लक्ष्य-वेध करना जानता हूँ, किन्तु भाई अभय के आन्तरिक लक्ष्य-वेध ने मेरे जीवन की अनैतिकता ही समाप्त नहीं कर दी है बल्कि मुझे भी श्रेष्ठ जीवन का अनुगामी बना दिया है।.......

"मैं अपने सम्पूर्ण हृदय से कहना चाहता हूँ कि किसी को भी भाई मिले तो अभय जैसा। ऐसा एकनिष्ठ भाई पूर्व जन्म की किसी कठिन तपस्या का ही सुफल हो सकता है........।"

अभय कहाँ पीछे रहने वाला था? वह भी उठा और कहने लगा—पूज्य पिताजी एवं बुजुर्ग सभासदो! आप जानते ही हैं कि पिता के राज्य का उत्तराधिकारी उनका बड़ा पुत्र ही हुआ करता है तदनुसार भाई साहब मानसिंहजी ही इस राज्य के उत्तराधिकारी हो सकते हैं। मेरे विषय में भाई साहब जो कह रहे हैं वह इनकी महानता है किन्तु वस्तुतः मैं तो उनकी चरण रज ही हूँ। ज्येष्ठ भ्राता मानसिंहजी राज्य संचालन में कुशल हैं। इन्होंने बसन्तपुर राज्य का संचालन किया भी है। वहाँ इनके सुसंचालन की मुक्त कण्ठ से जनता प्रशंसा करती है। अतः हर दृष्टि से पूज्य पिताजी के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ भ्राता ही हो सकते हैं। इतना कह कर अभय बैठ जाता है।...

दोनों भाई एक-दूसरे पर राज्य भार डालने का प्रयास करते रहे अतः मानसिंह ने स्पष्ट कह दिया कि मैं किसी भी हालत में राज्य ग्रहण नहीं करूँगा। मैं तो बसन्तपुर का राज्य भी अभय के सुदृढ़ कंधों पर डालकर पिताश्री के साथ आत्म-साधना करना चाहता हूँ।

इस पर सभी प्रमुख महानुभावों ने अभयसिंह को सानुरोध अनुनय करके राज्य ग्रहण करने हेतु तैयार किया। सभी प्रमुख लोगों की सम्मति से तब महाराजा प्रतापसिंह ने अभयसिंह और मदनमंजरी व रत्नावली का राज्याभिषेक अतीव समारोह पूर्वक सम्पन्न किया। राज्य के नागरिकों ने उस समय जिस उत्साह और धूमधाम से उत्सव मनाया, वैसा उत्सव पहले कभी नहीं मनाया गया था। महाराजा की खुशी का तो ठिकाना ही नहीं था कि सुयोग्य उत्तराधिकारी के सिंहासनारोहण के साथ ही साधना के पथ पर चल पड़ने के लिये वे स्वतंत्र हो गये थे। मानसिंह भी बसन्तपुर का राज्य अभय को सौंपकर पिता के साथ साधना मार्ग की ओर अग्रसर हो गये। आचार्य धर्मघोष के पदार्पण पर उत्कृष्ट वैराग्य के साथ भागवती दीक्षा स्वीकार की तथा संयम साधना कर स्वर्ग सुख को प्राप्त किया।

सिंहासनासीन महाराजा अभयसिंह तथा महारानी मदनमंजरी व रत्नावली की